हिन्दू जीवन पद्धति

डा. कामेश्वर उपाध्याय





SPEED - POST

To

उपसचिव (भाषा)

उच्चतर शिक्षा विभाग

मानव संसाधन विकास मंत्रालय

भारत सरकार

(सी-विंग), शास्त्री भवन, नई दिल्ली - 110001

प्रेषक



हिन्दू जीवन पद्धति

ऋषि जीवन सूर्य की तरह प्रदीप्त; चन्द्र की तरह शीतल; वायु की तरह गतिशील; जल की तरह तृषातृप्तिकर; आकाश की तरह उन्नत और पृथ्वी की तरह सर्वंसह है। यही जीवन शैली है-

हिन्दू जीवन पद्धति।

हिन्दू जीवन पद्धति

(ऋषिकृत दिनचर्या व्यवस्था का शास्त्रीय, व्यावहारिक, सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक विवेचन। चौबीस घण्टों में (अहोरात्र) में जीवनचर्या का विस्तार, अनुशासन, तप और भोग का प्रतिपादन-विश्लेषण)

रचयिता

डॉ. कामेश्वर उपाध्याय

त्रिस्कन्धज्योतिषम्-प्रकाशन

प्रकाशक
त्रिस्कन्धज्योतिषम्–प्रकाशन
'देवतायन' ९६, जानकीनगर,
पो.ऑ. बजरडीहा,
वाराणसी – २२१ ००९ (उ.प्र.)

प्रकाशन वर्ष : २०११
विक्रमसंवत् : २०६८
वासन्तिकनवरात्रि

प्रतियाँ : ५०००

मूल्य : २००/– (रुपये दो सौ मात्र)
विशिष्टसंस्करण ५००/– (रुपये पाँच सौ मात्र)

प्रथम संस्करण

पुस्तक का नाम – हिन्दू जीवन पद्धति

मुद्रक :
महावीर प्रेस
भेलूपुर, वाराणसी

प्रातः स्मरणीय गोत्रपुरुष

ऋषिप्रवर कृष्णात्रेय

एवं

मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य,

पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, भृगु, आपस्तम्ब, औसनस,

गौतम, याज्ञवल्क्य, भारद्वाज, कात्यायन, विश्वामित्र,

दक्ष, हारीत, यम, शंख, संवर्त, लिखित, शातातप,

पराशर, व्यास, प्रभृति ऋषियों के दिव्य गुणगण की

पावन स्मृति में उन्हें समर्पित

प्रकाशकीय

सनातनधर्मी हिन्दुओं का जीवन ऋत, सत्य, तप तथा अनुशासन से प्रतिपल, प्रतिपग बंधा हुआ है। हिन्दू जीवन पद्धति में अतिशय गूढ़ विज्ञान का सन्निवेश है। आज धीरे-धीरे भारत की धरती पर इस पद्धति को आत्मसात् करने वाले लोगों की कमी हो रही है। जीवन पद्धति को सुसम्बद्ध तथा समीचीन ढंग से व्याख्यायित करने वाली पुस्तक का अभाव बना हुआ था। फलतः लोग जीवन में अलग-अलग क्षेत्र में अपने सुविधाक्रम में आचार और व्यवहार को उतार रहे हैं। ऋषिप्रोक्त जीवन पद्धति ही हिन्दू जीवन पद्धति है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही ऋषियों ने जीवन पद्धति को लिखित स्वरूप दे रखा था। आज अतिशय श्रम एवं अन्वेषण के साथ हिन्दू जीवन पद्धति पुस्तक को प्रकाशित किया जा रहा है। आशा एवं विश्वास है इस पुस्तक के माध्यम से सामान्य से सामान्य व्यक्ति अपने जीवन में शुभ एवं कल्याणकारी बदलाव ला सकेगा। उच्चता की पराकाष्ठा को प्राप्त करने में यह ग्रन्थ अपनी भूमिका का निर्वाह करेगा।

चौबीस घण्टे के भीतर मनुष्य को कैसे रहना चाहिए इसका विवेचन इस पुस्तक में किया गया है। अट्ठारह अध्यायों का यह ग्रन्थ विश्व मनुष्य को उसकी जीवन पद्धति की ओर निर्देश कर सकेगा। श्रेष्ठतम जीवन पद्धति द्वारा ही श्रेष्ठतम जीवन लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। वस्तुतः जीवन पद्धति स्वास्थ्य, आत्मविकास, आत्मकल्याण तथा दीर्घायु को प्रदान करती है। इसे विश्वमनुष्य अपने हित में प्रयोग में ला सके यही इसकी सफलता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में विषय का संवर्द्धन तो किया जा सकता है पर इसको संक्षिप्त नहीं किया जा सकता है। विश्वास है लोक जागरण में यह पुस्तक अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकेगी।

श्रीमती रेखा उपाध्याय

व्यवस्थापिका

त्रिस्कन्धज्योतिषम् प्रकाशन

विषय सूची

जीवनपद्धति-शिलाभित्ति

भगवती भूमि को वेदों में 'द्यावापृथ्वी' (स्वर्गयुक्त पृथ्वी) कहा गया है। समग्र ब्रह्माण्ड में जीवनदायिनी पृथ्वी 'वेदी' रूपा है। मनुष्य प्रजाति पृथ्वी की संतान है। अत: पृथ्वी पर मनुष्य कैसे दीर्घायु, स्वस्थ, तपस्वी, निरोग तथा समृद्ध बनकर रहे इसका विचार ऋषियों ने सृष्टि के आरम्भ से ही किया है। इस पृथ्वी में द्यौ: (स्वर्ग) लोक के गुण हैं और पृथ्वीत्व भी है। यह अस्तित्ववती है। अत: इसे **भूमि** कहते हैं। इसमें आकाश, तेज, वायु, जल तथा अन्य आकाशपिण्डीय अंश विद्यमान हैं। यह पृथ्वी स्वयं में पंचमहाभूत है। यह अपने भीतर हिरण्यरेत (अग्नि) को धारण करती है। फलत: इसके भीतर अग्निपुत्र 'स्वर्ण' प्राप्त होता है- **अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णम्।** वसु (धन) धारण करने के कारण इसे **वसुन्धरा** कहते हैं। अत: पृथ्वी का दोहन करने पर धन की प्राप्ति होती है। पृथ्वी की सर्वश्रेष्ठ संतान मनुष्य है। मनुष्य पृथ्वी को माता कहता है- **माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।** पृथ्वी में जनन की क्षमता है। अत: यह **जननी** है। इसकी परिधि सूर्यसिद्धान्त गणित ग्रन्थ में २१६०० कलाएँ बतलाई गई है। अत: स्वस्थ मनुष्य चौबीस घण्टे में इतनी बार ही श्वास लेता है। यह पृथ्वी का जननी होने का प्रमाण है। पृथ्वी परमात्मा विष्णु की पत्नी हैं- **विष्णुपत्नी नमस्तुभ्यम्।** माता भूमि अपनी संतानों को सभी प्रियवस्तु प्रदान करती हैं। अत: प्रात:काल उठकर इन्हें प्रणाम करते हुए मंत्र बोलते हैं- **नमोऽस्तु प्रियदत्तायै भुवे।** पृथ्वी महान् गुणों से युक्त होने से महीयसी (पूज्या) है अर्थात् **मही** है। यह अपने वक्ष पर सब कुछ धारण करती है। अत: यह **धरा** या **धरणी** है। इसमें सब कुछ उत्पन्न होता है। अत: यह **भूः** है। यह भवन, पशु, मनुष्य सभी का वहन करती है। अत: **अचला, स्थिरा** है। यह अव (रक्षा) करती है। अत: **अवनी** है। इसमें रस (स्वाद) है। अत: यह **रसा** है। यह पृथु (विस्तृत) होने से **पृथ्वी** है।

पृथ्वी, प्रकृति, परमात्मा और पुत्र-पुत्री (संतति) का समन्वय कैसे श्रेयस्कर, पुण्यप्रद, निर्मल, दीर्घायुष्यकारक हो इसी व्यवस्था का नाम हिन्दू जीवन पद्धति है। परमतत्त्व का चिंतन करते हुए जीवन को लक्ष्यबद्ध करना

परम उद्देश्य है। जन्म-जीवनकाल-कर्मफल-मृत्यु जीवनपद्धति का मुख्य आधार है। इसी में समस्त प्रवृत्तियों का आवर्तन होता रहता है। जीवन आवर्तन का स्तम्भ दिनरात्रि है। इसी में जीवन-मृत्यु का क्रम लगातार चलता रहता है। दिन-रात्रि, सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, आकाश, आप (जल), स्वयं का हृदय, यमराज, प्रात:-सायं संध्या तथा स्वयं का धर्म प्रभृति देवगणों से प्रतिक्षण मनुष्य का कर्म निरीक्षित होता रहता है-

आदित्यचन्द्रावनिलानलौ च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च।
अहश्च रात्रिश्च उभे च संध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम्।।

महाभारत, संभवपर्व, ७४/३०

अत: मनुष्य को यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि मेरे द्वारा किये जा रहे पापकर्मों को दूसरा नहीं जान रहा है। मेरे गोपनीय अशुभ आचरणों को मेरे अतिरिक्त और दूसरा कोई नहीं जान सकता ऐसा भूल कर नहीं सोचना चाहिए-

मन्यते पापकं कृत्वा न कश्चिद् वेत्ति मामकम्।
विदन्ति चैनं देवाश्च यश्चैवान्तर पूरुषः।।

महाभारत, संभवपर्व, ७४/२९

आज का मनुष्य अपने भीतर के अन्त:पुरुष (अन्तर्यामी, अन्तरात्मा) को न पहचानता है, न उसकी आवाज को सुनता है, न उसके निर्देश पर चलता है। फलत: हमें किस दिशा में; किस पथ पर चलना चाहिए इस सद्बुद्धि-सद्विवेक-सद्धर्म को ऋषियों ने जीवन पद्धति में निर्देशित किया है। ऋषि निर्देशित जीवन पद्धति को जो भी अपनायेगा वह धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को इस धरती पर प्राप्त कर लेगा।

भू:, भुव:, स्व: इन तीन व्याहृतिंयों का परस्पर अन्योन्य सम्बन्ध है। ये तीनों लोक एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। भूर्लोक पर मनुष्य निवास करता है। मानवी सृष्टि श्रेष्ठतम सृष्टि है। **'न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्'** अर्थात् मनुष्य से श्रेष्ठ पार्थिव सृष्टि में कुछ भी नहीं है। अंतत: मनुष्य में कौन-सी ऐसी विलक्षण उपलब्धि है जो अन्य प्राणियों में नहीं है? इस पर विचार करना ही जीवन के लक्ष्य को निश्चित करने में सहयोगी होता है। मनुष्य के भीतर अन्य प्राणियों से अधिक बुद्धि है। इसी तीव्र बुद्धि के कारण मनुष्य अन्यजीवों से श्रेष्ठ होता है। बुद्धिमान् मनुष्य में भी विद्वान् श्रेष्ठ होता है और

विद्वानों में भी दृढ़निश्चयी श्रेष्ठ होता है। दृढ़निश्चयी ब्रह्मवेत्ताओं (ब्राह्मणों) से इस धरती पर दूसरा कोई भी श्रेष्ठ नहीं है। आत्मज्ञान और सृष्टि-विनाश का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने वाला ही धरती पर श्रेष्ठ मनुष्य है। इस धरती पर उसी मनुष्य का जीवन सार्थक है जो जन्म-मृत्यु के भयावह प्रवाह से बाहर निकलने का निश्चय कर तप करता है। इस तथ्य का उल्लेख भारतीय परम्परा में सर्वत्र व्याप्त है-

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः।।
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः।।

भविष्यपुराण, ब्राह्मपर्व, २/१२९-१३०।।

इस धरती पर ब्रह्मबुद्धि समन्वित क्रिया करने वाला ही श्रेष्ठतम होता है; अन्यथा प्राणियों में अन्य कोई विभेद ऐसा नहीं है जो किसी को श्रेष्ठ या किसी को निकृष्ट सिद्ध कर सके। सभी मनुष्यों का शरीर अवयव, भीतरी बनावट, सुख-दुःख की अनुभूति, भय-अभय का भाव एक जैसा होता है। सभी में वीर्य, आकृति (स्वरूप), कार्य-व्यापार, प्रबलता-दुर्बलता, स्वास्थ्य-बीमारी, मैथुन, जीवन, मृत्यु, प्रेम, घृणा, हड्डी, मांस, रक्त समान भाव से है, एकरूप है। इन समस्त भीतरी-बाहरी बनावटों के आधार पर किसी को एक दूसरे से श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता है। मानव मात्र में श्रेष्ठता के लक्षणों को ढूँढ़ने पर व्यापकता के साथ कोई एक लक्षण ऐसा नहीं मिलेगा जो किसी मनुष्य को दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध कर सके। यदि कोई नृतत्त्वशास्त्रीय दृष्टि से श्रेष्ठता के मापक लक्षण को स्थापित भी करता है तो वह कुछ दिनों बाद विफल, अप्रामाणिक और मनगढ़ंत सिद्ध होगा। सभी मनुष्य रज-वीर्य से उत्पन्न होते हैं। सभी को गर्भ में रहना पड़ता है। सभी में वाणी, बुद्धि, भाव, कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन, प्राण समानरूप से हैं। सभी मनुष्य प्राणियों का उत्पादक प्रजापति एक होने से मनुष्य में विभेद नहीं होता है-

तस्मान्न विभेदोऽस्ति न बहिर्नान्तरात्मनि।
सुखादौ न वैश्वर्ये नाज्ञायां नाभयेष्वपि।।
न वीर्ये नाकृतौ नाक्षे न व्यापारे न चायुषि।
नाङ्गे पुष्टे न दौर्बल्ये न स्थैर्ये नापि चापले।।

न प्रज्ञायां न वैराग्ये न धर्मे न पराक्रमे।
न त्रिवर्गे न नैपुण्ये न रूपादौ न भेषजे।।
न स्त्रीगर्भे न गमने न देहमलसम्प्लवे।
नास्ति-रन्ध्रे न च प्रेम्णि न प्रमाणेषु लोमषु।।
शूद्रब्राह्मणयोर्भेदो मृग्यमाणोऽपि यत्नतः।
नेक्ष्यते सर्वधर्मेषु संहतैस्त्रिदशैरपि।।

भविष्यपुराण, ब्राह्मपर्व, ४१/३५-३९।।

सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि किसी का भी शरीर न ब्राह्मण होता है; न शूद्र, न तो म्लेच्छ। जो देह को ब्राह्मण या शूद्र मानते हैं वे अज्ञानी हैं। ब्राह्मणत्व देह का स्वरूप भी नहीं है-

देहस्य ब्राह्मणत्वं यैरतत्त्वज्ञैः प्रकल्प्यते।
मृग्यमाणे प्रयत्नेन देहे तन्नोपलभ्यते।।

भविष्यपुराण, ब्राह्मपर्व, ४१/५४।।

इस सृष्टि समुद्र में करोड़ों जातियाँ डूबी पड़ी रहती हैं। जातियों में पैदा होना पूर्व जीवन के कर्मों के परिणाम से बंधा है। जातकर्म, नामकरण, उपनयन आदि संस्कार से संस्कारित जन भी अपकर्म करने लगते हैं। नीच स्थिति में उत्पन्न होकर भी ब्राह्मणत्व प्राप्ति के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं; जैसे महर्षि व्यास ने केवट स्त्री (सत्यवती) से उत्पन्न होकर भी ब्रह्मर्षि पद को प्राप्त किया, शुक (तोती) से उत्पन्न शुकदेव मुनि ने जन्मना वैराग्य प्राप्त किया, उल्लूकी गर्भ से उत्पन्न महर्षि कणाद ने ब्रह्मविद्या को प्राप्त किया, मृगी से श्रृङ्गी ऋषि ने जन्मग्रहण कर ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया, लावा पक्षी से मंदपाल ऋषि, मेढ़की से माण्डव्य ऋषि ने शरीर ग्रहण किया; पर इन सभी ने ब्राह्मणत्व और ऋषित्व को प्राप्त किया। किसी जाति और शरीर में जन्मग्रहण करने की परिस्थिति पूर्वजीवन के कर्म के आधार से बँधी है। इस जीवन में शरीर से तो केवल तपस्या से ही ब्राह्मणत्व प्राप्त किया जा सकता है, जैसे राजर्षि विश्वामित्र ने ब्रह्मर्षि विश्वामित्र पद को प्राप्त किया-

तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्।

(तप संस्कार के कारण ब्राह्मणत्व का निर्माण होता है।)

तप करने की प्रवृत्ति, संस्कार ही मनुष्य की श्रेष्ठता का आधारभूत कारण है। अत: तपस्या से पूर्ण जीवन व्यतीत करना ही हिन्दू जीवन पद्धति है। तपस्या से भागना; उसे छोड़कर सुख मार्ग, निम्नगमन का पथ स्वीकार करना हिन्दू जीवन पद्धति के प्रतिकूल है। ब्रह्म विद्या और तप को प्राप्त करके नीच जाति, नीच परिस्थिति में उत्पन्न लोग भी उत्कृष्ट फल प्राप्त कर सकते हैं। इसी मार्ग का दर्शन कराती है हिन्दू जीवन पद्धति।

आज का 'विश्वमनुष्य' अनियंत्रित उपभोग कर रहा है। उसमें आत्म अनुशासन और आत्मनियंत्रण का व्यावहारिक पक्ष दुर्बल होता जा रहा है। हजारों वर्षों की अपनी मान्यताओं, अभिरुचियों और स्वेच्छाचार के कारण दिव्यपथ पर चलने को वह तैयार ही नहीं हो रहा है। वैयक्तिक सुख का पर्याय उसे काम (Sex) और दाम (wealth) से अधिक कुछ नहीं दिखलाई दे रहा है। प्रायश: जिंदगी को घटिया सुख (इंज्वायमेंट) में ही अनुरक्त रखना स्वस्थ और आधुनिक दृष्टि बन गयी है। दूसरी ओर आत्मस्थ होकर आनन्द लेने वाली प्रवृत्ति के पथिक हैं जो विचारपूर्वक आगे बढ़ते हैं। ऐसे ही दो विरोधाभासी तटों से विश्वमनुष्य गुजर रहा है। पश्चिम की जीवन पद्धति और उसकी विचारसरणि हिन्दुओं की तरह सर्वांगिण और योगदृष्टि सिद्ध नहीं है। उनमें सिद्ध अन्त जैसा कोई सिद्धान्त भी नहीं है। पूरा यूरोप अपनी जीवनशैली से त्रस्त भी है और उसी में व्यस्त भी है। उसके पास परिवार (Family) संस्था नहीं है। वह एक पत्नी में विश्वास नहीं रखता। काम (Sex) की पवित्रता उसके लिए सहमति तक सीमित है। जब परिवार नहीं होगा तो उसमें बूढ़े, बच्चे और गर्भिणी कहाँ होंगी? उनके लिए ओल्ड हाउस, क्रेच, हास्टल और हास्पिटल होंगे। उनके लिए नदियाँ माँ नहीं है। पर्वत पिता नहीं है फिर पर्वत की परिक्रमा क्यों होगी? वे खड़ा होकर आज भी मूत्र-मल का विसर्जन करते हैं। सफाई हेतु पानी का प्रयोग वे नहीं करते हैं। पखाना कर कागज से सफाई करना उन्हें पसंद हैं; पर भारत में तो पखाना के बाद जल से धुलाई और साबुन या मिट्टी से हाथ की सफाई अनिवार्य प्रतिदिवसीय कर्म है। भारत में आज भी प्रतिदिन स्नान करना आवश्यक आदत में है। अपने घर में लोग जूता-चप्पल निकाल कर प्रवेश करते हैं; सोते हैं, खाते हैं; पूजा करते हैं। यूरोपीय जीवन के विघटित स्वरूप, अव्यवस्थित दिनचर्या, अतार्किक शौच, भक्ष्याभक्ष्य भोजन, रात्रिजागरण-दिन में शयन, मांस-मदिरा में अनुराग, उन्मुक्त काम, अब पिछलग्गू, अनुगमनीय भारतीयों को भी अच्छा लगने लगा है। यूरोप धीरे-

धीरे अपनी स्थिति से बाहर निकल रहा और भारत के अनेकानेक लोग उस अंधविवर में प्रवेश करने को आतुर हैं। ईसाइयत का इतिहास जानने वाले लोग जानते हैं कि छिन्न-भिन्न पश्चिमी समाज धीरे-धीरे उत्तर आधुनिक युग में हिन्दू जीवन पद्धति को गहराई से समझ रहा है। उन्मुख हो रहा है। प्रतिदिवसीय शुभकर्मों का उल्लेख भारतवर्ष में आयुर्वेद, वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र, लौकिकविज्ञान, युद्ध कला तक में स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है। आयुर्वेद का सद्‌वृत्त और उसकी दिनचर्या अब लोगों को समझ में आने लगी है। फलतः जीवनपद्धति का आदान-प्रदान सम्यक् रूप से विश्वस्तरीय परिवेश में हो सके इसके लिए इसका लिखित स्वरूप होना आवश्यक है। १६वीं शताब्दी के बाद हिन्दी भाषा या किसी अन्य भारतीय भाषा में संपूर्णता और विस्तार के साथ जीवनपद्धति का निर्माण नहीं हो सका। मित्रमिश्र का वीरमित्रोदय ग्रन्थ हिन्दू जीवन पद्धति को व्यापक फलक देता है। यह ग्रन्थ संस्कृत में है और अतिविस्तृत है। इस ग्रन्थ को आज संस्कृत के विद्वान् भी नहीं पढ़ते हैं फिर अन्यों से क्या अपेक्षा की जा सकती है? इस ग्रन्थ को आधार बना कर हिन्दू जीवन पद्धति का धार्मिक स्वरूप निर्दिष्ट किया गया है। आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थों से स्वास्थ्य और सद्‌वृत्त को समाविष्ट किया गया है। वेद; पुराण, निबन्धग्रन्थों में से भी प्रतिदिवसीय व्यवहार के तत्त्वों को इसमें समाविष्ट किया गया है। वस्तुतः जीवन पद्धति के सम्यक् स्वरूप को सामान्यजन तक पहुँचाना ऋषिकर्म है। इसे अवश्य किया जाना चाहिए। दायें हाथ से भोजन करने से, मूत्र-मल त्याग कर कुल्ला करने से, मौन हो कर भोजन करने से, जूता चप्पल निकाल कर बैठ कर खाने-पीने से, अनग्न स्नान करने से, सूखे कपड़े से स्नान के बाद शरीर पोंछने से; भोजन करके सौ कदम पैदल चलने से, बड़ों को प्रणाम करने से, पूर्व या दक्षिण दिशा की ओर सिर करके सोने से, तिलक-चन्दन लगाने से, गायत्री मंत्र जप से, गो ग्रास देने से, चीटियों-पक्षियों को भोजन देने से आयु, बल, तप, विद्या, यश बढ़ता है यह जानकर कौन व्यक्ति है जो इसे न करना चाहे? लोगों को सामान्य व्यवहार के द्वारा शुभंत्व प्राप्ति का रहस्य मालूम होने लगे तो प्रत्येक व्यक्ति उसे करना चाहेगा। अतः प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में हजारों ऐसी विधियाँ और निषेध ज्ञात होने चाहिए जिससे मनुष्य अपनी आयु और स्वास्थ्य को ठीक रख सके। अज्ञान में किये गये उसके आचरण से आयु हानि न हो सके; जैसे अग्नि में पेशाब करने से आयु और नेत्र ज्योति क्षीण होती है।

प्रचण्ड कर्म का परिणाम शुभ नहीं होता है। हत्या का परिणाम कभी भी सुखकारी नहीं होता है। चोरी, जीवहत्या, गोहत्या, भ्रूणहत्या, मांस भक्षण, मदिरापान तथा परस्त्री रमण का दुष्प्रभाव जब जीवन में प्रकट होता है तब उस समय कोई रक्षक नहीं मिलता है। अनावश्यक झूठ बोलना, दूसरों को पाप में प्रेरित करना, मदोन्मत्त हो प्रलाप करना, ईश्वर का खण्डन करना, अपनी महिमा का मण्डन करना, अपनी चित्तवृत्ति को हमेशा दूषित रखना, दोषों को सुखकारी मान कर उनमें रमना, धूर्तता करना, शठता करना, निर्लज्जता करना, सर्वभक्षी होना, सर्वविक्रयी होना, वाणी-शरीर और मन से दसविध पापों को करना, प्रत्येक व्यक्ति के लिए अशुभ, हानिकारक, पाप कारक, आयुनाशक, अपयश दायक होता है। इससे न केवल उस व्यक्ति को हानि पहुँचती है; बल्कि परिवेश, समाज और राष्ट्रजीवन तथा पृथ्वी भी इन कर्मों से पीड़ित होती है। अत: शुभकर्मों का एक स्थान पर संचय, अपकर्मों का निवारण आवश्यक ऋषिकर्म होता है। विश्व का सर्वोच्च पद है ऋषि। ब्रह्मर्षि बनना मानवी सृष्टि में सर्वोच्च से सर्वोच्चतम उपलब्धि है। किसी भी मनुष्य शरीर से प्रबल तप, प्रबल संस्कार से ऋषिपद की प्राप्ति होती है। इसी को ब्राह्मणत्व भी कहते हैं। यह ब्राह्मणत्व शरीर नहीं है। यह तप: क्रिया से निर्मित तत्त्व है। ऋषित्व या ब्राह्मणत्व प्राप्ति के माध्यम को विश्लेषित करने पर लगता है विश्व में मानवता की सर्वोच्च पराकाष्ठा तो इन्हीं तत्त्वों में निहित है। ऋषियों में ये सभी तत्त्व सहज ही मिलते हैं-

१. हेय (त्याज्य) - उपादेय (ग्राह्य) का तत्त्व विवेक २. अनीति का त्याग करना ३. जितेन्द्रिय बनना ४. मन-वाणी-सादाचार से युक्त रहना ५. नियम-आचार से जुड़े रहना ६. प्राणिहित अन्वेषण में युक्त रहना ७. विश्व रक्षा हेतु अभिलाषा रखना ८. तत्त्व ज्ञान (आत्म दर्शन) हेतु समाधि लगाना ९. क्रोधरहित होना १०. वेद अध्ययन करना ११. भक्ति युक्त रहना १२. विषय (रूप, रस, गंध, काम, क्रोध, मद, लोभ) से मुक्त रहना १३. ईर्ष्या रहित होना १४. शोक रहित १५. मद रहित १६. शान्त १७. सभी प्राणियों के हितसाधक रहना १८. सुख-दु:ख में सम रहना १९. एकान्त प्रिय रहना २०. तन-मन-बुद्धि से व्रती होना २१. धार्मिक रहना २२. पाप से डरना २३. निर्मोही २४. निरभिमानी २५. दानवीर २६. दयालु २७. सत्य ब्रह्म का ज्ञान रखना २८. शाँत २९. सर्वशास्त्रविशारद तथा ३०. सर्व प्राणि हितैषी होना। इन तीस गुणों से युक्त मनुष्य को भगवान् ब्रह्मा जी ने ब्राह्मण कहा है। ऐसे ही व्यक्ति में ब्राह्मणत्व का निवास

होता है। विश्व का कौन ऐसा व्यक्ति है जो इन सद्गुणों में श्रद्धा न रखता हो? इन गुणों को श्रेष्ठ न कहता हो? जो व्यक्ति इन गुणों को श्रेयस्कर नहीं मानता है वह निश्चित ही राक्षसी प्रवृत्ति का, लोक विरोधी होगा। ऋषित्व के इन मानदण्डों को भविष्यपुराण में इस प्रकार से कहा गया है-

हेयोपादेयतत्त्वज्ञास्त्यक्तान्याय - पथागमाः।
जितेन्द्रियमनोवाचः सदाचारपरायणः।।

नियमाचारवृत्तस्था हितान्वेषणतत्पराः।
संसाररक्षणोपायक्रियायुक्तमनोरंथाः ।।

सम्यग्दर्शनसम्पन्नाः समाधिस्था हतक्रुधाः।
स्वाध्यायभक्तहृदयास्त्यक्तसङ्गा विमत्सराः।।

विशोका विमदाः शान्ता सर्वप्राणिहितैषिणः।
सुखदुःखसमालोका विविक्तस्थानवासिनः।।

व्रतोपयुक्तसर्वाङ्गा धार्मिकाः पापभीरवः।
निर्ममा निरहंकारा दानशूराः दयापराः।।

सत्यब्रह्मविदः शान्ता सर्वशास्त्रेषु निष्ठिताः।
सर्वलोकहितोपायप्रवृत्तेन स्वयंभुवा।।

भविष्यपुराणम्, ब्राह्मपर्व, ४४/६-११।।

हिन्दू मनीषा ने पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ मानव जीवन की अद्भुत परिकल्पना की और उस कल्पना को अपने तप द्वारा साकार किया। साथ ही विश्व के मनुष्यों को संदेश दिया कि तुम भी ऋषि बन सकते हो। इस पथ पर चल कर तो देखो। केवल तीन वर्ष चल कर देखो। तुम्हारे जीवन में ईश्वरीय ऊर्जा का प्रवेश हो जायेगा और तुम अजेय, अप्रतिहत और निर्भय हो जाओगे। ऋषि में कौन-कौन से तत्त्व अनिवार्य हैं? इन्हें जान कर कोई भी व्यक्ति इस दिशा में प्रवृत्त हो सकता है। ये तत्त्व निम्नलिखित हैं-

१. क्षमा २. दम ३. दया ४. दान ५. सत्य ६. शौच (शुद्धि) ७. धृति (धैर्य) ८. धृणा (धारणा) ९. मार्दव (मृदुता) १०. आर्जव (सरलता) ११. संतोष १२. अनहंकार १३. तप १४. शम १५. धर्म १६. ज्ञान,

१७. अपैशून्य (अक्लीबता, पुरुषार्थ) १८. ब्रह्मचर्य १९. अमूढ़ता (विद्वत्ता) २०. ध्यान २१. आस्तिक्य २२. अद्वेष २३. वैराग्य २४. शमात्मता (आत्मवत् दृष्टि) २५. पाप से भय करना २६. अचौर्य २७. अमात्सर्य (डाह रहित) २८. अतृष्णा २९. निःसंगता ३०. गुरुशुश्रूषा ३१. मन-बुद्धि-काय संयम। इन सभी गुणों को अपने अंदर धारण करके मनुष्य तीन वर्ष के भीतर ऋषित्व या ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है-

य एवं भूतमाचारमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
ब्राह्मणत्वं पुष्कलं तेषां नित्यमेव प्रवर्धते।।

भविष्यपुराणम्, ब्राह्मपर्व, ४४/१५.

हिन्दू जीवन पद्धति मन को पवित्र बनाने पर जोर देती है। शरीर को पवित्र कर लेना आसान है पर मन को पवित्र करना अतिकठिन है। ऊपरोक्त मर्यादाओं को धारण करने वाला मर्यादापुरुष होता है। सद्गृहस्थ भी निर्विघ्न जीवन व्यतीत करता हुआ इन तत्त्वों को धारण करके ऋषि बन सकता है। ऐसा कोई भी ऋषि नहीं है जो वंशहीन हो। प्रायशः सभी की धर्मवल्लभा होती थी। सद् गृहस्थ ही अविचलित तपस्वी हो सकता है यदि वह काम, क्रोध, लोभ, मोह से ऊपर उठ जाये।

प्रायशः मन में संदेह उठता है कि इन तत्त्वों के बहाने 'ब्राह्मणवाद' जैसा निरर्थक; निःसार परिवेश बनाया जाता है। ऐसा सोचना अपने साथ अन्याय करना है। तेरह शील, तीस तत्त्व एवं अपने स्वाभाविक कर्म (अध्ययन-अध्यापन, दान-प्रतिग्रह, यजन-याजन) तथा ज्ञान-विज्ञान-आस्तिक्य से रहित ब्राह्मण शूद्र से निम्न होता है। अपने धर्म में निरत शूद्र उतना ही महत्त्वपूर्ण होता है जितना अपने धर्म में निरत अन्य जाति या मनुष्यवर्ग होता है। शूद्र में यदि तेरह शील हों तो वह ब्राह्मण से अधिक फलवान्, ईश्वरीयकृपा का पात्र होता है-

शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो ब्राह्मणादधिको भवेत्।
ब्राह्मणो विगताचारः शूद्राद् हीनतरो भवेत्।।

भविष्यपुराणम्, ब्राह्मपर्व, ४४/३१।।

केवल शराब का परित्याग कर देने वाला निरामिष शूद्र तपस्वी कोटि में आ जाता है- **सच्छूद्रो हि स उच्यते।**

महर्षि व्यास ने उद्घोष के साथ कहा है कि- वृत्त (चरित्र) से ही

व्यक्ति द्विजत्व (ब्राह्मणत्व) को प्राप्त करता है। शील और चरित्र के द्वारा मनुष्य शरीर में ब्राह्मणत्व का निवेश होता है। चरित्र रहित ब्राह्मण शरीर भी अधम होता हैं और चरित्र से युक्त निम्न जाति का शरीरधारी व्यक्ति भी पूज्य होता है-

यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्मे च सततोत्थितः।
तमहं ब्राह्मणं मन्ये वृत्तेन हि भवेद् द्विजः।।

व्यासः।

संपूर्ण पृथ्वी पर मानवजाति एक जैसी है। सभी में अनुभूति-श्वास-आयु प्रायश: एक जैसी है। अत: ऋषिबुद्धि विभेद किये बिना सर्व लोक कल्याण कामना से जीवनपद्धति को रचती है। इसी मार्ग पर चल कर वसिष्ठ-विश्वामित्र-अगस्त्य-याज्ञवल्क्य-कात्यायन-भारद्वाज-मार्कण्डेय-अत्रि-पराशर-व्यास-अंगिरा-गर्ग-वाल्मीकि-सुतीक्ष्ण-हारीत-कृष्णात्रेय आदि बना जा सकता है।

हे परमेश्वर! हे सर्वशक्तिमान्!! यह विश्व आपका ही दृश्यमान् अंश है। इस विश्वनीड में बसा हुआ विश्वमनुष्य आपका ही अंश है। विश्वनीड में बसा विश्वमनुष्य एक ही विश्वकुटुम्ब का सदस्य है। पृथ्वी पर जात (उत्पन्न) विश्वमनुष्य के आंगन में स्पृहणीय, श्रेयस्कर, पवित्र धन को भर दें जिससे हम सभी समृद्धिशाली हो जायें। हे ईश्वर! विश्वमनुष्य जानता है कि आप के पास आवश्यकता से अधिक देने को शुभ धन है-

यस्य ते विश्वमानुषं भूरेर्दत्तस्य वेदति।
वसु स्पार्ह तदा भर।।

ऋग्वेदः, ८/४५/४२

विश्वमनुष्य स्वस्थ, समृद्ध, शुभशील, दीर्घायु होकर सत्पथ पर बढ़े और उसके पुण्य का कभी भी आकस्मिक क्षरण न हो यही स्वस्ति कामना है।

विदा पुनरागमनाय

देवतायन
९६, जानकी नगर
पटिया, बजरडीहा,
वाराणसी - २२१००९ (उ.प्र.)

ओमेश्वर उपाध्यायः

मकरसंक्रान्ति, संवत् २०६७

जीवन पद्धति ?

सनातन धर्म और सनातन जीवन पद्धति को अब तक न जाने कितने नामों से पुकारा गया है। मूलरूप से इसे अगणित काल से 'सनातन धर्म' कहा जाता रहा है। 'धर्म' शब्द स्वाध्याय-तपस्या-सदाचार-यज्ञ की कुक्षि (कोख) से पैदा हुआ है। विश्व में 'धर्म' शब्द का प्रयोग श्रुतियों एवं स्मृतियों की परंपरा में ही हुआ है। 'धर्म' न 'रीलिजन' है, न 'मजहब' है, न 'पन्थ' है, न 'सम्प्रदाय' है। धर्म केवल धर्म है। धर्म शब्द से पहले जितने भी शब्द प्रयुक्त हुए हैं वे सभी के सभी धर्म के विशेषण हैं, पूरक नहीं। आज हम जिसे हिन्दू धर्म कहते हैं यह नवीनतम प्रवृत्ति है। 'हिन्दू' शब्द की आयु बहुत थोड़ी हुई है। इसके पहले इस धर्म को अनेक नामों से अभिहित किया जा चुका है; जैसे- अव्ययधर्म, सत्यधर्म, सनातनधर्म, अश्वत्थधर्म, अयोनिजधर्म, वैदिकधर्म, वर्णाश्रमधर्म, यज्ञधर्म, अविनाशीधर्म, आर्यधर्म, वेदान्तधर्म, वैष्णवधर्म, अहिंसाधर्म, मानवधर्म, मूर्तिपूजकधर्म, प्रकृतिपूजकधर्म, भारतीयधर्म, हिन्दूधर्म। आज 'हिन्दूधर्म' के नाम से अंग्रेजों और अरबदेशवासियों में प्रचलित यह धर्म नूतन संज्ञा, नूतन नाम और नूतनप्रवृत्ति है; पर इसकी जड़ें सत्य-सनातन और ऊर्ध्व में ही हैं। अतः यह ऊर्ध्वमूल धर्म है। धर्म को जीने की पद्धति वही है जो अरबों वर्ष पहले थी। यह योग सिद्ध पद्धति है। आज इसे हम भारतीय जीवन पद्धति कहते हैं। भारतवर्ष शब्द प्राचीनतम है। 'भा' का अर्थ है- प्रकाश, ज्ञान। 'रत' का अर्थ है- संलग्न, निरत। इस प्रकार से 'भारतवर्ष' का अर्थ है- प्रकाश का देश, ज्ञान का देश। इस पृथ्वी पर ज्ञान से अधिक पवित्र कुछ भी नहीं है- न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। गीता। अतः पवित्रतम ज्ञान को जीवन में निरन्तर धारण करने वाला देश भारतवर्ष है। यहाँ की जीवन पद्धति भारतीय जीवन पद्धति है। इसे ही हिन्दू जीवन पद्धति कहते हैं। इस जीवन पद्धति को अपनाकर इस सृष्टि में कोई भी व्यक्ति पवित्रतम ज्ञानी बन सकता है। ●

दिनचर्या का महत्त्व

व्यक्ति चाहे जितना भी दीर्घायु क्यों न हो वह इस पृथ्वी पर अपना जीवन व्यवहार चौबीस घण्टे के भीतर ही व्यतीत करता है। वह अपना नित्य कर्म (दिनचर्या), निमित्त कर्म (जन्म-मृत्यु-श्राद्ध-संस्कार आदि) तथा काम्य कर्म (मनोकामना पूर्ति हेतु किया जाने वाला कर्म) इन्हीं चौबीस घण्टों में पूर्ण करता है। इन्हीं चक्रों (एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय) के बीच वह जन्म लेता है, पलता-बढ़ता है और मृत्यु को प्राप्त कर जाता है-

अस्मिन्नेव प्रयुञ्जानो ह्यस्मिन्नेव तु लीयते।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यं सुखमिच्छता।।

दक्षस्मृतिः, २/५७।।

अतः व्यक्ति को प्रयत्नपूर्वक मन-बुद्धि को आज्ञापित करके अपनी दिनचर्या को सुसंगत तथा सुव्यवस्थित करना चाहिए। ब्राह्ममुहूर्त्त में जागकर स्नान पूजन करने वाला, पूर्वाह्न में भोजन करने वाला, मध्याह्न में लोकव्यवहार करने वाला तथा सायंकृत्य करके रात्रि में भोजन- शयन करने वाला अपने जीवन में आकस्मिक विनाश को नहीं प्राप्त करता है-

सर्वत्र मध्यमौ यामौ हुतशेषं हविश्च यत्।
भुञ्जानश्च शयानश्च ब्राह्मणो नावसीदती।।

दक्षस्मृतिः, २/५८।।

उषःकाल में जागकर, शौच कर, गायत्री-सूर्य की आराधना करने वालां, जीवों को अन्न देने वाला, अतिथि सत्कार कर स्वयं भोजन करने वाला, दिन में छः घण्टा जीविका सम्बन्धी कार्य करने वाला, सायं में सूर्य को प्रणाम करने वाला, पूर्व रात्रि में जीबिका, विद्या आदि का चिन्तन करने वाला तथा रात्रि में छः घण्टा सुखपूर्वक शयन करने वाला इस धरती पर वाँछित प्राप्त कर लेता है। अतः दिनचर्या ही व्यक्ति को महान् बनाती है। जो प्रतिदिवसीय दिनचर्या में अनुशासित नहीं है वह दीर्घजीवन में यशस्वी और दीर्घायु हो ही नहीं सकता। अतः सर्व प्रथम अपने को अनुशासित करना चाहिए। अनुशासित व्यक्तित्व सृष्टि का श्रेष्ठतम व्यक्तित्व होता है और अनुशासन दिनचर्या का अभिन्न अंग होता है। ●

जीवन यज्ञ है

ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय (अचौर्य), अपरिग्रह (असंचय) अथवा अकुटिलता इन पाँचों वृत्तियों से निष्काम कर्म करने वाला श्रेय (मोक्ष) प्राप्त करता है। इन पाँचों प्रवृत्तियों से सकाम कर्म करने वाला पृथ्वी पर प्रेय (वाँछित वस्तु) प्राप्त कर लेता है। इन्हें 'यम' कहते हैं। ये उपव्रत कहे गये हैं।

ब्रह्मचर्यमहिंसा च सत्यास्तेयापरिग्रहान्।
सेवेत योगी निष्कामो योग्यतां स्वमनो नयन्।।

विष्णुपुराणम्, ६/७/३६।।

अहिंसा सत्यवचनं ब्रह्मचर्यमकल्कता।
अस्तेयमिति पञ्चैते यमाश्चोपव्रतानि च।।

मनुस्मृतिः, ४/२०४ क।।

हिन्दू जीवन पद्धति में ये पाँचों यम प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। हिन्दू स्वभावतः योगी होता है। वह अस्वाभाविक भोगी होता है। पश्चिम की जीवन पद्धति ब्रह्मचर्य को नकारती है। अहिंसा वहाँ के जीवन के मूल में स्थान ही नहीं रखती। अहिंसक शाकाहारी होता है। ब्रह्मचर्य की मूलप्रवृत्ति को नकारने से तप की हानि और उच्छृङ्खल काम की वृद्धि होती है। धर्म द्वारा अनुमोदित काम यज्ञस्वरूप होता है। हिन्दू जीवन को यज्ञ मानता है। स्वाध्याय, शौच (पवित्रता), संतोष, तप, नियतात्मवान् होना जीवन को यज्ञ के अनुकूल बनाता है। वेदाध्ययन में रत, शौच, संतोष, तप में संलग्न, ईश्वरोन्मुख हो कर जीने वाला व्यक्ति मानवजीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करता है।

अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम्।
अप्रमादश्च नियमाः पञ्चैवोपव्रतानि च।।

मनुस्मृतिः, ४/२०४ ख।।

अक्रोध, गुरुसेवा, शौच, अल्प भोजन तथा अप्रमाद ये पाँच नियम होते हैं। भारतीय (हिन्दू) जीवन पद्धति में इन यम-नियमों का यदा-कदा-सदा दर्शन होता रहता है। ●

पञ्चमहाभूत और जीवन

यह शरीर पञ्चमहाभूतों से उत्पन्न है। यह पञ्चमहाभूतों से उत्पन्न पदार्थों अन्न (भूमि), जल (आप), तेज (अग्नि), हवा (वायु) तथा शब्द (आकाश) को ग्रहण कर जीवित रहता है। अतः मनुष्य इस पृथ्वी पर जीवन काल पर्यन्त देह के लिए ही सब कुछ एकत्रित करता रहता है–

सर्वं देहोपभोगाय कुरुते कर्म मानवः।
देहश्चान्यो यदा पुंसस्तदा बन्धाय तत्परम्।।

विष्णुपुराणम्, ६/७/१६

देह से ऊपर उठ कर आत्मा के लिए प्रयत्न करने की विधि के सन्दर्भ में निरंतर यत्नशील रहने की बात केवल हिन्दू जीवन पद्धति में की जाती है। देह और आत्मा का सम्यक् उपयोग कर सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लेना हिन्दू जीवन पद्धति की मूल प्रवृत्ति है। देह के बिना आत्मा अदृश्य है, निर्गुण है। वैसे ही आत्मा के बिना यह शरीर शव हो जाता है। पंचमहाभूतों के गुण-धर्म से मानवशरीर युक्त है। इस शरीर के भीतर आकाश, वायु, जल, तेज, भूमि व्याप्त है। मनुष्य पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार (आत्मा) तत्त्व से बना है। अतः इस पृथ्वी पर इन तेरह तत्त्वों के गुणन परिणाम के तुल्य मानव की स्थिति (संख्या) रहती है। यह संख्या ६,२२,७०,२०,८०० है। परमर्षि कपिल के अनुसार इस पृथ्वी पर मनुष्यप्रजाति की संख्या इन्हीं तेरह तत्त्वों के गुणनतुल्य परिणाम वाली होगी। इससे अधिक मानव संख्या होने पर प्रकृति उसे नियंत्रित कर लेती है। इस पृथ्वी पर जितने मनुष्य होंगे उनसे बीस गुणित अधिक जलचर, थलचर, नभचर, कृमि, कीट, पतंग, मक्खी आदि जीव होंगे। ये सभी पृथ्वी के अनिवार्य अंग है। साथ ही मनुष्य के लिए उपकारी भी हैं। अतः अनुशासित होकर पञ्चमहाभूतों का उपयोग करना तथा अन्य जीवों से आत्मीय भाव रखना हिन्दू जीवन पद्धति है। ●

भूख, भय से ऊपर जीवन

मनुष्य का तन पूरी पृथ्वी पर भूख; प्यास, निद्रा, मैथुन, भय से प्रभावित होकर एक जैसा आचरण करता है। मनुष्य का तन उसके मन से संचालित होता है। मन ग्यारहवीं इन्द्रिय है। मन को संयमित रखना और तन को पवित्र रखना भारतीय जीवन पद्धति का प्रतिदिवसीय कर्म है। अन्न-जल-व्यवहार की शुद्धि से मन की शुद्धि होती है। शौच से तन की शुद्धि होती है। इन दोनों प्रकार की शुद्धियों से मन को निर्विषयी (भोगवाद से रहित) बनाया जाता है-

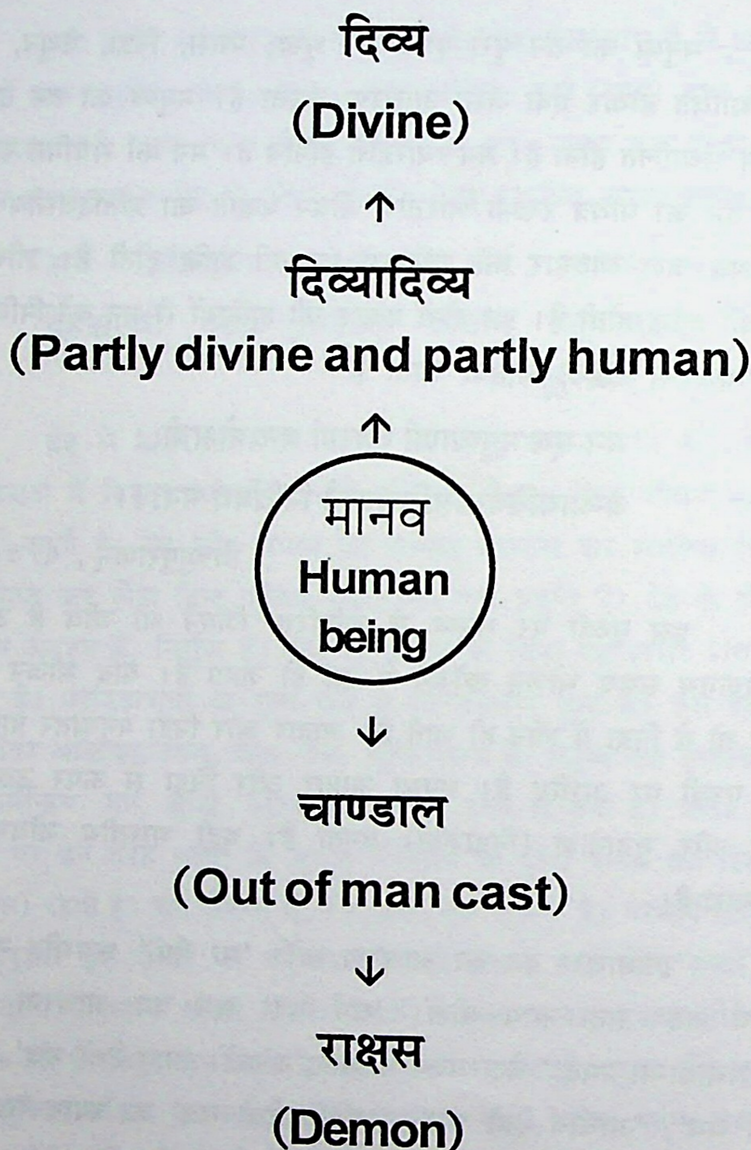
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धायविषयासङ्गिमुक्त्यै निर्विषयं मनः।।

विष्णुपुराणम्, ६/७/२८

इस पृथ्वी पर मनुष्य से अतिरिक्त जितने भी जीव हैं उनका अधिकतम समय भोजन खोजने में नष्ट हो जाता है। यदि भोजन मिल गया तो वे निद्रा में लीन हो जाते हैं। आहार और निद्रा मनुष्येतर प्राणियों का पृथ्वी पर अभीष्ट है। मनुष्य आहार और निद्रा से ऊपर उठ कर व्रती और गुडाकेश (निद्राजीत) बनता है। यही भारतीय जीवन का प्रतिपाद्य है।

'व्रतमाचर' व्रत का आचरण करें। 'मा भैषी' भयभीत न हों। 'सत्यं वद' सदा सत्य बोलें। 'धर्मं चर' धर्म का आचरण करें। 'स्वाध्यायान्मा प्रमदः' वेदाध्ययन में प्रमाद न करें। 'मातृ देवो भव', 'पितृ देवो भव', 'आचार्य देवो भव', 'अतिथि देवो भव' का ध्यान रख कर इनके साथ पूज्य व्यवहार करना चाहिए। ये सभी देवतुल्य और अत्यन्त पूज्य होते हैं। इनके प्रति जीवन में निरन्तर श्रद्धाभाव रखना चाहिए। यही भारत का मानव जीवन के लिए संदेश है। यही हिन्दू जीवन पद्धति है। ●

(मानव जीवन का उत्कर्ष)



(मानव जीवन का अपकर्ष)

दिव्य मानव बनने की प्रक्रिया

मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है मनुष्यत्व से दिव्यत्व को प्राप्त करना। मर्त्य से अमर्त्य बनने की प्रक्रिया का अन्वेषण ही हिन्दू जीवन का चरम लक्ष्य है। यह लक्ष्य सर्वथा अपार्थिव है। पार्थिव संसाधन केवल बन्धन में डालने वाले होते हैं। अपार्थिव की जिज्ञासा ही हिन्दू जीवन में ब्रह्मज्ञान प्राप्ति की प्रेरणा को जगाती है।

हिन्दू प्रजाति गर्भाधान (प्राग्जन्म) संस्कार, मुण्डन संस्कार एवं यज्ञोपवीत संस्कार से जन्मना उत्पन्न रज-वीर्य दोष को दूर करती है और वेदाध्ययन, प्रातः-सायं हवन, व्रतोपवास, देव-ऋषि-पितृ तर्पण, संतानोत्पत्ति, महायज्ञ (ब्रह्मयज्ञ) एवं यज्ञ (ज्योतिष्टोम) आदि विधियों से इस मनुष्य शरीर को ब्राह्मी (ब्रह्मज्ञान प्राप्ति योग्य) बनाती है। इस तथ्य का प्रतिपादन मनुस्मृति में इस प्रकार है-

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनैः ।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते।।
स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।।

मनुस्मृतिः, २/२७-२८

योगाभ्यास, जप और प्रतिदिवसीय हवन से व्यक्ति न केवल दीर्घायु को प्राप्त करता है, बल्कि वह सृष्टि में वरेण्य, पूजनीय, त्रिकालद्रष्टा तथा देवतुल्य हो जाता है। उसका प्रत्येक कर्म दिव्य और सृष्टि हेतु उपकारी हो जाता है। हिन्दू जीवन पद्धति मानव को दिव्य बनने का संदेश देती है।

•

दिनचर्या कब, कितनी?

दिनचर्या सुव्यवस्थित ढ़ंग से अपने स्थिर निवास पर ही हो पाती है। अनेक लोग ऐसे भी हैं जो अपनी दिनचर्या को सर्वत्र एक जैसे जी लेते हैं। यात्रा, विपत्ति, तनाव, अभाव और मौसम का प्रभाव उन पर नहीं पड़ता। ऐसे लोगों को 'दृढ़व्रत' कहते हैं। किसी भी कर्म को सम्पन्न करने के लिए दृढ़व्रत और एकाग्रचित्त होना अनिवार्य है। यह शास्त्रों का आदेश है-

मनसा नैत्यकं कर्म प्रवसन्नप्यतन्द्रितः।
उपविश्य शुचिः सर्वं यथाकालमनुद्रवेत्।।

कात्यायनस्मृतिः, १९/२।।

प्रवास में भी आलस्य रहित होकर, पवित्र होकर, बैठकर समस्त नित्यकर्मों को यथा समय कर लेना चाहिए।

अपने निवास पर दिनचर्या का शतप्रतिशत पालन करना चाहिए। यात्रा में दिनचर्या विधान को आधा कर देना चाहिए। बीमार पड़ने पर दिनचर्या का कोई नियम नहीं होता। विपत्ति में पड़ने पर दिनचर्या का नियम बाध्य नहीं करता-

स्वग्रामे पूर्णमाचारं पथ्यर्धं मुनिसत्तम।
आतुरे नियमो नास्ति महापदि तथैव च।।

ब्रह्माण्डपुराणम्।।

दिन में जितना शौच (शुद्धि) कर्म किया जाता है रात्रि में उसके आधा किया जाता है। यात्रा में चतुर्थांश दिनचर्या होती है। आर्त्त (आतुर) व्यक्ति यथाशक्ति दिनचर्या कर सकता है। स्वस्थ व्यक्ति को शास्त्रोक्त दिनचर्या करनी चाहिए-

दिवा शौचस्य निश्यर्द्धं पथि पादो विधीयते।
आर्त्तः कुर्याद् यथाशक्तिः स्वस्थः कुर्याद् यथोदितम्।।

ब्रह्माण्डपुराणम्।।

पुरुष की अपेक्षा स्त्री और निम्नवृत्ति (हीन जीविका) वाले व्यक्ति को आधी दिनचर्या करनी चाहिए।

स्त्रीशूद्रयोरर्द्धमानं शौचं प्रोक्तं मनीषिभिः।।

ब्रह्माण्डपुराणम्।।

दिनचर्या में स्थान का महत्त्व

पृथ्वी के जिस भाग में जिस प्रकार की मिट्टी, जिस प्रकार का अन्न- जल-फल प्राप्त हो उसी से दिनचर्या का निर्वाह करना चाहिए-

यस्मिन् देशे तु यत्तोयं या च यत्रैव मृत्तिका।
सैव तत्र प्रशस्ता स्यात्तया शौचं विधीयते।।

स्मृतिचंद्रिका।।

अन्न और जल हमेशा स्वदेश (स्व स्थान) का लिया जाता है। जो जहाँ पर स्थित होता है वह वहीं का अन्न; जल, वायु, फल-फूल, दुग्ध आदि को लेता है। अतः पृथ्वी माता को प्रणाम करके, स्थानीय देवता का स्मरण कर सर्वत्र शुभ व्यवहार करना चाहिए-

यस्मिन् देशे त्वमुत्पन्नः श्रेयस्तस्य विधीयताम्।

(जिस देश में तुम पैदा हुए हो उसकी उन्नति करो।)

जिस भूभाग में जो देव हों, जो विद्वान् या आचारवान् विप्र हों, जिस भू भाग में जो जल हो, जो मिट्टी हो तथा वहाँ शौच की जो पद्धति हो, वहाँ जो धर्माचार हो उसी के अनुरूप शौच कर्म एवं दिनचर्या करनी चाहिए। उसकी अवमानना नहीं करनी चाहिए। उस भूभाग में धर्म का वही स्वरूप होता है-

येषु देशेषु ये देवा येषु देशेषु ये द्विजाः।
येषु देशेषु यत्तोयं याश्च यत्रैव मृत्तिका।।
येषु स्थलेषु यच्छौचं धर्माचारश्च यादृशः।
तत्र तन्नावमन्यते धर्मस्तत्रैव तादृशः।।

वीरमित्रोदयः।।

भूमि माता होती है। अतः उसकी अवमानना नहीं करनी चाहिए। जहाँ भी रहें भूमि को संमार्जन-प्रोक्षण-उपलेपन-अवस्तरण-उल्लेखन आदि पंचकर्म विधि से पवित्र कर लेना चाहिए। बौधायनस्मृतिः ५/६६।।

●

जीवन पद्धति में अपवाद

देश के विखण्डित होने पर, विदेश में स्थित रहने पर, रोग होने पर, विपत्तियों में फंसे होने पर सर्वप्रथम शरीर की रक्षा करें। सब कुछ शाँत हो जाने पर धर्म का आचरण करना चाहिए। धर्म का येन केन प्रकारेण (जैसे-तैसे) आचरण करते हुए सर्वप्रथम समर्थ बनना चाहिए। समर्थ बन कर धर्म का आचरण करना चाहिए। विपत्ति काल में फंसे होने पर शुद्धि, आचार और दिनचर्या की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। सबसे पहले विपत्ति से अपना उद्धार करें तब स्वस्थ होकर धर्म का आचरण करें-

देशभङ्गे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि।
रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद् धर्मं समाचरेत्।।

येन केन च धर्मेण मृदुना दारुणेन च।
उद्धरेद् दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत्।।

आपत्काले तु सम्प्राते शौचाचारं न चिन्तयेत्।
स्वयं समुत्तरेत् पश्चात् स्वस्थो धर्मं समाचरेत्।।

पराशरस्मृतिः, ७/४२-४४।।

(शरीर को बचाना प्रथम धर्म है। स्वस्थ शरीर से ही धर्म का आचरण होता है। मानव शरीर मिलने के पश्चात् तप द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः इस शरीर को प्रयत्न पूर्वक बचाना चाहिए। मोक्ष अदृष्ट तत्त्व है पर यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। शरीर द्वारा ही धर्म, राज्य, स्वर्ग, मोक्ष आदि की प्राप्ति होती है। अतः शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।।

●

मृत्यु पर विजय

ब्रह्मचर्येण तपसा देवाः मृत्युमुपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्।।
ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।

ब्रह्मचर्य और तपस्या के बल से मृत्यु पर विजय प्राप्त की जाती है। देवों ने ब्रह्मचर्य और तपस्या के द्वारा मृत्यु को मार डाला; अर्थात् अमरत्व को प्राप्त किया। इन्द्र ने स्वर्गलोक को देवों के साथ ब्रह्मचर्य के द्वारा ही परिपूर्ण किया। प्राचीनकाल के राजा ब्रह्मचर्य और तपस्या के द्वारा ही अपने राष्ट्र की रक्षा किया करते थे। वे ऋषियों के नेतृत्व में ब्रह्मचर्य और तपस्या के बल से राष्ट्र शत्रुओं की भुजाओं का विच्छेदन किया करते थे- वृश्चामि बाहून् शत्रूणामनेन हविषा अहम्।

ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचारी (विद्यार्थी) ये दोनों इस सृष्टि की शृङ्खलावृद्धि में आधार अग्नि हैं। अतः हिन्दू जीवन पद्धति में ब्रह्मचर्य रख कर गुरुकुल या विश्वविद्यालयों में जाकर विद्या साधना की जाती थी। दिव्यास्त्रों का ज्ञान ब्रह्मचर्य और तप के ही अधीन था। आयु की वृद्धि, इच्छा मृत्यु की प्राप्ति, अवस्था परिवर्तन पर नियंत्रण ब्रह्मचर्य से ही होता है। जिस तरह से शमी वृक्ष में अग्नि छुपी होती है, उसी तरह से ब्रह्मचारी के भीतर सत्व (वीर्य) अग्नि के रूप में छुपा रहता है।

ब्रह्मचर्यपालक, वीरव्रती श्री हनुमान्जी ने ब्रह्मचर्य और तपस्या के बल से अमरत्व को प्राप्त किया तथा बाल्यावस्था में उन्होंने अपनी घोर तपस्या के बल पर सूर्य का भक्षण कर लिया। ब्रह्मचर्य और तपस्या से सृष्टि-स्थिति-विनाश पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।

•

जीवन पद्धति एक दृष्टि में

१.	ब्राह्म मुहूर्त्त में जागना चाहिए-	ब्राह्ममुहूर्त्ते उत्तिष्ठेत्।
२.	मूत्र-मल का विसर्जन करें-	कुर्यान् मूत्रं पुरीषं च।
३.	शुद्धि करें-	शौचं कुर्याद् अतन्द्रितः।
४.	दन्तधावन करें-	दन्तस्य धावनं कुयात्।
५.	स्नान करें-	प्रातः स्नानं समाचरेत्।
६.	तर्पण करें-	तर्पयेत् तीर्थदेवताः।
७.	शुद्ध-पवित्र वस्त्र पहनें-	ततश्च वाससी शुद्धे।
८.	उत्तरीय (दुपट्टा) कंधे पर लें-	उत्तरीय सदा धार्यम्।
९.	तिलक करें-	ततश्च तिलकं कुर्यात्।
१०.	प्राणायाम-संध्यावन्दन करें-	प्राणायामं ततः कृत्वा संध्या-वन्दनमाचरेत्।।
११.	विष्णुपूजा अवश्य करें-	विष्णुपूजनमाचरेत्।
१२.	अतिथि सत्कार करें-	अतिथिंश्च प्रपूजयेत्।
१३.	गोग्रास एवं जीवों को ग्रास दें-	ततो भूतबलिं कुर्यात्।
१४.	पूर्वमुख मौन होकर भोजन करें-	ततश्च भोजनं कुर्यात् प्राङ्मुखो मौनमास्थितः।
१५.	भोजन कर मुख और हाथ धोयें-	शोधयेन्मुखहस्तौ च।
१६.	ताम्बूल भक्षण करें-	ततस्ताम्बूलभक्षणम्।
१७.	अपने कार्य में संलग्न हो जायें, अपनी जीविका का कार्य करें-	व्यवहारं ततः कुर्याद् बहिर्गत्वा यथासुखम्।
१८.	प्रातःसायं संध्या के पश्चात् वेद पढ़ें-	वेदाभ्यासेन तौ नयेत्।
१९.	गोधूलि में धर्म चिन्तन करें- (सूर्यास्त के बाद ४८ मिनट की गोधूलि होती है।)	गोधूलौ धर्मं चिन्तयेत्।
२०.	तत्पश्चात् स्वकार्य का चिन्तन करें-	स्वकार्यं चिन्तयेत् ततः
२१.	वैश्वदेव करें-	सायं प्रातर्वैश्वदेवः

२२. हाथपैरधोकर भोजन करें- कृतपादादिशौचस्तुभुक्त्वा सायं ततो गृही।

२३. दोयाम (छःघण्टा) शयन करें- यामद्वयंशयानो हि ब्रह्मभूयाय कल्पते।

(प्रायशः रात्रि नौ-दस बजे के बाद बिना विलम्ब किये अवश्य सो जायें।

२४. पूर्व दिशा की ओर सिर करके सोयें- प्राक्शिराः शयनं कुर्यात्।

२५. उत्तर की ओर सिर किसी भी स्थिति में न करें- न कदाचिदुदक् शिराः।

२६. दक्षिण सिर करके सोना भी शुभकारी होता है- दक्षिणशिराः वा।

२७. रात्रि सूक्त का जप करके सोयें- रात्रिसूक्तं जपेत्स्मृत्वा।

२८. अपनी शय्या को वैदिक(गायत्री)मंत्र और गरुड़ मंत्र से बाँध कर सोना चाहिए | वैदिकैगारुडैर्मन्त्रै रक्षां कृत्वा स्वपेत् ततः।

२९. विष्णुभगवान् को प्रणाम करके शवासन या समाधि में सोना चाहिए। | 'नमस्कृत्वाऽव्ययं विष्णुं समाधिस्थं स्वपेन्निशि'

३०. पानीपीने हेतु सिर की ओर पूर्णकुम्भ रखें- माङ्गल्यं पूर्णकुम्भं च शिर:स्थाने निधाय च।

३१. ऋतुकाल (चतुर्थरात्रि से सोलहरात्रि) में पत्नी गमनकरें- | ऋतुकालाभिगामीस्यात् स्वदारनिरतः सदा।

३२. अहिंसा, सत्य, दया, शम, दान, स्त्रीरक्षा, रति (काम) शुद्धि रखें-

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम्।
शमो दानं यथाशक्तिर्गार्हस्थ्यो धर्म उच्यते।।

हिन्दू जीवन पद्धति का यही सुव्यवस्थित पवित्र वैदिक एवं आयुवर्द्धक क्रम ब्रह्मपुराण में दिया हुआ है। इसे आलस्य, उपेक्षा, नास्तिकता या शरीर सुख मोह के कारण नहीं तोड़ा जाता है। इन श्रेष्ठ क्रमों का जानबूझकर जो अवहेलना करता है वह साक्षात् पशु होता है-

इत्येतदखिलं प्रोक्तमहोरात्राश्रितं मया।
ब्राह्मणानां कृत्यमेतदपवर्गफलप्रदम्।।

नास्तिक्यादथवाऽऽलस्याद् ब्राह्मणो न करोति यः।
स याति नरकं घोरं पशुयोनौ च जायते।।

हिन्दू जीवन पद्धति के ८१ बिन्दु

दक्ष प्रजापति द्वारा श्रेष्ठ जीवन जीने के ८१ बिन्दुओं का निर्धारण दक्ष स्मृति में किया गया है। क्रमशः इनका विवरण दिया जा रहा है-

नौ कर्म

१. संध्या- त्रिकाल अथवा प्रातःकाल में प्राणायाम एवं गायत्री मंत्र जप करें।
२. स्नान- सुबह-सायं (उभौकालौ) अथवा प्रातःकाल अवश्य स्नान करें।
३. जप- इष्ट देवता एवं आवश्यकतानुसार अभीष्ट देवता का जप करें।
४. होम- प्रतिदिवसीय हवन से आयु एवं समृद्धि बढ़ती है।
५. स्वाध्याय- वेद पाठ करें अथवा जो वेदज्ञ नहीं हैं गायत्री मंत्र जप करें।
६. देवपूजा- विष्णु, शिव, देवी, सूर्य, गणपति, हनुमान आदि की पूजा प्रतिदिन नियमपूर्वक अवश्य करें।
७. वैश्वदेव- पञ्चमहायज्ञ प्रतिदिन करें।
८. अतिथि सत्कार
९. संविभाग (यथाशक्ति देव-ऋषि-मनुष्य-गुरु-दुःखी-तपस्वी-मातापिता को भोजन उपलब्ध कराना संविभाग कहलाता है।)

नौ विकर्म

१०. अनृत- झूठ न बोलें।
११. पर स्त्री गमन न करें।
१२. अभक्ष्य- मांस आदि अभक्ष्य न खायें।
१३. अगम्या स्त्री गमन न करें।
१४. अपेय पान- मदिरा आदि का पान न करें।
१५. स्तेय- चोरी न करें।
१६. हिंसा- न करें, अहिंसक रहें।
१७. वेद विरुद्ध आचरण न करें। नास्तिक न बनें।
१८. मित्रधर्म बहिष्कार- मित्र द्रोह कभी न करें।

नौ सुधा ('अतिथि सत्कार)

१९. अतिथि को मन से आत्मीयता प्रकट करें।
२०. आँख से स्नेह तथा तरलता दिखलायें।

२१. मुख पर अर्थात् चेहरे पर स्वाभाविक मुस्कुराहट रखें।
२२. सौम्य वाणी अर्थात् मधुरवाणी से सत्कार करें।
२३. अतिथि के आने पर अभ्युत्थान करें (खड़ा हों)।
२४. इहागच्छ- 'इधर आइये, आसन ग्रहण कीजिए' बोलें।
२५. प्रिय पृच्छा- 'कृपा कर आगमन का कारण बतलायें'।
२६. प्रिय आलाप- अतिथि से मधुर वार्तालाप करें।
२७. अनुव्रज्या- अतिथि के जाते समय कुछ दूर तक अनुगमन करें।

नौ इषद् दान

२८. भूमि- शुद्ध स्थान पर बैठाने का उपक्रम करें।
२९. जल- पीने के लिए जल लाने का उपक्रम करें।
३०. तृण (आसन)- शुद्ध; उत्तम आसन पर आदर पूर्वक बैठायें।
३१. दोनों पैरों को धोयें। प्राचीन भारत में अतिथि के दोनों पैर धोये जाते थे।
३२. अभ्यंग- तेल; साबुन, सुगन्ध, तौलिया आदि दें।
३३. आश्रय- तत्काल विश्राम आदि का स्थान निर्दिष्ट करें।
३४. शयन- सोने का स्थान निर्दिष्ट करें।
३५. भोजन- यथा शक्ति भोजन करायें।
३६. मृज्जल- मृत्तिका, जल, साबुन आदि पैर-हाथ-मुख धोने को दें।

नौ गोपन

३७. आयु- अनावश्यक अपनी उम्र न बतलायें।
३८. वित्त- अपनी आर्थिक स्थिति सभी को न बतलायें।
३९. गृहच्छिद्र- स्वगृही जनों के दोषों को दूसरों से नहीं बतलायें।
४०. मन्त्र- गुरु मन्त्र, इष्टमन्त्र, गोपनीय वार्ता को दूसरों से नहीं बतलायें।
४१. मैथुन- यह व्यक्ति का गोपनीय पक्ष है। इसे दूसरों को न बतलायें।
४२. भेषज- रोग की दवा, चिकित्साचर्या को केवल चिकित्सक से ही कहें।
४३. तप- कौन सा तप, कितना, कब, कहाँ करते हैं, नहीं बतलायें।
४४. दान- स्वयं द्वारा दिये दान के सन्दर्भ में किसी को न बतलायें।
४५. अपमान- अपने प्रति किये अपमान को न बतलायें।

नौ प्रकाश्य

४६. आरोग्य- अपने स्वास्थ्य की चर्चा अन्यों से करें।
४७. ऋणशुद्धि- व्याज मुक्ति की चर्चा सभी से करें।
४८. दान- सुयोग्य व्यक्ति को दान देने की संस्तुति सभी से करें।
४९. अध्ययन- किये हुए अध्ययन की चर्चा गुरु और मित्र से करें।
५०. विक्रय- किसी वस्तु को बेचने के सन्दर्भ में दूसरों से चर्चा करें।
५१. कन्यादान- कन्या विवाह हेतु लोगों से परामर्श करें।

५२. वृषोत्सर्ग- सांढ़ छोड़ने का धार्मिक कृत्य सभी को बतलायें।
५३. रहः- एकान्त में किये हुए पाप का धर्मज्ञ से पूछ कर प्रायश्चित करें।
५४. अनिन्दित- श्रेष्ठ, शुभ, कल्याणकारी, समाज राष्ट्र के उत्कर्ष परक कर्म का संयमित भाषा में सर्वत्र प्रकाशन करें।

नौ सफल कर्म

५५. माता- स्व अर्जित धन तथा श्रद्धा माता को समर्पित करें।
५६. पिता- स्व अर्जित धन तथा श्रद्धा पिता को समर्पित करें।
५७. गुरु- स्व अर्जित धन तथा श्रद्धा गुरु को समर्पित करें।
५८. मित्र- स्व अर्जित धन एवं बल से मित्र का उपकार करें।
५९. विनीत- विनम्र व्यक्ति की सहायता धन एवं बल से करें।
६०. उपकारी- जो दूसरों का उपकार करता हो उसे दान दें।
६१. दीन- गरीब, विधवा आदि की धन से सहायता करें।
६२. अनाथ- संरक्षकरहित, कमजोर व्यक्ति की सहायता करें।
६३. विशिष्ट- गुण सम्पन्न व्यक्ति की तन-धन-मन से सहायता करें।

नौ असफल कर्म

६४. धूर्त- चालाक एवं धूर्त को कभी दान न दें।
६५. बन्दी- कारागार में निरुद्ध व्यक्ति को धन न दें।
६६. मन्द- बुद्धिहीन व्यक्ति को दिया धन नष्ट हो जाता है।
६७. कुवैद्य- अयोग्य चिकित्सक को न धन दें, न उससे चिकित्सा करायें।
६८. कितव- जुआरी को दिया धन नष्ट हो जाता है। अतः धन न दें।
६९. शठ- दुष्ट, ढीठ को धन न दें।
७०. चाटुकार- चापलूस को न धन दें, न सटायें।
७१. चारण- अनावश्यक प्रशंसक से दूर रहें। धन न दें।
७२. चोर- चोरी करने वाले को धन न दें।

नौ अदेय

७३. सामान्य धन- अपना रोजमर्रा की धन दूसरे को न दें।
७४. याचित धन- दूसरे से मांग कर लायी वस्तु किसी को न दें।
७५. धरोहर- न्यास को दूसरे को न दें। अपने पास सुरक्षित रखें।
७६. कोष- परिवार तथा स्वयं का संरक्षित धन दूसरे को न दें।
७७. पत्नी- अपनी पत्नी को दूसरे के हवाले कभी न करें।
७८. पत्नी धन- स्त्री धन को किसी भी स्थिति में दूसरे को न दें।
७९. पैतृक संपत्ति- इसे दूसरे को कभी न स्थानान्तरित करें।
८०. निक्षेप- जमा पूंजी, सर्वस्व को दूसरे को न बतलायें, न दें।
८१. सर्वस्व दान- संतति रहते हुए भी सर्वस्व दान कभी न करें।

अध्याय-१

सनातनधर्मप्रोक्त

हिन्दू जीवन पद्धति पूर्विका

सर्वोच्च जीवन लक्ष्य-

सनातन धर्म में हिन्दू जीवन पद्धति क्रमबद्ध और नियन्त्रित है। इसकी क्रमबद्धता और नियन्त्रित जीवन पद्धति ही दीर्घायु, प्रबलता, अपूर्व ज्ञानत्व, अद्भुत प्रतिभा, अतीन्द्रिय शक्ति का कारण रही है। अनियन्त्रित जीवन पद्धति से आयु, यश, धर्म की हानि होती है। नियन्त्रित जीवन पद्धति से आयु, विद्या, यश, बल की प्राप्ति होती है।

नियन्त्रित जीवन पद्धति से धर्म की प्राप्ति धीरे धीरे प्रतिदिन होती है। प्रतिदिवसीय आचरित शुभ और सत्कर्म इस लोक में और परलोक में कार्य करता है। नियन्त्रित दिनचर्या सद्धर्म का अङ्ग होती है। अतः परलोक में भी इसकी उपस्थिति चेतनतत्त्व के साथ बनी रहती है और पुनर्जन्म ग्रहण करने पर यही संस्कार मनुष्य को और अधिक यश, श्री, अर्थ, धर्म, वर्चस्वादि प्रदान करता है-

धर्मं शनैः संचिनुयाद् वल्मीकमिव पुत्तिकाः।
परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन्।।

मनुस्मृतिः ४/ २३८।।

जैसे दीमक प्रतिदिन बाँबी हेतु मिट्टी का चयन करती है; जैसे मधुमक्खियाँ प्रतिदिन शहद का चयन करती रहती हैं वैसे ही दूसरों को कष्ट दिये बिना अपनी दैनिकी चर्या से धर्म को बढ़ाना चाहिए। यही परलोक में काम आता है। जीवन यात्रा में आजीवन न तो माता-पिता सहायता के लिए बने रहते हैं न ही स्त्री, पुत्र, बन्धु-बान्धव खड़े रहते हैं, एकमात्र धर्म ही सहयोगी बनता है-

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्र दारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः।।

मनुस्मृतिः ४/२३९।।

प्राणी अकेला ही पैदा होता है, अकेला ही मरता है, अकेला ही पुण्य या पाप का फल भोगता है। अत: नित्य-निरंतर धर्म का संचय करते हुए अन्धतम को पार कर जाना चाहिए-

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एकोऽनुभुंक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्।।

मनुस्मृतिः ४/२४०।।

चेतन तत्त्व के शरीर छोड़ते अर्थात् मरते ही अपने ही लोग घास भूसा, ईंट-पत्थर, मिट्टी-कीचड़ की तरह शरीर को उपेक्षित कर देते हैं। शरीर को जला देते हैं अथवा गाड़ देते हैं अथवा जल आदि में प्रवाहित कर देते हैं। इस पृथ्वी पर सब कुछ छूट जाने वाला, बिखर जाने वाला, विनष्ट हो जाने वाला है; पर धर्म कभी भी चेतन तत्त्व या आत्मा का साथ नहीं छोड़ता-

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति।।

मनुस्मृतिः ४/२४१।।

मानव जीवन नश्वर है। जिस शरीर में भी प्राण है वह शरीर छोड़ कर एक न एक दिन निकलेगा ही। अत: शरीर नष्ट होने का शोक छोड़कर अनश्वर, परलोकगामी धर्म का संचयन करना चाहिए। वही ऊर्ध्वलोक की यात्रा में अपने साथ जाता है-

मा शोकं कुरुतानित्ये सर्वस्मिन् प्राणधर्मणि।
धर्मं कुरुत यत्नेन यो वः सह गमिष्यति।।

कात्यायनस्मृतिः २२/४।।

पृथ्वी पर रह कर मनुष्य जिन वस्तुओं का संचय करता है वे सभी संचयित वस्तुयें क्षय (नाश) को प्राप्त हो जाती हैं। वैभव पूर्ण जितनी ऊँचाई हैं वे सभी की सभी ढह जाती हैं। इस पृथ्वी पर जितने भी शुभ अशुभ संयोग बनते हैं उनका भी वियोग में अन्त हो जाता है। यह जीवन अंततः इस पृथ्वी पर मरण में बदल जाता है-

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्।।

कात्यायनस्मृतिः २२/८।।

अतः सभी प्रकार से प्रयास करके, मन और इन्द्रियों को वश में लाकर धर्म का संचय करना चाहिए। यही धर्म पापहीन करता है। यही धर्म व्यक्ति को प्रकाशमान् नक्षत्र बनाता है। यही धर्म मनुष्य को ईश्वर के सदृश स्मरणीय, पूजनीय और वन्दनीय बना देता है। धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध धर्म के दश प्रत्यक्ष लक्षण हैं-

तस्माद् धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयात् शनैः।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम्।।

मनुस्मृतिः ४/२४२।।

धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्विषम्।
परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणाम्।।

मनुस्मृतिः ४/२४३।।

इस धर्म को प्राप्त करने के लिए अनेक उपाय हैं। सदाचार और संयमित जीवन पद्धति के बिना अन्य दूसरे बड़े-बड़े यज्ञ, अनुष्ठान, तप, योग क्रियायें धर्म को प्राप्त करा सकती हैं, पर सदाचार और सत्क्रिया के बिना यह धर्म अमानुषिक दोषों से युक्त हो जाता है। हिन्दू जीवन में सदाचार प्रत्येक कर्म में गूढ़ रूप से व्याप्त है। इसे केवल चिन्तन पूर्वक समझने और करने से धर्म और लौकिक विभूति की प्राप्ति होती है।

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन् सदायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः।।

मनुस्मृतिः १/१०८।।

सभी धर्म के मूल में आचार ही सन्निहित है। आचार ही तपस्या का मूल है-

सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम्।।

मनुस्मृतिः १/११०।।

आचार प्रतिदिवसीय दिनचर्या का अङ्ग है। अतः हिन्दू जीवन पद्धति सदाचार और स्वस्थ्य वृत्त का सम्मिलित अङ्ग है, विधान है। इसी कारण से प्राचीन भारत वर्ष के तकनीक, चिकित्सा, वास्तु, कृषि, राज संचालन, व्यापार संचालन आदि समस्त कर्मों में सदाचार को प्रथम महत्त्व प्राप्त है।

मनुष्य जीवन पाकर इस धरती पर प्रयत्न पूर्वक जो धर्ममय, सदाचारयुक्त और भक्तिमय जीवन जीता है वह मृत्यु के पश्चात् भी दीप्त चेतनतत्त्व वाला बना रहता है। मनुष्य जीवन में किये हुए कर्मों के प्रभाव के कारण चौदह लोकों में निवास प्राप्त होता है। स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।।

गीता १६/४१।।

तपस्या द्वारा उत्पन्न दिव्य तेज के कारण मनुष्य मृत्यु के पश्चात् पुण्यलोकों (सूर्यलोक, चन्द्रलोक, बृहस्पति लोक, सिद्ध-गन्धर्व-विद्याधर लोक, सप्तर्षिलोक तथा ध्रुव-नक्षत्रादि लोकों) में अनेक असंख्यात वर्षों तक निवास करता है। मनुष्य शरीर तपस्या और सदाचार अर्जित करने का प्रकृति द्वारा ब्रह्माण्ड में प्राप्त अंतिम अवसर है। इस अवसर को पाकर मानव शरीर के माध्यम से पुण्यलोकों से पुनरावर्तित होकर इसी पृथ्वी पर पवित्र कर्म करने वाले और श्रीमन्त पिता के घर में जन्म लेता है।

शरीर के भीतर निवास करने वाला प्रकाशमान् चेतन तत्त्व धर्म से पुष्ट रहने पर पुनर्जन्म को प्राप्त कर पूर्व जीवन में किये हुए तप को फिर से प्राप्त कर लेता है। तप की परम्परा जन्म-जन्मान्तर में चलती रहती है। इसी कारण से हिन्दू जीवन पद्धति में प्रतिदिन, प्रतिक्षण तप करने का विधान है। हमारी जीवन पद्धति में तप वैसे ही समाया हुआ है जैसे पुष्पों में सुगंध समायी रहती है। इस पृथ्वी पर मानव जन्म (स्त्री या पुरुष) चेतनतत्त्व (आत्मा) को मिलने वाला ईश्वरीय अवसर है। आत्मा का अनन्त भटकाव, जन्म-मरण की यात्रा तब तक पूरी नहीं होती जब तक वह इस वेदी रूपी पृथ्वी पर निवास करता हुआ मोक्ष को नहीं प्राप्त कर लेता। पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य सभी लोकों में केवल भोग है। पृथ्वी भोग और कर्म की मर्यादा स्थली है। अतः अन्य सभी लोकों में पहुँचने के लए आधार मानव जीवन ही है। अन्य लोकों से लौट कर आत्मज्ञान और निष्काम कर्म द्वारा अपने दिव्य स्वरूप को जान कर मोक्ष प्राप्त कर लेना पृथ्वी पर जन्म लेकर ही संभव है। हिन्दुओं के जीवन का प्रतिपल इस रूप में सुव्यवस्थित, तौल कर रखा गया कि उसमें शौच, स्नान, पूजन, भोजन, विश्राम, कर्म, भोग, त्याग, काम, प्रभृति क्रियायें; इच्छायें भी तपस्या का अंग हैं। इन प्रतिदिवसीय क्रियाओं को भी ईश्वर को समर्पित करने का विधान है-

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय! तत् कुरुष्व मदर्पणम्।।

गीता ९/२७।।

(हे अर्जुन् तू जो कर्म करता है, खाता है, हवन करता है, दान देता है, तप करता है, वह सब कुछ मुझे अर्पण करो।) अर्जुन की ही तरह भारतवर्ष का प्रत्येक हिन्दू प्रतिदिन धर्मयुक्त कर्म, निष्पाप भोजन, प्रतिदिवसीय हवन, प्रतिदिवसीय दान और प्रतिदिवसीय तप करता था, करता है और करता रहेगा। दान करने के लिए अलग से सामर्थ्य एकत्रित नहीं करनी पड़ती है। दान प्रतिदिवसीय कर्म है। श्रम दान, अन्न दान, जल दान, अभय दान, स्नेह दान, सौख्यदान व्यक्ति प्रतिदिन कर सकता है। जीवन के प्रत्येक क्षण, प्रत्येक श्वास को धर्ममय बनाकर जीने की कला हिन्दू जीवन पद्धति में है। यही कारण है हिन्दुओं को 'दृढ़व्रत' कहा जाता है। जीवन व्रत है; जीवन धर्म है, जीवन तप है, जीवन चेतनतत्त्व है। इसे प्रतिक्षण संलग्नता के साथ जीना चाहिए। हिन्दू जीवन पद्धति में सदाचार का महत्त्व है। यह सदाचार बांहर-भीतर समान होना चाहिए। पवित्र मन से किया गया अदोष आचार ही सदाचार कहा जाता है। यदि बाह्य आचार शुद्ध हो और भीतरी आचार अशुद्ध हो तो वह कपटाचार कहलाता है। विष्णु पुराण में सदाचार की परिभाषा निम्नलिखित रूप में दी गयी है।

साधवः क्षीणदोषाःस्युः सच्छब्दः साधुवाचकः।
तेषामाचरणं यत्स्यात् सदाचारः स उच्यते।।

विष्णुपुराणम्, ३/११/३

सत् का अर्थ है साधु। जो सभी काल में शुद्ध रूप में सत्य हो, अपरिवर्तनीय हो, त्रिकाल सत्य हो वह 'सत्' शब्द से जाना जाता है। जो आचार सत् से जुड़ा हो वह सदाचार कहलाता है। 'सत्' शब्द सद्भाव, साधुभाव का वाचक है। प्रशस्त कर्म के लिए 'सत्' शब्द का प्रयोग भारत वर्ष में हिन्दुओं के जीवन-व्यवहार में किया जाता रहा है। साथ ही यज्ञ, तप, दान और परमात्मा सम्बन्धी कर्म 'सत्' कहा जाता है-

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते।।

गीता १७/२६।।

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते।।

गीता १७/२७।।

सदाचार का पालन करने वाला मनुष्य महात्मा होता है। मन; वाणी और कर्म में जो आचरण एकरूप हो वही सदाचार होता है। सदाचारी महात्मा होता है और असद् आचार करने वाला दुरात्मा होता है-

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।
मनस्यन्यद् वचस्यन्यद् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्।।

ब्रह्माण्ड, सृष्टि, जीवन, प्रकृति और ईश्वर के गूढ रहस्य को जानने के लिए इस पृथ्वी पर स्वस्थ रह कर दीर्घ काल तक जीवन धारण करते हुए तप करना आवश्यक है। जीवन पद्धति (सदाचार) और तप एक दूसरे के आश्रित हैं। अत: जीवन को सुव्यवस्थित, आलस्य रहित, पवित्रता पूर्वक व्यतीत करना चाहिए।

सनातन धर्म प्रोक्त हिन्दू जीवन पद्धति में क्रमबद्ध स्मरणीय एवं नित्यकरणीय जीवन विधान को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रातः कृत्य

दिनचर्या का आरम्भ-

दिनचर्या (जीवनचर्या) का आरम्भ सूर्योदय से होता है। सूर्य प्रत्यक्ष ब्रह्ममूर्ति हैं। सूर्य सृष्टि के आत्मा ग्रह हैं। चन्द्रमा सृष्टि में मन का कारक है। पृथ्वी सृष्टि में सभी प्राणियों की जननी है। यह सृष्टि जिससे उत्पन्न हुई, जिससे पलती है, पोषित होती है और जिससे इसका संहार होता है इन तीनों नियामक तत्त्वों का मानव जीवन में प्रथम स्थान है। मानव प्रजाति का अस्तित्व केवल इसी पृथ्वी पर है। **मनुष्य का निर्माण पञ्चमहाभूतों से होता है।** पञ्चमहाभूतों में आकाश, वायु, तेज (अग्नि), जल (अप) और पृथ्वी परिगणित हैं। **जहाँ पृथ्वी रहेगी वहीं पर मानवप्रजाति की उत्पत्ति होगी। इसलिए मानवी सृष्टि पार्थिव सृष्टि कहलाती है।** पञ्चमहाभूतों के निर्माता परब्रह्म हैं। अत: उस परब्रह्म की तेजोमूर्ति सूर्य की आराधना हिन्दू जीवन पद्धति का प्रथम कर्म है। भगवान् भास्कर सृष्टि के आत्मा ग्रह हैं। वे उदयकाल में ब्रह्मा स्वरूप, मध्याह्न काल में शिव स्वरूप और अस्त काल में विष्णु स्वरूप होते हैं-

उदये ब्रह्मणो रूपं मध्याह्ने तु महेश्वरः।
अस्तमने स्वयं विष्णुस्त्रिमूर्तिश्च दिवाकरः।।

भविष्योत्तरपुराणम्

रूपहीन, आकाररहित, निर्गुण, असीम, अज्ञेय, मन, बुद्धि से परे उस परब्रह्म की सगुण मूर्ति भगवान् भास्कर ही हैं। अत: हिन्दू जीवन पद्धति का शुभारम्भ सूर्योदय के साथ होता है। अत: जीवनचर्या, दिनचर्या का शुभारम्भ निम्नलिखित क्रम में होता है-

१. **सूर्योदय होने से पूर्व स्त्री-पुरुष को शय्या छोड़ देना चाहिए। हिन्दू जीवन पद्धति का प्रथम मूल मन्त्र है सूर्योदय से पूर्व जाग जाना।** सूर्योदय के बाद जागने वाले ब्रह्मचारी को गायत्री मंत्र जप प्रतिदिन की अपेक्षा अधिक करना पड़ता है। सूर्योदय से पूर्व जागने वाला ईश्वरीय गुणों के सम्प्रवाह को सहज ही प्राप्त कर लेता है।

२. **ध्यान रखें- सूर्योदय से पहले जाग जाना चाहिए। यदि नींद पूरी न हुई हो तो उसे बाद में पूरा करें।** यदि रात में सोने को समय न मिले तो उसके आधे समय तक दिन में सोने का विधान है। रात्रि शयन छ: घण्टे का होता है।

यामद्वयं शयानो हि ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

दक्षस्मृतिः २/५५।।

रात्रि में दो याम ही सोना चाहिए। एक याम तीन घण्टे का होता है। कुल आठ याम का एक अहोरात्र (दिनरात्रि) होता है। रात्रि में छ: घण्टा सोने वाला व्यक्ति उष:काल में जाग जाता है और वह अपना देव कार्य तथा दैनिक कृत्य समुचित ढ़ंग से सम्पन्न करता है। दिन में तीन घण्टे तक सोने से रात्रि शयन की थकान मिट जाती है। यदि कोई रात्रि में चार घण्टा ही सो पाया हो तो उसे दिन में एक घण्टा से ज्यादा नहीं सोना चाहिए। आयुर्वेद, धर्मशास्त्र आदि में दिन में सोने का निषेध है। निद्रा, तन्द्रा, भय, आलस्य आदि पर योग के माध्यम से विजय प्राप्त करना चाहिए। प्राणायाम और ध्यान करने वाला व्यक्ति थोड़ा सो कर ही स्वस्थ और अतन्द्रित रहता है। दिन में तभी सोना चाहिए जब किसी अपवाद या विपत्ति के कारण रात्रि में शयन न हो पाया हो। बीमार व्यक्ति के लिए भी यह नियम शिथिल होता है।

३. **सूर्योदय काल में सोते रहने से कुछ दिनों बाद नेत्र, सिर तथा शरीर में दर्द आरम्भ होने लगता है। दिनचर्या अव्यवस्थित हो जाती है।**

४. **ब्राह्ममुहूर्त्त (सूर्योदय से ३ घंटा पूर्व) में जागने से ईश्वरीय शक्ति, अपूर्व मेधा और ब्राह्मी प्रबोध की प्राप्ति होती है। रात्रेस्तु पश्चिमो**

यामो मुहूर्त्तो ब्राह्मसंज्ञकः।। (रात्रि का अंतिम एक याम (तीन घंटा) ब्राह्ममुहूर्त्त कहलाता है।) ज्योतिषशास्त्र के अनुसार **'मुहूर्त्तो घटिकाद्वयम्'** होता है। एक घटी २४ मिनट की होती है। इस तरह से सूर्योदय पूर्व का ४८ मिनट ब्राह्ममुहूर्त्त संज्ञक है जो जीवन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। रात्रि के अंतिम याम (३ घंटा) में सूर्योदय पूर्व की अंतिम २ घटी (४८ मिनट) अमृत संज्ञक होने से जीवन के लिये अति शुभकारी होती है।

५. **ब्राह्म मुहूर्त्त में जागकर धर्म और अर्थ का चिन्तन करने वाला व्यक्ति जीवन में अक्षय धर्म एवं अक्षय धन को प्राप्त कर लेता है-**

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थावनुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च।।

मनुस्मृतिः ४/९२।।

मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्ममुहूर्त्त में जाग करके धर्म और अर्थ की प्राप्ति के लिए कठोर शारीरिक श्रम का तथा वेदतत्वार्थ का चिन्तन करना चाहिए।

[पश्चिमी जीवन पद्धति में रात को जागना, दिन में सोना, रात भर पढ़ना, मनोरंजन करना चलता है। यह निशाचर कर्म है दैवकर्म नहीं है। इससे आँख की रोशनी, मेधा, स्वास्थ्य, लौहतत्त्व, ताम्रतत्त्व की हानि होती है। अवसाद और बीमारियाँ बढ़ती हैं।]

६. **विलम्ब से जागने के बाद गायत्री मंत्र का जप कम से कम एक सहस्र करना चाहिए।** सामान्यतः एक माला जप प्रतिदिन अवश्य किया जाना चाहिए। इससे वर्चस्, मेधा, तेजस् की वृद्धि होती है। यज्ञोपवीत संस्कार से रहित व्यक्ति को ॐ का जप करना चाहिए।

७. **सूर्य समय से निकलता है। सूर्य जैसी शक्ति चाहिए तो बाल सूर्य का पूजन और प्रणाम आवश्यक होता है।** अतः समय से जागना आवश्यक कृत्य है। समय से सोने वाला ही समय से जाग सकता है। अतः समय पर सोना आवश्यक कृत्य है। दिन-रात का एक चौथाई अर्थात् छः घण्टा नींद अवश्य लें।

८. **'भोर में अवश्य जाग जाना चाहिए'** इस तथ्य का प्रतिपादन वेद, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद और योगशास्त्र करते हैं। अभ्युदित सूर्य (Sun Rise) काल में जो सोता है वह अपनी आयु और भाग्य को सुला देता है। अतः सूर्योदय से पूर्व अवश्य जाग जाना चाहिए-

ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय तत्सर्वं सम्यगाचरेत्। देवीभागवतम् ११/२/२

(ब्राह्ममुहूर्त्त में जागकर प्रतिदिवसीय कर्म आरम्भ करें।)

ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय चिन्तयेद् हितमात्मनः।

व्यासस्मृतिः ३/७१।।

(ब्राह्ममुहूर्त्त में जागकर अपने श्रेष्ठतम विकास की चिन्तना करें।)

ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।

अष्टांगहृदयम्, २/१।।

(ब्राह्ममुहूर्त्त में आयु की रक्षा के लिए जागना चाहिए।)

[टिप्पणी-

चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से भी सूर्योदयपूर्व जागकर टहलने, हंसने और योग करने को स्वास्थ्य के लिए हितकारी माना गया है। ब्राह्ममुहूर्त्त में जागने से आयु की रक्षा होती है। आयुर्वेद में कहा है कि ब्राह्ममुहूर्त्त में जागकर जीर्ण-अजीर्ण का विचार करना चाहिए। पूर्व की रात्रि में जो भोजन किया गया था वह पूरी तरह से पचा है या नहीं इसका विचार करना चाहिए। रात में कम भोजन करके सोने वाला ब्राह्ममुहूर्त्त में शौचादि करके स्नान कर लेता है। शरीर में विद्यमान रातभर का मूत्र-मल (वेग) सूर्योदय पूर्व अनायास निकल जाता है। विलम्ब से जागने पर यह कार्य प्रयासपूर्वक करना पड़ता है-

ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्तिष्ठेज्जीर्णाजीर्णं निरूपयन्।
रक्षार्थमायुषः स्वस्थो दर्पणेन विचक्षणः।।
मुखस्यालोकनं कुर्यात् जातवेगः समुत्सृजेत्।

अ.सं. सूत्रम् ३]

९. **शय्या पर प्रातःकाल निद्रा खुलते ही श्री हरि, ॐ, तत्सत् या इष्ट देवता का स्मरण करना चाहिए।** वामन पुराण में लिखा है कि ब्रह्ममुहूर्त्त में जाग कर देवता, मुनिजनों का स्मरण करना चाहिए। प्राभातिक पाठों का स्मरण करना चाहिए। ऐसा करने वाला मृत्यु और पाप के बन्धन से मुक्त हो जाता है-

ब्राह्मे मुहूर्त्ते प्रथमं विबुध्येदनुस्मरेद् देववरान् मुनींश्च।
प्राभातिकं मङ्गलमेव वाच्यं यदुक्तवान् देवपतिस्त्रिनेत्र।।

किं तदुक्तं सुप्रभातं शंकरेण महात्मना।
प्रभाते यत् पठन् मृत्योर्मुच्यते पापबन्धनात्।।

वीरमित्रोदयः, आह्निकप्रकाशः

(ध्येय है प्राभातिक वेद मंत्रों, पौराणिक मंगल मंत्रों का उच्चारण भी अशुद्ध अवस्था में वर्जित है। मानसिक स्मरण पर रोक नहीं है। केवल विहित कर्मों के करने पर रोक है।)

लार, पसीना, दुःस्वप्न आदि दोषों, वस्त्र के अस्त व्यस्त होने आदि अनेक कारणों से रात में सोया हुआ व्यक्ति अपवित्र रहता है। रात भर सोने के कारण मुख दुर्गन्धित रहता है। ऐसे में बिना स्नान किये जप-होम-वेदपाठ-संध्यावन्दन, देव-ऋषि-पितृतर्पण एवं प्रभात कालिक दिव्य नाम स्मरण वर्जित होता है-

लालास्वेदसमाकीर्णः शयनादुत्थितः पुमान्।
अस्नात्वा नाचरेत् कर्म जपहोमादि किञ्चन।।
मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः।

•

नाशुचिर्देवर्षिपितृणां नामानि संकीर्त्तयेत्।

वीरमित्रोदयः, आह्निकप्रकाशः

ब्राह्ममुहूर्त्त के बाद 'उषः काल' या 'अरुणोदय काल' आता है। इसमें सूर्योदय पूर्व की लालिमा आकाश में स्पष्टतः दिखने लगती है। एक सामान्य नियम सभी पर लागू होता है कि ब्राह्ममुहूर्त्त में जागकर हाथ, पैर, मुख को धोयें तत्पश्चात् स्नान करके श्रीहरि का स्मरण करें-

उत्थाय पश्चिमे यामे रात्रिवासः परित्यजेत्।
प्रक्षाल्य हस्तपादास्यान्युपस्पृश्य हरिं स्मरेत्।।

१०. **हथेली को देखते हुए उँगली के अग्रभाग में लक्ष्मी, हथेली के मध्य में सरस्वती और मणिबन्ध (करमूल) में ब्रह्मा का दर्शन करके प्रणाम करना चाहिए-**

कराग्रे वसते लक्ष्मी करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते कुरुदर्शनम्।।

११. **बिस्तर से उतरने के पूर्व या तत्काल बाद दाहिनी हथेली से पृथ्वी का स्पर्श करते हुए प्रणाम करना चाहिए-**

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नी नमस्तुभ्यं पादस्पर्शक्षमस्व मे।।

(हे विष्णु पत्नी पृथ्वी माता! समुद्र आपके वस्त्र हैं, पर्वत आपके स्तनमण्डल हैं, जननी! आपको प्रणाम है। मेरे द्वारा पैरों से स्पर्श करने के कृत्य को क्षमा करें माँ!) जो प्रतिदिन पृथ्वी को प्रणाम करके शय्या पर से अपने पैर को नीचे भूमि पर रखता है वह सभी मनोरथों से परिपूर्ण होकर प्रसन्न आत्मा बना रहता है तथा अन्त में धर्मराज के लोक को प्राप्त करता है-

नमोऽस्तु प्रियदत्तायै भुवे इति दिने दिने।
भूमिमाक्रमते प्रातः शयनादुत्थितश्च यः।।
स सर्वकामहृष्टात्मा सुखं याति यमालयम्।

वीरमित्रोदयः आह्निकप्रकाशः

पृथ्वी को प्रणाम करने का मंत्र है- **नमोऽस्तु प्रियदत्तायै भुवे।**

१२. **बिस्तर पर से उठ कर पृथ्वी माँ को प्रणाम करने के तत्काल बाद मल-मूत्र का विसर्जन करना चाहिए।** मल, मूत्र, छींक, उबासी, जृम्भा, खाँसी में एक प्रकार का वेग होता है। शरीर के भीतर स्थित वेग को रोकना हानिकारक होता है। अतः शरीर से इन्हें शीघ्र बाहर निकाल देना चाहिए या निकल जाने देना चाहिए। इससे व्यक्ति स्वस्थ बना रहता है।

[टिप्पणी-

चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से सूर्योदय पूर्व उठ कर शीतल जल से आँख, मुंह, नाक, चेहरा अवश्य धोना चाहिए। इससे नीलिका,मुखशोष, पिडका, व्यंग तथा रक्त-पित्त से उत्पन्न रोग शीघ्र दूर होता है। शरीर का अनावश्यक ताप दूर होता है-

प्रक्षालयेन्मुखं नेत्रे स्वस्थः शीतोदकेन वा।
नीलिकां मुखशोषं च पिडकां व्यङ्ग्यमेव च।।
रक्तपित्तकृतान् रोगान् सद्य एव विनाशयेत्।

सुश्रुतचिकित्सा, २४।।

चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से जोर लगाकर,काँख कर, प्रयत्नपूर्वक मलोत्सर्जन या मूत्रोत्सर्जन नहीं करना चाहिए। यत्नपूर्वक मूत्र-मलोत्सर्जन करने पर हृदय तथा मस्तिष्क को आघात पहुँचता है। मूत्र-मल द्वार क्षत

होता है। गुदा मार्ग का संकुचन कर मल को बाहर निकलने देना चाहिए। अन्य अंगों को भी संकुचित ही रखना चाहिए-

.... संवीताङ्गोऽवगुण्ठतः।
प्रवर्तयेत् प्रचलितं न तु यत्नादुदीरयेत्।।

अ.सं. सूत्रम् ३।।

१३. **माता-पिता, दादा, दादी, ज्येष्ठ भाई, बहन आदि को प्रतिदिन प्रणाम करना चाहिए। पहली भेंट और विदाई भेंट में इन्हें प्रणाम किया जाता है।**

१४. **योगी जन दिन में नहीं सोते हैं। भोर में सोने से भाग्य सो जाता है। दिन में सोने से तप सो ज़ाता है।**

१५. **व्यक्ति के भीतर विद्यमान चेतन घड़ी उसे सही समय पर जगा देती है। सोने से पूर्व केवल संकल्प करना चाहिए- 'हे प्रभु! मुझे ब्राह्म मुहूर्त्त में उठा दीजिए।'** निश्चित ही सूर्योदय से पूर्व नींद खुल जायेगी।

अतः नींद खुलने के बाद बिस्तर पर ईश्वर स्मरण करके पृथ्वी माँ को प्रणाम करते हुए आलस्य छोड़कर नित्य-क्रिया में लग जाना चाहिए। संकल्पवान् व्यक्ति को कभी भी आलस्य नहीं घेर पाता।

१६. **सूर्योदय काल से प्रतिदिन आरम्भ करके चार-चार घण्टे (दश घटी) की ऋतुयें बीतती रहती हैं।** ये ऋतुयें क्रमशः वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर के क्रम में अनुवर्तन (Rotation) करती हैं। अतः सूर्योदय के आगे चार घण्टे के अन्दर स्वास्थ्य, विद्या, तेज, वर्चस्व, मेधा की वृद्धि के अनुकूल प्राकृतिक वातावरण रहता है। अतः मनुष्य को जीवन में इसका भरपूर लाभ उठाना चाहिए-

सूर्योदयं समारभ्य घटिकादशकं क्रमात्।
ऋतवः स्युर्वसन्ताद्या अहोरात्रं दिने दिने।।

१७. **प्रायशः लोग प्रातः काल उठ कर पानी पीते हैं।** इससे पाचन तंत्र ठीक रहता है और शौच क्रिया में रस तत्त्व का सहयोग प्राप्त होता है। ताम्बे के बर्त्तन में रखा हुआ जल पीने से शरीर को विशेष लाभ होता है। इससे हृदय, रक्त, कोशिकायें और तेज तत्त्व ठीक रहता है।

१८. **प्रातःकाल जाग कर शौच किये बिना टहलने निंकल जाना ठीक नहीं होता है।** सर्वप्रथम मूत्र-मल विसर्जन करना चाहिए। टहलना एक प्रकार का व्यायाम है और व्यायाम शौच कृत्य करने के बाद ही करना चाहिए।

प्रातःकाल जागकर श्रीहरि का स्मरण करना चाहिए। मंगलद्रव्य का अवलोकन करके आवश्यक दैनिक कृत्यों को करना चाहिए-

यामिन्याः पश्चिमे यामे त्यक्तनिद्रो हरिं स्मरेत्।
आलोक्य मङ्गलद्रव्यं कर्मावश्यकमाचरेत्।।

व्यासः।।

कात्यायनस्मृति के अनुसार श्रोत्रिय (वेदपाठी द्विज), सौभाग्यवती स्त्री, गाय, अग्नि, अग्निहोत्री द्विज का प्रातःकाल उठकर जो प्रथम दर्शन करता है वह विपत्ति के भय से मुक्त रहता है-

श्रोत्रियं सुभगां गां च अग्निमग्निचितं तथा।
प्रातरुत्थाय यः पश्येद् आपद्भ्यः स प्रमुच्यते।।

कात्यायनस्मृतिः १९/९।।

देवर्षि नारद के अनुसार इस पृथ्वी पर आठ प्रकार के मंगल कहे गये हैं। ये हैं- ब्राह्मण, गौ, अग्नि, स्वर्ण, गोघृत, सूर्य, जल तथा राजा। इन आठों को हमेशा देखना चाहिए, प्रणाम करना चाहिए और इनकी अर्चना करनी चाहिए। ऐसा करने वालों की आयु कभी क्षीण नहीं होती है।

लोकेऽस्मिन् मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः।
हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाऽष्टमः।।

एतानि सततं पश्येन्नमस्येदर्च्चयेच्च यः।
प्रदक्षिणां च कुरुते आयुस्तस्य न हीयते।।

प्रातःकाल उठ कर श्रेष्ठ, मांगलिक एवं अभ्युदयकारी चीजों का दर्शन करना चाहिए। इससे पुण्योत्पत्ति होती है और पाप कटता है। महर्षि कात्यायन के अनुसार प्रातःकाल उठकर गोरोचन, चन्दन, स्वर्ण, मृदङ्गवाद्य, दर्पण, मणि (रत्न), गुरु, अग्नि और उदित होते सूर्य का दर्शन करना चाहिए-

रोचनं चन्दनं हेम मृदङ्गं दर्पणं मणिम्।
गुरुमग्निं तथा सूर्यं प्रातः पश्येत् सदा बुधः।।

आचार्य नागदेव ने प्रातःकाल उठकर निम्नलिखित वस्तुओं और मनुष्यों को देखने के लिए कहा है- गोघृत, दही, सरसों, सवत्सा गौ, वृषभ, स्वर्ण, पवित्र मिट्टी, गोबर, स्वस्तिक चिह्न, अक्षत, अग्नि, मधु, ब्राह्मण-कुमारी, श्वेतवस्त्र, शमी, हवनीय अग्नि, चन्दन और कल्पवृक्षफल।

प्रातःकाल उठकर पीपल को अंक (गोद) भरना चाहिए। प्रभातकाल में भारद्वाज (चातक); मयूर, चाष, नेवले का वाम भाग और पृष्ठ भाग में दर्शन शुभ फलदायी होता है-

पूर्वं च सर्पिर्दधिसर्षपांश्च धेनुं सवत्सां वृषभं सुवर्णम्।
मृद् गोमयं स्वस्तिकमक्षतांश्च वह्निं मधुब्राह्मणकन्यकाश्च।।

श्वेतानि वस्त्राणि तथा शमिं च हुताशनं चन्दनकल्पबीजम्।
अश्वत्थवृक्षं च समालभेत् ततश्च कुर्यासन् निजधर्मकार्यम्।।

भारद्वाजमयूराणां चाषस्य नकुलस्य च।
प्रभाते दर्शनं श्रेष्ठं वामपृष्ठे विशेषतः।।

आचारप्रदीपः।।

इसके विरुद्ध जो व्यक्ति प्रातःकाल उठ कर पापिष्ठ, दुर्भगा स्त्री, मद्यप (शराबी), नंगा व्यक्ति, खण्डित नासिका का दर्शन करता है वह झगड़ा-कलह में फंसता है-

पापिष्ठं दुर्भगां मद्यं नग्नमुत्कृत्तनासिकम्।
प्रातरुत्थाय यः पश्येत् तत्कलेरुपलक्षणम्।।

कात्यायनस्मृतिः १९/१०।।

१९. **प्रातःकाल उठ कर दर्पण में अपना चेहरा देखना चाहिए-**

मुखस्यालोकनं कुर्यात् दर्पणेन विचक्षणः।

भगवान् श्रीकृष्ण प्रातः काल उठ कर दर्पण के समक्ष खड़े होते थे। आयुर्वेद एवं धर्मग्रन्थों में प्रातःकाल दर्पण देखना मंगलकारी माना गया है।

२०. **दीर्घायु की कामना तथा स्वास्थ्य की सम्यक् प्राप्ति हेतु ब्राह्ममुहूर्त में उठ कर संध्या, प्राणायाम तथा योग किया जाता है।** इसी विधि को अपनाकर ऋषियों ने पृथ्वी पर हजारों-हजार वर्ष की आयु को प्राप्त किया। तप द्वारा आयु बढ़ती है और पाप द्वारा आयु नष्ट होती है। आयु आत्मा की सम्पत्ति होती है। सम्पत्ति बढ़ती और घटती रहती है। हिन्दू जीवन पद्धति में इच्छित आयु, प्रज्ञा, यश, कीर्ति तथा ब्रह्मवर्चस्व प्राप्त करने के लिये यही उपाय सुझाया गया है-

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुयुः।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च।।

मनुस्मृतिः ४/९४।।

२१. **मूत्र-मल त्याग**- जहाँ खुला स्थान प्राप्त हो घर से बाहर काफी दूर जाकर वहाँ मूत्र (पेशाब) और मल (पुरीष) का त्याग करना चाहिए। सुदूर मल त्याग की स्थिति गाँवों में बनती है- **आराच्चाऽऽवसथान्मूत्रपुरीषे कुर्याद् दक्षिणां दिशं दक्षिणापरां वा।।** यह व्यवस्था आपस्तम्बधर्मसूत्र की है।

२२. **घर से दूर दक्षिण या नैर्ऋत्य (दक्षिणपश्चिमकोण) में शौच करना चाहिए।** यह काम गाँव में तो सम्भव है पर नगर, महानगर में नहीं। वास्तुशास्त्र के अनुसार पुरीषमंदिर (Toilet Room) घर में पश्चिम या उत्तर के मध्य में बनवाना चाहिए। पद स्थान (Pot) या उपवेशन (कमोड) ऐसा बनवायें कि मूत्र-मल त्याग करते समय मुख उत्तर या दक्षिण की ओर हो।

२३. **रात्रि में मूत्र-मल त्यागने के लिए बहुत दूर नहीं जाना चाहिए।** चोरों से संकट, हिंस्र जीवों से संकट और अंधेरे के कारण शारीरिक संकट होने से रात में घर से बहुत दूर मेहन (मल त्याग) का प्रयास नहीं करना चाहिए। मूत्र-मल का त्याग करके जब घर आया जाता है तो भरपूर सफाई की जाती है। यह सफाई आंगन में नहीं करनी चाहिए। जहाँ पानी सूख जाय या बह जाये वहीं पर सफाई करनी चाहिए। इस गंदे जल का स्पर्श और लंघन फिर से न हो यह ध्यान रखना चाहिए-

पादावनेजनोच्छिष्टे प्रक्षिपेन्न गृहाङ्गणे।।

विष्णुपुराणम्, ३/११/१०।।

२४. **दिन में उत्तर दिशा की ओर और रात्रि में दक्षिण दिशा की ओर मुख करके मूत्र-मल का त्याग करना चाहिए।**

[इससे सूर्य किरणें और मूत्र-मल का संयोग शरीर को नहीं छू पाता है। ऐसा करने से विकिरण जनित दोष रंचमात्र भी नहीं लगता। रात में दक्षिण दिशा की ओर मुख करके मलमूत्र त्यागना पृथ्वी की गति के अनुकूल होता है। शारीरिक धर्म के कारण पहले मूत्र विसर्जित होता है बाद में मल विसर्जित होता है। अतः सूखे भाग में ढ़लान देख कर मूत्र-मल का विसर्जन करना चाहिए जिससे अपना ही मूत्र पैरों में आकर न लगे।]

२५. **दाहिने कान पर यज्ञोपवीत को चढ़ा कर (एक या तीन बार लपेट कर) दिन में उत्तर मुख और रात में दक्षिणमुख मूत्र पुरीष (पेशाब-पखाना) का विसर्जन करना चाहिए-**

दिवासंध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः।
कुर्यान् मूत्रपुरीषे च रात्रौ चेद् दक्षिणामुखः।।

याज्ञवल्क्यः।।

२६. **वेग नहीं रोकना चाहिए-** शरीर में मूत्र और मल हमेशा विद्यमान रहता है। जब यह शरीर से बाहर निकलना चाहता है तो इसकी अनुभूति होने लगती है। ताकत और श्वास अवरोध के द्वारा मूत्र-मल के वेग को रोकना और उसे शरीर के भीतर दबाये रखना हानिकारक होता है। आयुर्वेद के अनुसार मूत्र को बलात् रोकने से अन्धत्व और मल को रोकने से बधिरत्व की प्राप्ति होती है। ये दोनों अवरुद्ध वेग धीर-धीरे चाक्षुष इन्द्रिय और कर्णेन्द्रिय को दुष्प्रभावित करते हैं-

मूत्रसन्धारणादन्धो बधिरो मलधारणात्।।

वैद्यकः।।

२७. **सिर, नाक, कान को वस्त्र से ढंक कर मूत्रमल का त्याग करना चाहिए-**

न चानावृत्तमस्तकः। शाण्डिल्यस्मृतिः २/१३१।

शिरस्तु प्रावृत्य मूत्रपुरीषे कुर्यात्।।

आपस्तम्बधर्मसूत्रम् १/११/३०/१५

(यह अत्यन्त वैज्ञानिक पद्धति है। दुर्गन्ध का प्रवेश नाक, कान आदि से शरीर में न हो सके इसके लिए ऐसा करना चाहिए अर्थात् सिर, नाक, कान ढंक लेना चाहिए। आजकल पुरीषमंदिर में लोग विविध प्रकार के सुगंधित द्रव्य का प्रयोग करने लगे हैं जिससे मूत्र-मल का दुर्गन्ध दूर रहे।)

२८. **दिशा का अपवाद-** मूत्र-मल विसर्जन करते समय यदि अन्धकार हो, बादलों की गहरी छाया हो अथवा प्राणबाधा या भयंकर रोग या भयावह स्थिति हो तो उस समय मूत्र-मल का विसर्जन किसी भी ओर मुख करके किया जा सकता है-

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः।
यथा-सुख-मुखः कुर्यात् प्राणबाधाभयेषु च।।

मनुस्मृतिः ४/५१।।

२९. **मौन की अनिवार्यता**- उच्चार (मलत्याग), मैथुन, मूत्रत्याग, दन्तधावन, स्नान और भोजनकाल (इन छः परिस्थितियों) में मौन धारण करना अनिवार्य होता है। स्नानकाल में स्नान के मंत्र बोले जाते हैं-

उच्चारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने।
स्नाने भोजनकाले च षट्सु मौनं समाचरेत्।।

हारीतः।।

विष्णु पुराण–के अनुसार उबटन, तेल, मालिश कराते समय, दाढ़ी-बाल कटवाते समय, मूत्र का त्याग करते समय, मैथुन काल में जो बोलता है वह अपवित्र होकर एक रात के उपवास से संशुद्ध होता है-

तैलाभ्यक्तस्तथा वान्तः श्मश्रुकर्मणि मैथुने।
मूत्रोच्चारं यदा कुर्यादहोरात्रेण शुद्ध्यति।।

प्राचीन काल में कुछ लोग दाहिने कान पर कुशा रख कर मूत्र-मल का विसर्जन करते थे- **'कुशा दक्षिणकर्णे धार्या'** आश्वलायन। अपने ही मूत्र और मल पर बहुत देर तक अवस्थित नहीं रहना चाहिए। प्रयास पूर्वक शीघ्र हट जाना चाहिए-

तिष्ठेन्नातिचिरं तत्र न किञ्चिदुदीरयेत्।।

विष्णुपुराणम्।।

३०. **अष्टाङ्ग शौच**- मूत्र-मल प्रक्रिया के आठ अङ्ग होते हैं। इन्हें अपनाना चाहिए। ये हैं- १. शिरः परिवेष्टन (कपड़े से सिरः नाक, मुख, कान को बाँधना), २. कर्णसूत्र (दाहिने कान पर जनेऊ या कुशा रखना), ३. उत्तर या दक्षिण दिशा की ओर मुख करना (दिशा अवलोकन), ४. अन्तर्द्धान (भूमि को तृणादि से ढ़कना), ५. मौन, ६. मल त्याग, ७. मिट्टी द्वारा सफाई (आज के अनुसार साबुन द्वारा सफाई), ८. उदकग्रहण (कुल्ला, हाथ, पैर की सफाई)। आज भी यह अष्टाङ्ग जीवित है। यज्ञोपवीत और कुशा धारण की प्रक्रिया में कमी आयी है।

यथा शिरःपरिवेष्टनं प्रथमं निवीतं द्वितीयं दिशोऽवलोकनं तृतीयमन्तर्द्धानं चतुर्थं मौनं पञ्चमं पुरीषं षष्ठं मृत्तिकाग्रहणं सप्तममुदकमष्टममिति।। आपस्तम्बः।।

[टिप्पणी-

चिकित्सा विज्ञान के अनुसार मूत्र-मल विसर्जन करने के बाद दोनों इन्द्रियों को पर्याप्त जल से धोना चाहिए। गुदामार्ग को स्वच्छ तथा प्रक्षालित रखने से यह कान्ति तथा बलप्रद, पावित्र्यकर, आयुष्यवर्धक तथा अलक्ष्मी-कलि-पापहर होता है-

गुदादिमलमार्गाणां शौचं कान्तिबलप्रदम्।
पावित्र्यकरमायुष्यमलक्ष्मी - कलिपापहृत्।।

योगरत्नाकरः।।

३१. हाथ में जल पात्र लेकर मूत्र-मल का विसर्जन नहीं करना चाहिए। वह पात्र और जल दोनों अशुद्ध हो जाता है। दाहिने हाथ की ओर जल पात्र को रखकर मूत्र-मल का विसर्जन करना चाहिए-

करस्थोदकपात्रस्तु कुर्यान्मूत्रपुरीषके।
तज्जलं मूत्रसदृशं सुरापानेन तत्समम्।।
गृहीत्वा जलपात्रं तु विण्मूत्रं कुरुते यदि।
तज्जलं मूत्र सदृशं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत्।।

३२. एकान्त, अपरिचित, शून्य-शाँत, घोर, छायायुक्त या उबड़ खाबड़ भूमि में जब कभी मूत्र-मल का परित्याग करना हो तब तीन बार 'हूँ फट्' बोलते हुए ताली बजाना चाहिए। इससे वहाँ पर विद्यमान सूक्ष्म अहितकर तत्त्व हट जाते हैं। मूत्र-पुरीष विसर्जन के पूर्व एकान्त स्थल पर यह अवश्य बोलना चाहिए- यहाँ विद्यमान सूक्ष्मशरीरधारी हट जायें। मैं मूत्र-मल का त्याग करूँगा-

गच्छन्तु ऋषयो देवाः पिशाचा ये च गुह्यकाः।
पितृभूतगणाः सर्वे करिष्ये मलमोचनम्।।

(शौचालय में मंत्र प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती है, क्योंकि वहाँ सूक्ष्म शरीरधारियों का स्थान पूर्व से विहित नहीं होता है।)

३३. **पानी में मूत्र-मल विसर्जित न करें। मौन होकर मूत्र-मल का विसर्जन करना चाहिए-**

विण्मूत्रे विसृजेन् मौनी। **स्कन्दपुराणम्, ब्रह्मपुराणम्**

[टिप्पणी-

आज की 'कमोड' पद्धति इसीलिए हितकारी नहीं है। इसमें दुर्गन्ध की उत्पत्ति तेजी से होती है। फलतः गन्दगी को बहाने के लिए अत्यधिक जल की आवश्यकता पड़ती है। धीरे धीरे देश में पानी की भी भारी समस्या उत्पन्न होने लगी है। कमोड पद्धति में आधा खड़ा होकर और आधा बैठकर व्यक्ति शौच करता है। इसमें दोनों घुटनों से न तो पेट दबता है और न ही मूत्र संस्था दबती है। इस कारण सम्पूर्ण मल बाहर नहीं निकलता है। शौच करते समय बोलना, अखबार पढ़ना, ब्रश करना जीवन और स्वास्थ्य के लिए घातक होता है। यह भारतीय पद्धति नहीं है। यह पश्चिमी जीवन शैली है जिससे पूरा यूरोप तबाह हो चुका था और जिसे धीरे धीरे लोग आज छोड़ रहे हैं।]

३४. **खड़े होकर या चलते-चलते मूत्र-मल का त्याग नहीं करना चाहिए- न गच्छन् न च तिष्ठन् वै विण्मूत्रोत्सर्गमात्मवान्।** । मार्कण्डेयपुराणम्, ब्रह्मपुराणम्, २६/२६।। (शारीरिक विपत्ति होने पर कर सकते हैं।)

[टिप्पणी-

यूरोप में बीसवीं शताब्दी के द्वितीयदशक तक वहाँ के लोग खड़े होकर मलमूत्र का त्याग करते थे। इस कारण वहाँ ज्यादातर बवासीर और भगन्दर के रोग से लोग मरते थे। उनकी जीवन पद्धति में आज भी आधा ही सुधार हुआ है। कमोड आधा बैठने वाला ही संसाधन है। खड़ा होकर पेशाब करने पर सुनिश्चित है छींटा शरीर के निचले अंग पर पड़ेगा और व्यक्ति अशुद्ध होगा।]

३५. **अन्तरिक्ष में मूत्र-मल का त्याग नहीं करना चाहिए- नान्तरिक्षके।** कूर्मपुराणम्, पद्मपुराणम्। इससे अन्तरिक्ष की शुद्धता बनी रहती है।

अन्तरिक्ष में मूत्र-मल का विसर्जन ब्रह्माण्ड को प्रदूषित करता है। इससे भारी क्षोभ उत्पन्न होता है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल में विमान आदि से यात्रा के समय ऐसी दुर्व्यवस्था आई होगी जिसकी वर्जना की गई।

३६. **जूता, चप्पल, खड़ाऊँ पहन कर, छाता लगाकर मूत्र-मल का त्याग नहीं करना चाहिए-**

न सोपानत् पादुको वा छत्री वा। **कूर्मपुराणम्।**

जूता-चप्पल-खड़ाऊँ पहन कर मूत्र-मल का त्याग करने से ये चीजें भी अशुद्धि को ढोने का काम करेंगी। यदि आप अपने घर के भीतर बाहरी

लोगों को जूता-चप्पल पहन कर नहीं आने देते हैं तो आप अनेक रोगों को घर से बाहर ही रोक देते हैं। शुद्धता का थोड़ा भी रखा गया ध्यान ज्यादा सुरक्षा देता है। छाता ओढ़ कर मूत्र-मल त्यागने से दुर्गन्ध की परिधि (घेरा) बनती है जो उसी व्यक्ति को हानि पहुँचाती हैं।

३७. मल त्याग के समय जोर से श्वास न लें। मुंह न खोलें-

मौनी भूत्वा च निःश्वासं यथा गन्धो न संचरेत्।।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणम्।।

[टिप्पणी-
मल त्याग के समय जोर से सांस लेने पर दुर्गन्ध का शरीर के भीतर प्रवेश होता है। छींकने और खांसने से भी हानि की संभावना बनी रहती है। लाखों लाख वर्षों से भारत में शुद्धि की प्रक्रिया का वैज्ञानिक विश्लेषण कर उसके गुण दोष का उल्लेख हो चुका था। कलियुग में इन चीजों का उल्लंघन करना, निषेध को न मानना आम बात है। यही कारण है आयु का क्षरण हो रहा हैं और नित्य नये नये ऐसे रोग उत्पन्न हो रहे हैं जिनकी दवा की खोज भी नहीं हो पा रही है। यूरोपीय जीवन पद्धति में शुद्धता, भोजन, आचार, स्नान, मूत्र-मल त्याग का वैज्ञानिक विश्लेषण परक अध्ययन हुआ ही नहीं है। वहाँ के प्राचीन ग्रन्थों को पढ़ने के बाद महसूस होता है कि उन्हें जीवन के प्रतिदिवसीय कृत्यों के प्रति गहरी अभिरुचि ही नहीं थी। वहाँ स्नान करना आवश्यक तत्त्व नहीं है। भारत में दोनों समय (प्रातः-सायं) स्नान करने का प्रविधान रहा है। इस तरह के सैकड़ों उदाहरण भरे पड़े हैं।]

३८. भूमि के ऊपर लकड़ी, सूखी मिट्टी, पत्ता, घास की परत बनाकर मल त्याग करना चाहिए- इस तथ्य का उल्लेख मनुस्मृति, ४/४९, वसिष्ठस्मृति १२/१०, कूर्मपुराण १३/३५, पद्मपुराण स्वर्ग. ५२/३६-३७, नारदपुराण, पूर्व. २७/४, स्कन्दपुराण, ब्रह्मपुराण, ५/३८ एवं महाभारत अनुशासन पर्व ९६ में मिलता है।

ऋषियों ने इस प्रक्रिया को भूमि माता को सीधे अशुद्ध होने से बचाने के लिये बनाया है। पृथ्वी माँ है। हम सभी उसकी संतति हैं- **माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।** अतः पृथ्वी पर सीधे मूत्र-मल का विसर्जन न करके तृणाच्छादन किया जाता है-

शुष्कैस्तृणैर्वा काष्ठैर्वा पत्रैर्वेणुदल्लेन वा।
मृन्मयैर्भाजनैर्वापिं अन्तर्धाय वसुन्धराम्।।

[टिप्पणी-
मल त्याग की इस विधि से खाद का निर्माण, वातावरण और भूमि की शुद्धि की प्रक्रिया का निर्माण चलता रहता था। आज सुरक्षित गड्ढ़ा (Safety Tank) एवं जलप्रबाहिका (Sewer) के द्वारा काम चलाया जा रहा है। इससे भूगर्भ की शुद्धता दुष्प्रभावित हो रही है। प्राकृतिक स्तर पर इसके दुष्परिणाम जब सामने आते हैं तो भयावहता का निराकरण असंभव हो जाता है। आज अत्यधिक आवादी के कारण इस पद्धति का कोई विकल्प भी नहीं बचा है।]

३९. **जलाशय से बारह या सोलह हाथ दूर मूत्र विसर्जन करना चाहिए और चार गुणित ज्यादा दूरी पर मल त्याग करना चाहिए-**

हस्तान् द्वादश संत्यज्य मूत्रं कुर्यात् जलाशयात्।
अवकाशे षोड़श वा पुरीषे तु चतुर्गुणम्।।

धर्मसिन्धुः।।

[टिप्पणी-
यह निर्देश जल संस्था की शुद्धता को बचाये रखने के लिए दिया गया है। जलाशय का सम्बन्ध आस पास की मिट्टी और खेत से बना रहता है। अतः इसका पालन करना चाहिए। प्राचीन भारत में भूमि माप योजन, दण्ड, हाथ और अंगुल से होता था आज फुट (पैर) या मीटर से होता है। प्रायशः एक हाथ को दो फुट मान कर व्यवहार करना चाहिए। यद्यपि यह थोड़ा कम होता है।]

४०. **वृक्ष की ,छाया, स्तम्भ, मंदिर की छाया में मूत्र-मल त्याग न करें, परन्तु अपनी छाया में करें- छायायां मूत्रपुरीषयोः कर्म वर्जयेत्। स्वां तु छायामवमेहेत्।** आपस्तम्बधर्मसूत्र १/११/३०/१६-१७।। स्थिर निर्माण या वृक्ष की छाया में तथा भूमि के भीतर विविधप्रकार के किटाणुओं का निवास होता है। सूक्ष्म प्रभाव एवं गूढ़ प्रभाव भी इन स्थानों पर बहुत होता है। फलतः व्यक्ति उसकी चपेट में आ सकता है।

४१. **स्वयं के मूत्र-मल का भी ध्यानपूर्वक दर्शन नहीं करना चाहिए।** वस्तुतः जुगुप्सित (घृणित) वस्तु या पदार्थ का दर्शन आयु और स्वास्थ्य को दुष्प्रभावित करता है। मूत्र-मल त्याग करते समय सूर्य, चन्द्र, अग्नि, ग्रह, नक्षत्र, दिशाओं एवं तेजस्वी पदार्थों का दर्शन नहीं करना चाहिए-

'न पश्येदात्मनः शकृत्' शाँतिपर्व, महा. १९३/२४ अपनी विष्ठा को न देखें। इन निषेधों को मानने से आयु बढ़ती है।

४२. **'कहाँ-कहाँ, किन परिस्थितियों में मूत्र-मल का विसर्जन नहीं करना चाहिए'** इस सन्दर्भ में प्रायशः पुराणों एवं स्मृति ग्रन्थों में विशदता के साथ वर्णन मिलता है। इन निषेधों को जीवन में अवश्य मानना चाहिए। इन निषेधों को न मानने वाले दीर्घ काल बाद या अचानक कभी भी अपने जीवन को खतरे में डाल लेते हैं। निषेध हमेशा मानना चाहिए। निषेध को न मानने से प्राणहानि, स्वास्थ्यहानि, यशहानि और तपहानि होती है। जैसे सामान्य जगत् में कानून तोड़ने वाला दण्डित होता है, वैसे ही जीवन में आचार संहिता के निषेधों को तोड़ने वाला अवश्य ही दण्डित होता है। उसे दण्ड के रूप में स्वास्थ्य, जीवन, धन की कीमत चुकानी पड़ती हैं। अतः इन निषेधों को यहाँ पर दिया जा रहा है-

न ज्योतिंषि निरीक्षन् वा न संध्याभिमुखोऽपि वा।
प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिसोमं तथैव च।।
कूर्मपुराणम् उ., १३/४२। पद्मपुराणम्स्वर्ग., ५२/४३-४४।।

ज्योतिः पिण्डों को देखते हुये, प्रातः सायं पूर्व-पश्चिम मुख होकर, सूर्य-अग्नि-चन्द्रमा की ओर मुख करके मूत्र-मल न त्यागें। जो व्यक्ति आग में या आग की ओर अथवा सूर्य-चन्द्र-गुरु-वृद्ध व्यक्ति की ओर मुख करके मूत्र-पुरीष का विसर्जन करता है उसके वीर्य में संतान उत्पत्ति की क्षमता समाप्त हो जाती है-

गुरुचन्द्राग्नि-सूर्याणां संमुखे मेहते च यः।
बीजमृत्सृज्यते तेन त्यक्तरेता नरो भवेत्।।

पद्मपुराणम्।।

मूत्र-मल का अस्थान एवं असमय में किया गया विसर्जन स्वयं तथा मानव समूह के लिए हानिकारक होता है। कल्पना कीजिए गेंहूँ, चना का बीज बोया गया है और उसी में कोई मूत्र-मल का त्याग करे तो उस उत्सर्जित निकृष्ट पदार्थ का रस और प्राणतत्त्व उस पौधे और उसके अन्न को कुत्सित करेगा। उसी अन्न का भक्षण करने वाला व्यक्ति सूक्ष्मतः क्षतिग्रस्त तो होगा ही। अतः कहाँ-कहाँ मूत्र-मल का त्याग नहीं करना चाहिए इसकी थोड़ी-सी जानकारी प्राचीन ग्रन्थों से यहाँ दी जा रही है-

न कृष्टे सस्यमध्ये वा गो व्रजे जनसंसदि।
न वर्त्मनि न नद्यादितीर्थेषु पुरुषर्षभ।।

नाप्सुनैवाम्भसस्तीरे श्मशाने न समाचरेत्।
उत्सर्गं वै पुरीषस्य मूत्रस्य च विसर्जनम्।।

विष्णुपुराणम्, ३/११/१२-१३।।

जुते हुए खेत में, गोशाला में, जनसमूह या उसके कार्यस्थल पर, मार्ग में, नदी-तीर्थ के पास मूत्र-मल का विसर्जन न करें। जल में, नदी-सरोवर-झील के तट पर, श्मशान में मूत्र-मल न त्यागें। ध्येय है मल त्यागते समय मूत्र अवश्य निकलता है। मल कभी अकेले (मूत्र के बिना) नहीं निकलता है। अत: मल त्याग और मूत्र त्याग दो कर्म हैं।

न फालकृष्टे न जले न चितायां न पर्वते।
जीर्ण-देवालये कुर्यान्न वल्मीके न शाद्वले।।
न ससत्त्वेषु न गर्त्तेषु न गच्छन्न पथि स्थितः।

देवीभागवतम्, ११/२/१०-११।।

हरी भरी घास में, टूटे-फूटे देवालय में, गोबर में, जल के भीतर, लोगों के घरों के पास, लोगों की दीवारों पर, खम्भे पर, पुल पर, खेल-कूद के मैदान में, मचान (मंच) के नीचे, राख में, बिल में, अंगारों पर तथा लकड़ी के समूह पर मूत्र-मल का त्याग नहीं करना चाहिए। आजकल बहुतायत में लोग दीवालों, खम्भों या आड़ देखकर कहीं भी खड़े खड़े मूत्र उत्सर्जन करने लगते हैं इससे साधारण लोगों को बेहद परेशानी होती है। यह अशुद्धि और असभ्यता दोनों है।

४३. **स्त्री, पूज्यजन और बहती हवा की ओर मुख करके मूत्र-मल का त्याग नहीं करना चाहिए-**

न चैवाभिमुखे स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्गवाम्।
न देवदेवालययोरपामपि कदाचन।।

पद्मपुराणम्स्वर्ग., ५२/४२-४३, कूर्मपुराणम्, उ. १३/४१।।

शास्त्र कहते हैं- इस तरह का अमर्यादित आचरण करने पर मनुष्य (कर्त्ता) की बुद्धि नष्ट हो जाती है-

प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोदकद्विजान्।
प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः।।

मनुस्मृतिः, ४/५२।।

इन दुष्कर्मों से जहाँ पूज्यों का निरादर होता है वहीं अपने स्वास्थ्य का नाश भी होता हैं। पूज्यों के निरादर से वंशहानि का भारी खतरा उत्पन्न होता है। गर्भ में आई संतान च्युत हो जाती है अर्थात् गर्भपात हो जाता है। फलतः यत्नपूर्वक इस तरह के मानसिक पाप से प्रेरित होकर शारीरिक पाप नहीं करना चाहिए। यह विधान स्त्री-पुरुष दोनों के लिए है-

वर्षाणि षडशीतिं तु दुर्वृत्ताः कुलपांसनाः।
स्त्रियः सर्वाश्च दुर्वृत्ताः प्रतिमेहन्ति या रविम्।
अनिलद्वेषिणः शक्रः गर्भस्थम च्यवते प्रजा।।

महाभारत, अनुशासनपर्व, १२५/६४-६५।।

स्त्री या पुरुष यदि सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु, ब्राह्मण, श्रेष्ठ जनों की ओर मुख करके मूत्र-मल का त्याग करते हैं तो छियासी वर्ष की आयु तक उन्हें संतानहीनता और गर्भ नाश का सामना करना पड़ता है। (इससे सिद्ध होता है कि छियासी वर्ष की आयु तक संतान प्राप्ति की क्षमता प्राचीनकाल में थी।)

प्रायशः पान खाकर लोग कहीं भी किसी भी स्थान पर बिना विचार किये थूक देते हैं। ष्ठीवन (थूकना) खाँसना, छींकना (नाक में तृण डालकर) भी मूत्र-मल त्याग की ही तरह प्रतिबन्धित हैं।

शौच (शुद्धि) विधान

प्राचीन भारत में मिट्टी से हाथ मलने का विधान था। मिट्टी से हाथ धोने पर पवित्रता और स्वच्छता दोनों आती है। साबुन, सर्फ या अन्य केमिकल से हाथ, पैर धोने से स्वच्छता तो आ सकती है पर पवित्रता नहीं आ सकती है।

[टिप्पणी-

ऋषियों ने दाहिने हाथ से भोजन और देव कर्म करने का विधान किया है तथा बायें हाथ से सफाई एवं अन्य शुद्धि कर्म का विधान किया है। यूरोपीय जीवन पद्धति में ऐसा निर्देश नहीं प्राप्त है। वे दायें, बायें दोनों हाथों से खाते हैं। गंदगी साफ करने की उनकी संहिता स्पष्ट नहीं है। फलतः मध्यकाल में अंग्रेजों को आश्चर्य होता था कि हिन्दू दायें हाथ से भोजन करते हैं और बायें हाथ से गंदगी साफ करते हैं। यूरोपीय जीवन पद्धति की अवैज्ञानिकता और अज्ञानता भारतीय जीवन पद्धति के लिए अपनाना अशुभ और विनाशकारी सिद्ध होगा। यह माडर्निटी

नहीं अज्ञानता और कुंठा है। पश्चिमी जीवन पद्धति और हिन्दू जीवन पद्धति पर यदि तुलनात्मक विवेचन किया जाए तो दो-तीन हजार पृष्ठ का ग्रन्थ बन सकता है।]

पवित्रता, सुगंधि और प्रक्षालन की क्षमता पंचमहाभूतों में मात्र विद्यमान है। अतः पवित्रता हेतु हाथ धोना है तो मिट्टी से धोयें। मिट्टी का चयन स्वयं या कुम्भकार द्वारा कराना चाहिए। यह मिट्टी शुद्ध स्थान से डेढ बित्ता (१ फीट) नीचे से खोद कर ग्रहण करनी चाहिए। स्वच्छता हेतु हाथ धोना है तो साबुन से धोयें। पंचसितारा होटल में मिट्टी नहीं मिलेगी। वहाँ तो साबुन से काम चलाना होगा। ट्रेन और हवाई जहाज में साबुन और साबुनपत्ती से काम चलाना होगा पर घर में यदि ऐसी विवशता नहीं है तो मिट्टी का प्रयोग करना चाहिए। प्रक्षालित करने की क्षमता केवल जल में है। जल स्नान ही स्नान है। अतः तैल स्नान या दूध स्नान किसी खास अवसर पर कोई करता है तो करे पर प्रतिदिवसीय स्नान तो जल से ही संभव है। यूरोप में मदिरा स्नान आम बात है। सुगंध पृथ्वी से प्राप्त होती है। प्राणवायु आकाश से मिलती है। सोम एवं रस पदार्थ तथा जल की तृप्ति तो केवल आप (जल) महाभूत से ही संभव है। उष्मा चाहे बाहरी हो या भीतरी वह अग्नि महाभूत या तेज तत्त्व से ही मिल सकती है। अतः इन महाभूतों के निकट रहकर श्रद्धा पूर्वक इनका जीवन में प्रतिक्षण उपयोग करना हिन्दू जीवन पद्धति है।

४४. **शरीर का मध्य भाग नाभि है। नाभि से नीचे बायें हाथ से धोना, रगड़ना, पोंछना चाहिए।** नाभि से ऊपर दाहिने हाथ का प्रयोग करना चाहिए। दायें हाथ से मूत्र-मल नहीं धोना चाहिए-

वामहस्तेन शौचं तु कुर्याद्वै दक्षिणेन न।
नाभेरधो वामहस्तो नाभेरूर्ध्वं तु दक्षिणः।।

देवीभागवतम् ११/२/२९।।

प्राचीन काल में मूत्र-मल धोने के बाद बायाँ हाथ दस बार और दाँया सात बार धोया जाता था। दोनों पैरों को तीन बार धोया जाता था। मल त्याग के बाद गुदा को तीन बार कम से कम अवश्य धोना चाहिए और लिङ्ग या योनि को एक बार अवश्य धोना चाहिए। यह विषय स्वस्थवृत्त (पर्सनल हाइजिन) का है-

एकालिङ्गे गुदे तिस्रः तथैकत्र करे दश।
उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता।।

मनुस्मृतिः ५/१३६।।

४५. **दिन में जो क्रम लिखा है रात में उसे आधा करना चाहिए। यात्रा में एक चौथाई करना चाहिए।** जल्दबाजी में भी एक चौथाई करना चाहिए-

दिवोदितस्य शौचस्य रात्रावर्द्धं विधीयते।
तदर्द्धमातुरस्याहुः त्वरायामर्द्धमध्वनि।।

दक्षस्मृतिः ५/१२।।

इससे स्पष्ट है कि हिन्दू जीवन पद्धति में सभी परिस्थितियों का विचार किया गया है। सूक्ष्म से सूक्ष्म अपवादों (Reproach), उथल पुथल (Calamity) एवं विपत्तियों (Distress) के सन्दर्भ में भी जीवन आचार हेतु यहाँ विचार एवं विधान प्रस्तुत किये गये हैं।

शौच कर्म में प्रत्येक बार आँवला फल के बराबर मिट्टी लेनी चाहिए। इससे कम नहीं-

आर्द्राऽऽमलकमाना तु मृत्तिका शौचकर्मणि।
प्रत्येकं तु सदा ग्राह्यो नाऽतो न्यूना कदाचन।।

देवीभागवतम् ११/२/२५।।

गण्डूषकरण (कुल्ला-मुखारी)

४६. **गण्डूष को लोक में गलफर या जबड़ा कहते हैं। मुख का भीतरी भाग जिसमें दाँत, गाल, जिह्वा, ऊर्ध्व-अधः तालु स्थित है उसे प्रतिदिन पानी के द्वारा कुल्ला-गरारा करके साफ किया जाता है। आश्वलायन ऋषि ने कहा है-**

कुर्याद् द्वादश गण्डूषान् पुरीषोत्सर्जने द्विजः।
मूत्रोत्सर्गे तु चतुरो भोजनान्ते तु षोडश।।

भक्षभोज्यावसाने तु गण्डूषाष्टकमादरात्।

मल त्याग के बाद बारह बार और मूत्र त्याग के बाद चार बार कुल्ला आवश्यक है। भोजन के बाद सोलह बार कुल्ला करना चाहिए- **अथ मूत्रे चत्वारो गण्डूषाः पुरीषे द्वादशाष्टौ वा भोजनान्ते षोडश कार्याः** (धर्मसिन्धुः ३ परिच्छेद)। जब भी कुछ खायें पियें तो आठ बार जल

द्वारा कुल्ला अवश्य करना चाहिए। आश्वलायन ऋषि ने कहा है- कुल्ला धीरे धीरे मुख के भीतर जल को घुमाते हुए करना चाहिए। इससे मुख के अन्दर, दाँतों के बीच में जो कुछ अन्न का टुकड़ा या दाना फंसा होगा वह पानी के दबाव से बाहर निकल जायेगा। दाँतों के भीतर सड़ता अन्न दन्तपांशु (कीचड़, पायरिया, पपड़ी) को जन्म देता है। यह लार के द्वारा अन्दर जाता है और पेट में रोग को पैदा करता है। अतः आदरपूर्वक समय देकर कुल्ला करना चाहिए। बच्चों को भी कुल्ला करना सिखा देना चाहिए। इससे उनके दाँत नहीं सड़ते। सड़े दाँत जब अपनी जड़ों को प्रदूषित करते हैं तो वहाँ सुन्दर, मजबूत और यथास्थान दाँत नहीं निकलते। दाँत की बनावट जब खराब होती है तो दन्त्योष्ठ वर्णों के उच्चारण खराब हो जाते हैं।

गण्डूष निक्षेप (कुल्ला फेंकना)

कुल्ला भूमि पर फेंकते समय ध्यान रखना पड़ता है कि वह किस दिशा में फेंका जाए। सभी जगह बेसिन व्यवस्था तो होगी नहीं कि उसी में कुल्ला करें। खुली जगह में कुल्ला करते समय हमेशा बायीं हाथ की ओर उसे फेंका जाता है। सामने देवता रहते हैं। दक्षिण हाथ की ओर पितर रहते हैं और पीठ भाग में ऋषियों का वास होता है। अतः कुल्ला हमेशा बायीं ओर फेंकने का विधान है। ध्येय है पूर्व या उत्तर मुख बैठकर ही दन्तधावन, मुखशुद्धि आदि की जाती है ऐसे में वामहस्त की ओर कुल्ला फेंकने पर वह उत्तर या पश्चिम दिशा में जायेगा। पृथ्वी की स्थिति के अनुसार भी ये दोनों दिशायें शौच में प्रयुक्त होती हैं। अतः इसका विधान हुआ- वामहस्त की ओर कुल्ला फेंकना चाहिए-

पुरतः सर्वदेवाश्च दक्षिणे पितरस्तथा।
ऋषयः पृष्ठतः सर्वे वामे गण्डूषमुत्सृजेत्।।

मार्कण्डेयः।।

४७. **मिट्टी का संचयन-** मिट्टी पहुँचाने का काम कुम्भार किया करते थे। उनको समाज से इस काम के लिए धन मिलता था। आज साबुन की बड़ी कम्पनियाँ लाभ ले रही हैं। पुरवा, कुल्हण की जगह पर प्लास्टिक के पात्र आ जाने से पर्यावरण प्रदूषण और कुम्भकारों के जीवन निर्वाह इन दोनों परिस्थितियों पर भयावह दुष्प्रभाव हुआ है। पर्यावरण और सामाजिक-आर्थिक समीकरण दोनों असंतुलित हो गये हैं।

मिट्टी उजली, चिकनी हो तो श्रेष्ठ होती है। यह खेत से ऊपरि परत को छील कर निकाली जाती है। शुद्धि हेतु जलाशय के भीतर से, देवालय से, बाँबी से, चूहे के बिल से, रास्ते से, चौराहा-श्मशान से, ऊसर से, घर की दीवार से, दूर्वा-कुशा की जड़ से, हल से जोती हुई मिट्टी नहीं लेनी चाहिए।

कुल्ला बायीं ओर फेंकना चाहिए। गण्डूष (कुल्ला) करते रहने से मुख और दाँत की आयु बढ़ती है। मुख और दाँत के रोग जल चिकित्सा से ठीक रहते हैं। जल चिकित्सा जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी और व्ययहीन होती है।

इस शौच आचार में एक और महत्त्वपूर्ण बात कही गई है- केवल मिट्टी से बार-बार शरीर को धोते रहने से और जल से गण्डूष (कुल्ला) करते रहने से शरीर के अङ्गों की शुद्धि तो हो जायेगी पर मन (भाव) की शुद्धि नहीं हो सकेगी। **नदियों का जल खत्म हो सकता है, पृथ्वी की मिट्टी खत्म हो सकती है पर भाव शुद्धि के विना मनुष्य के चित्त, व्यवहार और कर्म की शुद्धि नहीं हो सकती है।** शुद्धि की बीमारी नहीं लगनी चाहिए, न तो शुद्धि का परित्याग ही करना चाहिए-

मृत्तिकानां सहस्रेण चोदकुम्भशतने च।
न शुद्ध्यन्ति दुरात्मानो येषां भावो न निर्मलः।।

वीरमित्रोदयः।।

हजार मन (४० किलो = १ मन) मिट्टी का लेपन कर करोड़ों कलश के जल से स्नान करने पर भी अन्तःशुद्धि से रहित व्यक्ति चाण्डाल और दुष्टात्मा ही रहता है। अतः सर्वप्रथम प्रयत्नपूर्वक अन्तःशुद्धि करनी चाहिए। इसके बाद बहिःशुद्धि (शौच) पर ध्यान देना चाहिए। वस्तुतः अन्तःशुद्धि और बाह्यशुद्धि मन और देह की शुद्धि से सम्बन्धित है, मन की शुद्धि परम आवश्यक है। तन की शुद्धि अपेक्षाकृत गौण है। मन की शुद्धि के बिना तन की शुद्धि व्यर्थ होती है। मदिरा भरे वर्तन को बाहर से रगड़ कर साफ करने से पात्र की शुद्धि नहीं होती है-

मृदां भारसहस्रैस्तु कोटिकुम्भजलैस्तथा।
कृतशौचोऽपि दुष्टात्मा स चाण्डाल इति स्मृतिः।।

अन्तः शुद्धिविहीनश्च बहिःशुद्धिं करोति यः।
अलं धौतं सुराभाण्डमिव भाति द्विजोत्तमः।।

बृहन्नारदीय।।

मन पारा द्रव्य की तरह होता है। वह सुसंग से ऊर्ध्व चढ़ता है और कुसंग से अधः गिरता है। इन दोनों शुद्धियों के लिए धन की आवश्यकता नहीं होती है। प्रतिदिवसीय अभ्यास और मन की दृढ़ता से ही यह शुद्धि संभव है। अत: शौच अपनाने में शिथिलता नहीं दिखानी चाहिए-

मृदा-जलेन शुद्धिः स्यान्न[१] क्लेशो न धनव्ययः।
यस्य शौचेऽपि शैथिल्यं वृत्तं तस्य परीक्षितम्।।

दक्षस्मृतिः, ५/१०

उपसंहार

प्रातः जागरण अर्थात् शय्या त्याग से लेकर मूत्र-मल विसर्जन तक की प्रक्रिया का विधान यहाँ संक्षेपत: प्रस्तुत किया गया है। इन विधानों को ध्यान पूर्वक हृदयंगम करके प्रयत्नपूर्वक जितना हो सके उसे जीवन में उतारना चाहिए। विशेषरूप से मनुष्य जब अपने घर में स्वाभाविक रूप से रह रहा हो तब इन विधियों का अनुपालन अवश्य करना चाहिए। यात्रा में, युद्ध में, कहीं जीविका (वृत्ति) में लगे होने पर तदनुसार जीवन जीना आवश्यक होता है पर जिस श्रेष्ठ कार्य को आसानी से किया जा सकता है उसे न करने का अर्थ है विधान की अवज्ञा। ट्रेनों के परिचालक रात में जागते हैं तो यह उनका स्वकर्म (ड्यूटी) है। अन्तरिक्ष यात्री और पर्वतारोही जनों की विवशता अलग होती है; पर सामान्यजनों को सामान्यस्थिति में आत्मसंयम अवश्य रखना चाहिए। पेशाब और पखाना करते समय मोबाइल पर बात करने वाले लोग न तो व्यस्त होते हैं न बहुत विपत्ति में फंसे होते हैं। वे केवल अज्ञानता और मानसिक विकृति के शिकार होते हैं। उन्हें अपने ऊपर नियंत्रण रख कर निर्देशित पद्धति के अनुसार चलना चाहिए। हिन्दू जीवन पद्धति में शरीर, मन और वाणी तीनों पर नियन्त्रण रखने का निरंतर आदेश और उपदेश वर्णित है। इन तीनों के नियंत्रित होने से ही आत्मा का विकास और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। फलतः बाह्य शुद्धि से शरीर, अन्त:शुद्धि से मन तथा तपस्या से आत्मा को प्रदीप्त करके दीर्घायु, ब्रह्मवर्चस्व, प्रज्ञा, यश तथा ऐश्वर्य को प्राप्त किया जाता है। इन सभी का आत्मअनुशासन द्वारा समन्वय करना ही-

हिन्दू जीवन पद्धति है।



---

१. पाठभेदः- मुधा द्रव्येण शुद्धिः स्यात्।

परिशिष्ट

अथर्ववेदीय प्रातः स्मरण

प्रातः स्मरणीय मंत्र

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं सोममुत रुद्रं हवामहे।।१।।

अग्नि, इन्द्र, मित्रावरुण, अश्विनीकुमार, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम, और रुद्र भगवान् का प्रातः काल हम आवाहन करते हैं।

प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह।।२।।

प्रातःकाल में अदिति पुत्र भग की प्रार्थना करते हैं। भग देवता से धनभाग की याचना अशक्त, बलवान् और राजा भी करते हैं।

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम।।३।।

हे भगवन्! आप श्रेष्ठ नेता हैं। सत्यसिद्धि देने वाले हैं। हमें बुद्धि दें। हे भग देवता! आप हमें गौ, अश्व और संतान दें। हम श्रेष्ठ मनुष्यों के साथ श्रेष्ठ मनुष्यों जैसे रहें।

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम।।४।।

हम प्रातःकाल में, मध्याह्न काल में तथा सायंकाल में भी भाग्यवान् रहें। सूर्य के उदय होते समय हम देवताओं की सुमति में स्थिति रहें।

भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेना वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि स नो भग पुरएता भवेह।।५।।

अदिति पुत्र भग ही भगवान् हैं। वे मेरे साथ रहें। उनकी सहायता से हम भाग्यवान् बने रहें। हे भग! मैं तुझे सभी प्रकार से यजन करता हूँ। आप हमारे सम्मुख स्थित हो हमारा नेतृत्व करें।

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु।।६।।

यज्ञ के लिये उषा देवी उत्तम प्रकार से झुक जायें। पवित्र स्थान पर पग रखने के लिये अश्व वांछित होता है। ये अश्व हमारे पास ऐश्वर्ययुक्त भग देवता को लेकर आयें, जिस तरह से वे रथ का आनयन करते हैं।

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।७।।

उषा देवी अश्व, गो और वीरों से युक्त हो कल्याणमयी वनकर हमारे घरों को प्रकाशित करें। गोघृत को प्राप्त कर (खाकर) सब प्रकार से हृष्ट-पुष्ट होकर सभी लोग अनेक कल्याणों के साथ युक्त होकर स्थित रहें तथा सभी (रक्षित लोग) सदा हमारी रक्षा करें।

प्रातः प्रणम्य जन

प्रातःकाल में जागकर पिता, माता, भ्राता, गुरु, आचार्य तथा वृद्धों को चरण स्पर्श कर प्रणाम करना चाहिए। यह हमारी प्राचीन परम्परा रही है। इससे आयु, विद्या, यश और बल बढ़ता है-

प्रातःकाले पिता माता ज्येष्ठभ्राता तथैव च।
आचार्याः स्थविराश्चैव वन्दनीया दिने दिने।।

पौराणिक प्रातः स्मरणम्

वीरमित्रोदय ग्रन्थ में प्रातः स्मरण के ९ मंत्र दिये गये हैं। ये मंत्र पुराण से लिये गये हैं। इनमें त्रिदेव, नवग्रह, सप्तर्षि, ब्रह्मा के मानस पुत्र, सप्तस्वर, सप्तरसातल, पृथ्वी, जलसंस्था, वायु, तेज (अग्नि); आकाश, शब्द, महद् तत्त्व, सप्तसमुद्र, सप्तपर्वत, सप्तद्वीप, सप्तभुवन का स्मरण किया गया

है। जो व्यक्ति प्रातः काल उठ कर इन दिव्य नामों का स्मरण करता है वह जीवन में कभी खेद या विपत्ति को नहीं प्राप्त करता। अतः प्रतिदिन उषः काल में जागकर नियमित रूप से शय्या पर ही इन प्राभातिक मंगल श्लोकों का वाचन या स्मरण करना चाहिए। वस्तुतः ये सभी श्लोक स्मरणीय हैं।

सुकेश्युवाच

किं तदुक्तं सुप्रभातं शंकरेण महात्मना।
प्रभाते यत्पठन् मृत्योर्मुच्यते पापबन्धनात्।।१।।

ऋषय ऊचुः

श्रूयतां राक्षसश्रेष्ठ सुप्रभातं सुरोदितम्।
श्रुत्वा स्मृत्वा पठित्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते।।२।।

ब्रह्मामुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।३।।

भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च मनुः पुलस्त्यः पुलहः स गौतमः।
रैभ्यो मरीचिश्च्यवनो रिभुश्च कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।४।।

सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च।
सप्तस्वराः सप्त रसातलाश्च कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।५।।

पृथ्वी सगन्धाः सरसास्तथाऽऽपः स्पर्शी च वायुर्ज्वलितं च तेजः।
नभः स शब्दं महता सहैव कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।६।।

सप्तार्णवाः सप्तकुलाचलाश्च सप्तर्षयो द्वीपवराश्च सप्त।
भूरादि कृत्वा भुवनानि सप्त कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।७।।

इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं पठेद् स्मरेद् वा श्रृणुयाच्च भक्त्या।
दुःस्वप्ननाशोऽनघसुप्रभातं भवेच्च सर्वं भगवद् प्रसादाद्।।८।।

ततः समुत्थाय विचिन्तयेद् बुधो
धर्मं तथाऽर्थं च विहाय शय्याम्।
उत्थाय पश्चाद् हरिरित्युदीर्य
गच्छेत् तदोत्सर्ग-विधिं च कर्त्तुम्।।९।।

अंतिम श्लोक से यह स्पष्ट है कि शय्या पर ही प्राभातिक मङ्गल स्मरण करना चाहिए। इसके बाद शय्या का परित्याग करके धर्म, अर्थ का चिन्तन करना चाहिए। 'श्री हरिः' बोलते हुए नित्यक्रिया में संलग्न होना चाहिए। सुप्रभातिक मंगल श्लोक में स्पष्ट लिखा है कि इसे पठेत्, स्मरेत्, श्रृणुयात् तीनों किया जाता है। प्रातः स्मरण शुद्ध रहने पर पढ़ा जाता है। अशक्त रहने पर सुना जाता है और अपवित्र या अशौच अवस्था में मानसिक रूप से स्मरण किया जाता है।

अथर्वा ऋषि ने बृहस्पति देवता की कृपा से प्रातः स्मरण मंत्रों को प्रकट किया। इन मंत्रों को ब्राह्ममुहूर्त्त में जाग कर स्मरण, श्रवण, पठन करने वाला व्यक्ति प्रतिदिन पवित्र हो जाता है। उसको देवताओं की कृपा से इहलौकिक (भौतिक) समृद्धि और पारलौकिक (आध्यात्मिक) समृद्धि की प्राप्ति होती है।

श्री सूर्य भगवान् का प्रातः स्मरण

प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं
रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनूर्यजूंषि।
सामानि यस्य किरणाः प्रभवादिहेतुं
ब्रह्मा - हरात्मकमलक्ष्यमचिन्त्यरूपम्।।१।।

प्रातर्नमामि तरणिं तनु-वाङ्-मनोभि-
र्ब्रह्मेन्द्र - पूर्वक - सुरैर्नुतमर्चितं च।
वृष्टि - प्रमोचन - विनिग्रह - हेतुभूतं
त्रैलोक्य - पालनपरं त्रिगुणात्मकं च।।२।।

प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिं
पापौघ - शत्रुभय - रोगहरं परं च।
तं सर्वलोक - कलनात्मक - कालमूर्तिं
गोकण्ठबन्धन - विमोचनमादि - देवम्।।३।।

श्री गणेश भगवान् का प्रातः स्मरण

प्रातःस्मरामिगणनाथ मनाथबन्धुं
सिन्दूरपूरपरिशोभीतगण्डयुग्मम् ।
उद्दण्डविघ्नपरिखण्डनचण्डदण्ड-
माखण्डलादिसुरनायकवृन्दवन्द्यम् ।।१।।

प्रातर्नमामि चतुरानन वन्द्यमान-
मिच्छानुकूलमखिलं च वरं ददानम्।
तं तुन्दिलं द्विरसनप्रिययज्ञसूत्रं
पुत्रं विलासचतुरं शिवयोः शिवाय।।२।।

प्रातर्भजाम्यभयदं खलुभक्तशोक
दावानलं गणविभुं वरकुञ्जराष्यम्।
अज्ञानकानन विनाशन हव्यवाह-
मुत्साहवर्धनमहं सुतमीश्वरस्य।।३।।

श्री विष्णु भगवान् का प्रातः स्मरण

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिशान्त्यै
नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम्।
ग्राहाभिभूत - वरवारणमुक्तिहेतुं
चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम्।।१।।

प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना
पादारविन्दयुगलं परमस्य पुंसः।
नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य
पारायण प्रवणविप्रपरायणस्य।।२।।

प्रातर्भजामि भजतामभयङ्करं तं
प्राक्सर्वजन्मकृतपापभयापहत्यै।
यो ग्राहवक्त्रपतितांघ्रिगजेन्द्रघोर-
शोकप्रणाशनकरो धृतशङ्खचक्रः।।३।।

श्री देवाधिदेव महादेव का प्रातः स्मरण

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं
गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम्।
खट्वाङ्गशूल-वरदाभयहस्तमीशं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ।।१।।

प्रातर्नमामिगिरिशंगिरिजार्द्धदेहं
सर्ग-स्थिति-प्रलय-कारणमादिदेवम्।
विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोऽभिरामं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ।।२।।

प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं
वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम्।
नामादिभेदरहितं षडभावशून्यं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ।।३।।

भगवती दुर्गा देवी का प्रातः स्मरण

प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलाभां
सद्रत्नवन्मकर-कुण्डलहार-भूषाम्।
दिव्यायुधोर्जित - सुनीलसहस्रहस्तां
रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशाम्।।१।।

प्रातर्नमामि महिषासुर - चण्डामुण्ड-
शुम्भासुर-प्रमुखदैत्य-विनाशदक्षाम्।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिमोहन - शीललीलां
चण्डीं समस्तसुरमूर्तिमनेकरूपाम्।।२।।

प्रातर्भजामि भजतामभिलाषदात्रीं
धात्रीं समस्तजगतां दुरितापहन्त्रीम्।
संसारबन्धन - विमोचनहेतुभूतां मायां
परां समधिगम्य परस्य विष्णोः।।३।।



पूर्णमनोरथस्तोत्रम्

गणाधिपो भानु-शशी धरासुतो बुधो गुरुर्भार्गवसूर्यनन्दनाः।
राहुश्च केतुश्च परं नवग्रहाः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा।।१।।
उपेन्द्र इन्द्रो वरुणो हुताशनस्त्रिविक्रमो भानुसखश्चतुर्भुजः।
गन्धर्व-यक्षोरग-सिद्ध-चारणाः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा।।२।।
नलो दधीचिः सगरः पुरूरवा शाकुन्तलेयो भरतो धनञ्जयः।
रामत्रयं वैन्यवली युधिष्ठिरः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा।।३।।
मनु-मरीचि-भृगु-दक्ष-नारदाः पराशरो व्यास-वशिष्ठ-भार्गवाः।
वाल्मीकि-कुम्भोद्भव-गर्ग-गौतमाः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा।।४।।
रम्भा शची सत्यवती च देवकी गौरी च लक्ष्मीश्च दितिश्च रुक्मिणी।
कूर्मो गजेन्द्रः सचराऽचरा धरा कुर्वन्तु वः पूर्ण मनोरथं सदा।।५।।
गङ्गा च क्षिप्रा यमुना सरस्वती गोदावरी वेत्रवती च नर्मदा।
सा चन्द्रभागा वरुणा त्वसी नदी कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा।।६।।
तुङ्ग-प्रभासो गुरुचक्रपुष्करं गया विमुक्ता बदरी वटेश्वरः।
केदार-पम्पासरसश्च नैमिषं कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा।।७।।
शङ्खश्च दूर्वासित-पत्र-चामरं मणिः प्रदीपो वररत्नकाञ्चनम्।
सम्पूर्णकुम्भः सुहुतो हुताशनः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा।।८।।
प्रयाणकाले यदि वा सुमङ्गले प्रभातकाले च नृपाभिषेचने।
धर्मार्थकामाय जयाय भाषितं व्यासेन कुर्यात्तु मनोरथं हि तत्।।९।।

सप्तचिरञ्जीविस्तुतिः

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः।।१।।
सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम्।
जीवेद् वर्षशतं सोऽपि सर्वव्याधिविवर्जितः।।२।।

पञ्चदेवतास्तुतिः

हरं हरिं हरिश्चन्द्रं हनुमन्तं हलायुधम्।
पञ्चकं हं स्मरेन्नित्यं घोरसङ्कटनाशनम्।।
उमा उषा च वैदेही रमा गङ्गेति पञ्चकम्।
प्रातरेव स्मरेन्नित्यं सौभाग्यं वर्द्धते सदा।।

पञ्चकन्यास्तुतिः

अहल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा।
पञ्चकन्याः स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्।।

अध्याय-२

दन्तधावन एवं मुखप्रक्षालन

उत्थाय नेत्रे प्रक्षाल्य शुचिर्भूत्वा समाहितः।
परिजप्य च मन्त्रेण भक्षयेद्दन्तधावनम्।।

कात्यायनस्मृतिः १०/३।।

प्रातः काल उठ कर, आँखों को धोकर, पवित्र होकर, शांत चित्त होकर मन्त्र पढ़ते हुये दाँत धोना चाहिए-

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजापशुवसूनि च।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो धेहि वनस्पते।।

कात्यायनस्मृतिः १०/४।।

हे वनस्पति! हमें आयु, बल, यश, वर्चस्व, प्रजा (संतान), पशु, वसु (धन), ब्रह्मज्ञान, प्रज्ञा और मेधा प्रदान करें।

अन्नाद्याय व्यूहध्वं सोमो राजाऽयमागमत्।
स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन च।।

काशीखण्डः ३५/८३।।

अन्न भोजन करने के लिये (निर्मलता प्राप्तकर) स्थिर पंक्ति से दृढ़ रहो, (क्योंकि) राजा सोम जिस वनस्पति में आ गये हैं, वही मेरे मुख को यश और ऐश्वर्य के द्वारा पोंछ दें।

इन दोनों मंत्रों को पढ़ कर जो व्यक्ति प्रतिदिन दाँतों को धोता है उसे वनस्पतिगत सोमतत्त्व की प्राप्ति होती है-

मन्त्रावेतौ समुच्चार्य यः कुर्याद्दन्तधावनम्।
वनस्पतिगतः सोमस्तस्य नित्यं प्रसीदति।।

काशीखण्डः ३५/८५।।

मनुष्य के अतिरिक्त पशुओं, पंछीयों या पृथ्वी पर निवास करने वाले अन्य प्राणियों में दाँत; जीभ, मसूड़ा, चेहरा आदि को धोने की प्रवृत्ति नहीं

है। यदि मनुष्य भी प्रतिदिन मुख न धोये तो उसे दण्डित नहीं किया जा सकता; पर सड़न, बदबू और दाँत के अन्य रोगों से उसे बचाया भी नहीं जा सकता है। मुख के भीतर के अङ्गों दाँत, मसूड़ा, तालु, जीभ, कण्ठ, स्वर घण्टी (टांसिल) तथा तन्तु को प्रतिदिन सावधानीपूर्वक अनिवार्यत: धोना चाहिए; गरारा करना चाहिए। जानवर प्रतिदिवसीय भोजन में औषधियों एवं अन्य तत्त्वों को प्रकृति द्वारा शिक्षित होने के कारण पहचान लेते हैं। इन प्राकृतिक पदार्थों से उनके मुख भाग का प्रक्षालन और शुद्धि होती रहती है। मनुष्येतर प्राणियों की इन्द्रियाँ मनुष्य से ज्यादा प्रबल होती हैं। इन प्राणियों का जीवन मनुष्य की तुलना में प्रायश: अल्पायु होता है। अत: वे कब, कैसे और क्यों मर गये यह कहना कठिन काम है। फलत: शारीरिक शुद्धि के अनेक प्रकारों में मनुष्य के लिए दाँत, जीभ, तलवा, मुख धोना अनिवार्य कृत्य है। बचपन से ही भारतीय घरों में मुख धोने को अनिवार्य संस्कार के रूप में रखा गया है। दाँतों और मसूड़ों की सफाई न करने से व्रत भंग हो जाता है। अत: इसमें अत्यधिक सतर्कता भी बरती जाती है। छठव्रत (सूर्यषष्ठीव्रत) में दाँत धोकर अन्न का अंश और गंध भी मुख से बाहर कर दिया जाता है। यदि षष्ठी तिथि में उपवास काल में अन्न का कण मुंह में आ जाए या अन्न का गंध भी महसूस हो जाए तो व्रत भंग हो जाता है। फलत: व्रती दो दिन पहले से ही दाँत, जीभ, मसूड़ों को साफ करने लगता है। व्रत की मर्यादा रक्षा और तपस्या भंग के भय से ही कई बार व्रती प्रात:-सायं दो बार मुंह धोता है और सचेष्ट हो प्रयत्न करता है कि उसके मुख के अन्दर का भाग केवल शुद्ध ही न रहे, बल्कि पवित्र भी रहे।

जो दाँतों को पवित्र करे उसे दन्तपवन अर्थात् दातुन (दातौन, दतुवन) कहते हैं। मुख धोने के लिए प्रतिदिन ताजा दातुन मिलनी चाहिए। कई एक बार व्यक्ति दातुन के छरके या छर्री (लरछा) को दो-तीन दिनों तक व्यवहार में लाता है। ऐसा प्राय: निम्ब के दातुन के साथ ज्यादातर होता रहता है। जब तक दातुन में आर्द्रता (गीलापन) रहती है तब तक उसे दाँत-मुंह धोने में प्रयुक्त किया जा सकता है। जंगलों, वृक्षों के कटने के कारण तथा घरों में वृक्षों को लगाने की प्रवृत्ति की कमी के कारण आज आबादी के अनुसार ताजा दातुन का मिलना कठिन हो गया है। आज यदि कोई प्रतिदिन ताजा दातुन कर रहा है तो वह सौभाग्यशाली और समृद्ध है। जिस प्रकार खतरनाक खाद से उत्पन्न अन्न को खाने से बचना आज कठिन है वैसे ही हानिकारक केमिकल्स से युक्त टूथपेस्ट और मुंह छिलने वाले ब्रशों से भी बचना कठिन है। शहरी जीवन में तो प्रतिदिन ताजा दातुन मिलना असंभव जैसा हो गया है। यदि जीवन में प्रतिदिन या किसी भी

दिन ताजा औषधीय दातुन मिले तो उसका दाँत धोने में प्रयोग करना चाहिए। विवशतायें, अनुपलब्धतायें जीवन में विकल्प अपनाने को मजबूर करती हैं। पर श्रेष्ठ तो श्रेष्ठ होता है। अवसर प्राप्त करते ही श्रेष्ठ का वरण करना चाहिए। दातुन करने के बाद उसे चीर कर जीभ को साफ करने की व्यवस्था प्राचीन काल से व्यवहार में चली आ रही है।

अत: दन्तधावन के लिए शुभ एवं वर्जित दातुन के सन्दर्भ में प्राचीन भारतीय जीवन पद्धति से परिचित होना आवश्यक है। दातुन के सन्दर्भ में धर्मशास्त्रों, पुराणों और आयुर्वेद के ग्रन्थों में वर्णन निम्नवत् मिलता है-

१. **कंटक- दुग्धवृक्ष वाली दातुन-** दुग्ध से युक्त और काँटों से युक्त वृक्षों की दातुन मुह धोने के लिए अत्यन्त शुभकारी और स्वास्थ्यवर्धक होती है-

सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः।।

नरसिंहपुराणम्, ५८/४९, लघुहारितस्मृतिः, ४/९.

दुग्धदार वृक्ष की टहनियाँ औषधीय गुणों से युक्त होती हैं। उनमें कीटनाशक और मुखदुर्गन्धी नाशक क्षमता भी विद्यमान होती है। अत: यह एक सर्वसाधारण नियम है कि दूधवाली दातुन शुभ एवं स्वास्थ्यवर्धक होती है। इनमें से कुछ दुग्धदार वृक्षों को वर्जित भी किया है।

२. **गूलर** (औदुम्बर) की दातुन शक्तिवर्धक, पुत्रदायक और तेजोवर्धक होती है। यह शुक्र ग्रह का औषधीय वृक्ष है। इसका उपयोग यज्ञ मं होता है। यह प्रायशः नदी तट और निर्जन स्थान में प्राप्त होता है। इसकी दातुन करने से जीवन में सफलता, श्री और बुद्धि तत्त्व की वृद्धि होती है। प्राचीनकाल में यह सर्वाधिक ग्राह्य दातुन वाला वृक्ष था। प्रायशः योगी एवं साधक जन अपने आश्रम में इस वृक्ष को अवश्य लगाते रहे हैं। इससे दाँत धोने पर योग बल की प्राप्ति होती है। अत: ऋषियों ने इसे दन्त धावन में प्रथम स्थान दिया है। इसका फल ब्रह्माण्ड की तरह आकृति वाला है। इसे उदुम्बर, जन्तुफल, यज्ञाङ्ग, हेमदुग्धक भी कहते हैं।

३. **निम्ब (नीम)** की दातुन में प्रत्यक्ष औषधीय गुण होते हैं। इसकी पत्तियाँ मच्छरों की नाशक होती हैं। इसे पारिभद्र भी कहते हैं। इसके तिनके से मुंह के भीतर से अन्न कण निकाला जाता है। इसकी कोमल पत्तियों को चैत्र शुक्ल में चबाने से वर्ष पर्यन्त त्वचा रोग नहीं होता है। धार्मिक मान्यता के अनुसार यह देवी माँ का वृक्ष है। वास्तुशास्त्र के अनुसार यह शुभ वृक्ष

है जो रोग के कीटाणुओं का नाशक होता है। इसकी छाँह शीतल और तलगत भूमि शुद्ध होती है। इसकी पत्तियों को पानी में भिगोकर स्नान करने से खुजली आदि रोग दूर होते हैं।

४. **अपामार्ग** (चिड़चिड़ा) की दातुन धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व रखती है। जो व्यक्ति जीवन पर्यन्त अपामार्ग की दातुन से मुंह-दाँत धोता है उसके बत्तीस दाँत हमेशा वज्र की तरह बने रहते हैं। मान्यता तो यहाँ तक है कि अपामार्ग से दाँत धोने वाले के दाँत तीसरी बार भी निकल आते हैं। इसे जड़ से उखाड़ कर धोने का ज्यादा लाभ है। चिड़चिड़ा के दाने भूख नाशक होते हैं। यह 'बुधग्रह' का औषधीय पौधा है। इसकी जड़ में तीर्थ जल का निवास होता है। व्रत में इससे मुंह धोने वालों की संख्या ज्यादा होती है। यह ऊसर और ऊँची भूमिपर निकलता है। इसके दाने कपड़ों में तेजी से चिपकते हैं।

५. **आक** (मदार, अर्कः) सूर्य का पौधा है। यह श्वेतार्क और रक्तार्क होता है; अर्थात् सफेद और लाल रंग के फूल इसमें फूलते हैं। इसमें तेज धारदार दूध निकलता है। इसके पत्ते को गरम करके घाव पर बाँधने से कष्ट दूर होता है। इसका दूध आँख के लिए हानिकारक होता है। इसकी दातुन दाँत और मसूड़े के लिए अपूर्व लाभकारी होती है। ज्यादातर यह ऊसर भूमि पर और कम जल वाली जगह पर होता है। इसका फूल सूर्य देवता और शिवजी को अत्यन्त प्रिय है। इसकी दातुन करने वाला हृदय कष्ट, नेत्र कष्ट, कर्ण रोग, घाव-फोड़ा, सिरो वेदना (माइग्रेन) आदि से सुरक्षित रहता है। यह पार्वती माँ को भी प्रिय है- 'मदारमाला कुलितालकायै'। मदार के फूल का गन्ध उत्कट होता है। इस पर भौंरे मड़राते रहते हैं। प्रायशः मदार से लोग दूर रहते हैं और दातुन करने में भय खाते हैं; जबकि यह औषधीय वनस्पति है।

६. **महुआ** का वृक्ष बहुत मजबूत होता है। इसकी लकड़ी गृहकार्य में प्रयुक्त होती है। इसके फूल में उत्कट सुगंधि होती है। इसके कोचे (स्तबक) में गुच्छ का गुच्छ फूल फ़ल लगता है जिसे लोग प्रीति पूर्वक विविध प्रकार से खाते हैं। इसके फल का तेल निकाला जाता है। इसमें भी दूध का अंश होता है। इसकी दातुन वीर्य-शक्ति-स्नायु-प्रबलता को देती है। यह विशाल वृक्ष होता है और इसे शुभ वृक्ष होने के कारण गृहवाटिका में स्थान भी प्राप्त है।

७. **बिल्व** (बेल); श्रीफल वृक्ष माँ लक्ष्मी का वृक्ष है। यह जबर्दस्त काँटेदार होता है। यह मधुमेह नाशक, श्रीवर्धक और यशोवर्धक होता है। इसकी दातुन ऐश्वर्य देती है। शारीरिक श्री की भी वृद्धि होती है। इसे घर के उत्तरी भाग में लगाया जाता है। कतिपय लोग इसे गमले में भी लगाते हैं। इसका फल ग्रीष्म काल में उत्पन्न होता है और आम के बाद सर्वाधिक खाद्य और पेय ग्रीष्म फल के रूप में यह उपयोग में लाया जाता है।

८. **खैर** (खदिर) मंगल ग्रह का वृक्ष है। यह बहुत मजबूत होता है। इसमें शक्तिवर्धक क्षमता है। यह रक्तशोधक होता है। यज्ञ में वेदी पर यूप के रूप में यह गाड़ा जाता है। इसका काढ़ा भी बनाकर पेय रूप में लिया जाता है।

९. **करंज़** (करौंदा) का पौधा कटीला और झाड़ीदार होता है। इसका स्वाद खटरस होता है। इसकी चटनी आनन्ददायक होती है। इसकी दातुन निरंतर करने पर शरीर में पित्त क्षोभ शाँत होता है। शरीर के भीतर काँटेदार अनपेक्षित मांस की वृद्धि नहीं होती है। यह रक्तशोधक और वर्धक दोनों होता है।

१०. **अर्जुन** का वृक्ष सफेद, ऊँचा, दृढ़ और हृदय के लिए अपूर्व लाभकारी होता है। यह आयुर्वेदीय वृक्षों में महत्त्व रखता है। यह वायुमंडल में शुद्धता बढ़ाता है। इसकी दातुन कठिनता से मिलती है।

११. **आम** का वृक्ष प्रायशः मैदानी भाग में सर्वत्र प्राप्य है। यह प्रियतावर्धक; शुद्ध तत्त्वदायक और अनेक गुणों से युक्त होने के कारण दन्तधावन के लिए जन साधारण से अपनाया गया है। यह गृहवाटिका से लेकर खेत खलिहान तक में पाया जाता है। इसकी दातुन कषाय रस वाली होती है और प्रायशः दाँत से कूँचने पर यह टूटता जाता है। इसका कोमल अग्रभाग (ब्रश) नहीं बन पाता है।

१२. **साल** (सागौन), कदम्ब, कनेर, बेर वृक्षों की दातुन भी मनुष्य शरीर के लिए शुभ होती है। विशेषतः कदम्ब की दातुन के अनेक लाभ होते हैं। अरिष्ट, धन्वन (धामिन), पीलु (गुडफल), इंगुद (इंगुवाक, कंटकी), शिग्रु (शोभाञ्जन), तिन्दुक (तेन्दुआ), पारिभद्रः (फरहट्ट), अम्लिका (तिन्तिडी), मोचका (कदली), ऊर्ध्वशुष्क, असन, सर्ज (शाल), अरिमेद (विट्खदिर), मालती (जाती). प्रभृति वृक्ष दन्तधावन में सुकृत हैं।

दातुन की विशेषता-

(१) दातुन टूथब्रश और टूथपेस्ट का एक साथ काम करती है।

(२) दातुन में जीवंतता होती है जो ब्रश में संभव ही नहीं है।

(३) दातुन में रस संवेद्यता होती है जो निर्जीव ब्रश में असंभव है। यह प्रकृति प्रदत्त उपहार है।

(४) दातुन में पृथक् पृथक् रसौषधीय गुण, वनस्पतीय गुण तथा फल-फूल काल में पृथक् गुण भरे रहते हैं जो केमिकल से बने पेस्ट में संभव ही नहीं है।

(५) दातुन से दाँत-मुंह धोने में कोई कभी अन्यरोग (साइड इफेक्ट) नहीं होते हैं; जबकि पेस्ट से लगातार मुँह धोना दीर्घकाल बाद अनेक समस्या उत्पन्न कर सकता है।

(६) दातुन में मिलावट नहीं की जा सकती।

(७) दातुन स्थानीय उत्पाद होने के कारण स्थानीय रोगों का निवारक होती है।

(८) दातुन कूँचने या चबाने से मुंह का व्यायाम भी होता है।

(९) दातुन प्रतिदिन ताजा और नई ली जाती है। ब्रश प्रतिदिन नहीं बदला जाता है, जिसके कारण संक्रमण (इन्फेक्शन) की संभावना रहती है।

ग्राह्य दातुन वृक्ष-

करञ्जं खादिरं वापि कदम्बं कुरवं तथा।
सप्तपर्णपृश्निपर्णी-जम्बूनिम्बं तथैव च।।
अपामार्गञ्च विल्वञ्चार्कञ्चोदुम्बरमेव च।
एते प्रशस्ता कथिताः दन्तधावनकर्मणि।।

लघुहारीतस्मृतिः ४/६।

करंज, खैर, कदम्ब, कुरव, सप्तपर्ण (छितवन), पृश्निपर्णी, जामुन; नीम, अपामार्ग, बिल्व (बेल), अर्क (मदार), उदुम्बर (गूलर) ये सभी श्रेष्ठ वृक्ष दन्तधावन में ग्राह्य हैं। छितवन, जामुन, कुरव (कनेर) भी दन्तधावन में ग्राह्य है। इनमें से जामुन फलदार होता है और यह भी मधुमेह नाशक और मन्दाग्नि नाशक होता है। छितवन और कनेर से भी शरीर को लाभ मिलता है।

विश्वामित्र स्मृति में वटवृक्ष, वंशवृक्ष (बांस), तितिन्डी (तेंदु), पाकड़ के भी वृक्ष दन्तधावन में प्रशस्त और ग्राह्य माने गये हैं। लोक में बांस से मुंह धोना प्रायशः वर्जित है; क्योंकि यह संतानवृद्धि का प्रतीक है और विवाह में मण्डपच्छादन में संग्रहीत है। शास्त्र में यह दाँतधोने के लिए स्वीकृत है-

खदिरश्च करञ्जश्च कदम्बश्च वटस्तथा।
वेणुश्च तिन्तिडीप्लक्षा वाम्रनिम्बे तथैव च।।
अपामार्गश्च बिल्वश्च अर्कश्चौदुम्बरस्तथा।
एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्मणि।।

विश्वामित्रस्मृतिः, १/६१।।

नरसिंह पुराण में भी खदिर, कदम्ब, करौंदा, वटवृक्ष, अपामार्ग, बिल्व, अर्क (मदार) तथा गूलर वृक्ष दन्तधावन हेतु प्रशस्त माने गये हैं-

खदिरं च कदम्बं च करञ्जं च वटं तथा।
अपामार्गं च बिल्वं च अर्कश्चोदुम्बरस्तथा।।
एतेप्रशस्ताः कथिताः दन्तधावनकर्मणि।।

नरसिंहपुराणम्, ५८/४७।।

देवीभागवतपुराण में लोध्र और चम्पक वृक्ष की दातुन को शुभकारी माना गया है-

करञ्जोदुम्बरौ चूतः कदम्बो लोध्रचम्पकौ।
बदरीति द्रुमाश्चेति प्रोक्ता दन्तप्रधावने।।

देवीभागवतम्, ११/२/३६।।

लोध्र; चम्पक की दातुन शरीर के लिए सुगंधि और औषधीय रस प्रदान करती है।

स्कन्दमहापुराण के प्रभासखण्ड में चौदह वृक्षों की दातुन अतिप्रशस्त और अलग अलग लाभ के लिए गुण सम्पन्न मानी गयी है-

१. महुआ की दातुन करने से - पुत्र लाभ
२. अर्क (मदार) की दातुन करने से - नेत्र आरोग्य लाभ
३. बेर (बदरी) की दातुन करने से - वक्तृता लाभ
४. बृहती (भटकटैया) की दातुन करने से - विजय शक्ति लाभ
५. बेल (श्रीफल, बिल्व) की दातुन करने से - ऐश्वर्य प्राप्ति

६. खदिर (खैर) की दातुन करने से - ऐश्वर्य, वीर्य प्राप्ति
७. कदम्ब की दातुन करने से - रोगनाश, नैरूज्य
८. अतिमुक्तक (कुन्दवृक्ष) की दातुन करने से - धन लाभ
९. आटरूषक (अडूसा) की दातुन करने से - गौरव, गुरुता लाभ
१०. जाती (चमेली) की दातुन करने से - प्रधानता, नेतृत्व प्राप्ति
११. अश्वत्थ (पीपल) की दातुन करने से - यश की प्राप्ति
१२. शिरीष की दातुन करने से - सम्पत्ति लाभ
१३. प्रियंगु की दातुन करने से - दीर्घजीविता, सौभाग्य लाभ
१४. पाकड़ की दातुन करने से - अभीष्ट सिद्धि

दन्तकाष्ठ विधानं तु प्रथमं कथयामि ते।
मधूके पुत्रलाभः स्यादर्के नेत्रसुखं प्रिये।।१७/८।।

वक्तृत्वं वै वदर्या च बृहत्या दुर्जनां जयेत्।
ऐश्वर्यं च भवेद् बिल्वे खदिरे च न संशयः।।१७/९।।

रोगक्षयः कदम्बे तु अर्थलाभोऽतिमुक्तके।
गुरुतां याति सर्वत्र आटरूषकसम्भवैः।।१७/१०।।

जातिप्रधानतां जातावश्वत्थो यच्छते यशः।
श्रियं प्राप्नोति निखिलां शिरीषस्य निषेवणात्।।१७/११।।

प्रियंगु सेवमानस्य सौभाग्यं परमं भवेत्।
अभीप्सितार्थसिद्धिः स्यान्नित्यं प्लक्षनिषेवणात्।।१७/१२।।

महर्षि गर्ग ने श्रेष्ठ दातुन (दन्तकाष्ठ) के वृक्षों का गुण एवं फल इस प्रकार से कहा है-

सर्जे धैर्यं वटे दीप्तिः करञ्जे विजयो रणे।
प्लक्षजे चार्थसम्पत्ति-र्वदर्यां मधुर स्वरः।।

खदिरे चैव सौभाग्यं बिल्वे तु विपुलं धनम्।
औदुम्बरे च वाक्सिद्धिर्बन्धूके च दृढा मतिः।।

रौध्रे च कीर्तिसौभाग्यं पालाशे सिद्धिरुत्तमा।
कदम्बे सकला लक्ष्मीराम्रे आरोग्यमेव च।
अपामार्गे स्मृतिर्मेधा प्रज्ञा वाणीवपुर्धृतिः।।

महर्षि गर्ग के वचनानुसार पलाश की दातुन ग्राह्य है; पर सिद्धि में लगे साधक के लिये; सामान्य दिनों में गृहस्थों के लिए नहीं। गर्ग ने अपामार्ग को सर्वश्रेष्ठ दातुन कहा है। इससे दाँत-मुँह धोने पर स्मृति, मेधा, प्रज्ञा, वाणी, स्वास्थ्य और धैर्य बढ़ता है। पारस्कर के मतानुसार औदुम्बर (गूलर) से दाँत धोने से सभी प्रकार से शुभ होता है। पारस्कर ने गूलर से दाँत धोने का दृढ़ विधान किया है।

मदार (अर्क) से मुख धोने पर रोग तथा बीजपूर से मुख धोने पर व्यथा दूर होती है। ककुभ से आयु बढ़ती है तथा बाल नहीं झड़ता है। दाडिम, सिन्दुवार, कुब्जक, कुटक, जाती तथा करमेद से मुख धोने पर दुःस्वप्नं का नाश होता है।

अर्केण हन्ति रोगांस्तु बीजपूरेण तु व्यथाम्
ककुभेन तथाऽऽयुष्मान् भवेत्पलितवर्जितः।।
दाडिमे सिन्दुवारे कुब्जके कुटके तथा।
जाती च करमेदश्च दुःस्वप्नं चैव नाशयेत्।।

स्मृतिचन्द्रिका।।

कषाय (कसौली), तिक्त (तीती), कटु (कड़वी) रसवाली दातुन मुख, दाँत, मसूड़े, कंठ एवं जिह्वा के लिए अत्यन्त शुभकारिणी होती है- कटुतिक्तकषायाश्च धनारोग्यसुखप्रदा (गरुडपुराण; आचार. २०५/५०)

तिक्तं कषायं कटुकं सुगन्धि कण्टकान्वितम्।
क्षीरिणो वृक्षगुल्माद्वा भक्षयेद्दन्तधावनम्।।

वीरमित्रोदयः।।

हानिकारक दातुन-

जिन वनस्पतियों, वृक्षों, तृणों से मुख और दाँत को क्षति पहुँचती है तथा जिनका रस मनुष्य के शरीर के लिए अशुभ एवं रोगदायक होता है उन सभी वृक्षों की दातुन को शास्त्रों ने चिह्नित कर वर्जित कर दिया है-

अथ पालाशं दन्तधावनं नाद्यात्।
नैव श्लेष्मातकारिष्टबिभीतकधववधबनजम्।
न च बन्धूकनिर्गुण्डीशिग्रुतिल्वतिन्दुकजम्।
न च कोविदारशमीपीलुपिप्पलेङ्गुदगुग्गुलुजम्।
न पारिभद्रकाम्लिकामोचकशाल्मलीशणजम्।

न मधुरम्। नाम्लम्। नोद्ध्र्वशुष्कम्।
न शु शिरम्। न पूतिगन्धि। न पिच्छिलम्।

विष्णुस्मृति, ६१वाँ अध्याय

पलाश, लिसोड़ा, कपास, धव, कुश, काश, कचनार, तेंदू, शमी, रीठा (पीलु), बहेड़ा (बिभीतक) सहिजन (शणजम्), सेमल, शाल्मली से मुंह नहीं धोना चाहिए। शमी के भीतर आग होने से यह घातक होता है। पलाश के सन्दर्भ में लिखा है कि इसकी लकड़ी का प्रयोग आसन की चौकी, शयन हेतु शय्या, रथ, गाड़ी, खड़ाऊँ तथा दन्तधावन में नहीं करना चाहिए-

आसनं शयनं यानं पादुके दन्तधावनम्।
वर्जयेद् भूतिकामस्तु पालाशं नित्यमात्मवान्।।

यमस्मृतिः।।

- कोरी अंगुली से दातुन नहीं करना चाहिए। (अंगुली में मंजन या औषध लगाकर दाँत धोया जा सकता है)।
- तर्जनी अंगुली से किसी भी हालात में दाँत नहीं धोना चाहिए-

दन्तस्य धावनं कुर्यान्न तर्जन्या कदाचन।

पद्मपुराणम्, क्रियायोगसारः, ११/१४

- कोयला, बालु, राख (भस्म), नाखून, ईंट, ढेला और पत्थर से दाँत नहीं धोना चाहिए-

अङ्गारवालुकाभिश्च भस्माङ्गुलिनखैरपि।
इष्टकालोष्टपाषाणैर्न कुर्याद् दन्तधावनम्।।

विश्वामित्रस्मृतिः, १/६०

अत्रि ऋषि के अनुसार बासी मुख व्यक्ति अनुपयुक्त होता है। अतः प्रातः काल उठकर दोनों आँखों को धोकर, मलमूत्र त्याग कर, आर्द्र (सरस) दातुन से दाँत धोना चाहिए-

मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः।
तदाऽऽर्द्रकाष्ठं शुष्कं वा भक्षयेद् दन्तधावनम्।।

उत्थाय नेत्रे प्रक्षाल्य शुचिर्भूत्वा समाहितः।
परिजप्य च मंत्रेण भक्षयेद् दन्तधावनम्।।

दन्तकाष्ठ (दातुन) का स्वरूप-

दन्तकाष्ठ बारह अंगुल लम्बा (न्यूनतम चार अंगुल लम्बा), कनिष्ठा अंगुली के अग्रभाग जितना मोटा होना चाहिए। छिलका उतारकर दातुन का प्रयोग नहीं करना चाहिए- **कनीन्यग्रसमस्थौल्यं सकूर्च्चं द्वादशाङ्गुलम्।**

विष्णुस्मृतिः (६१वाँ अध्याय)

औदुम्बरेण द्वादशाङ्गुलसम्मितेन कनिष्ठिकाग्रवत् स्थूलेन दन्तान् धावयेत्।।

हरिहरभाष्यः।।

दातुन की प्रयोगविधि-

दातुन करने से पहले उसे स्वच्छ जल से धो लेना चाहिए-

प्रक्षाल्य वारिणा चैव मन्त्रेणाप्यभिमन्त्रितम्

नारदपुराणम्, पूर्व, २७/२४

ऐसा न करने से दातुन में लगी गंदगी और सटे कीटाणु मुख में प्रवेश कर जाते हैं। दातुन को केवल अर्धचन्द्राकार नहीं घुमाना चाहिए बल्कि उसे ऊपर-नीचे की ओर भी धीरे-धीरे घुमाना चाहिए। अष्टाङ्गहृदयसूत्र में स्पष्ट दिशा निर्देश है कि मसूड़े को चोट न लगे, दाँत घायल न हों, दो दातों के बीच का भाग चोटिल न हो इस तरह से दातुन को मुंह के भीतर घुमाना चाहिए-

भक्षयेद् दन्तधवनं दन्तमांसान्यबाधयन्।।

अष्टांगहृदयसूत्रम् २/३।।

मसूड़े को बिना बाधा पहुँचाये प्रातःसायं दिन में दो बार मुख धोना चाहिए। कषाय-कटु-तिक्त दन्तकाष्ठ का भक्षण करना चाहिए।

आपोथिताग्रं द्वौ कालौ कषायकटुतिक्तकम्।
भक्षयेद् दन्तपवनं दन्तमांसान्यबाधयन्।।

चरकसूत्रम् ५/७१।।

[टिप्पणी-

चिकित्साविज्ञान की दृष्टि से सुबह सायं दोनों काल दतुअन का प्रयोग करना चाहिए। धर्मशास्त्रों में दन्तमंजन चूर्ण के प्रयोग के संदर्भ में स्पष्ट दिशा निर्देश नहीं है; पर आयुर्वेद में स्पष्ट निर्देश है। सुश्रुत के अनुसार मधु, व्योष, त्रिवर्ग (तीन कटु, तीन फल, तीन मद), तैल, सैन्धव (समुद्री नमक) तथा तेजोवती के चूर्ण से दन्तमंजन करना चाहिए-

क्षौद्र-व्योषत्रिवर्गाक्तं सतैलं सैंधवेन च।
चूर्णेन तेजोवत्याश्च दन्तान्नित्यं विशोधयेत्।।

सुश्रुतचिकित्सा, २४।।

दतुअन के अग्र भाग को दाँत से कूच कर कोमल कूर्चिका बना बनाकर एक-एक दाँत पर दन्तशोधक मंजन या चूर्ण से दन्तमांसों को क्षति पहुँचाये बिना घर्षण करना चाहिए। इससे मुख का दुर्गन्ध, क्लेद, खाँसी तथा कफ निकल जाता है। मुख में निर्मलता, अन्न में रुचि तथा मन में प्रसन्नता होती है-

एकैकं घर्षयेद् दन्तं मृदुना कूर्चकेन च।
दन्तशोधनचूर्णेन दन्तमांस्यान्यबाधयन्।।

सुश्रुतचिकित्सा, २४।।]

दातुन को धो लेने के बाद उसे प्रणाम करते हुए अभिमंत्रित करना चाहिए। इससें वनस्पति के चेतनतत्त्व से मनुष्य के चेतनतत्त्व का सीधा सम्बन्ध बनता है और वह वनस्पति अपने औषधीय तत्त्व को कल्याणकारी बना देती है।

दातुनं लम्बाई का विकल्प-

१६ अंगुल लम्बाई न होने पर १२ अंगुल, १० अंगुल, ९ अंगुल, ८ अंगुल, ७ अंगुल लम्बा दन्तकाष्ठ (दातुन) हो सकता है। महिलायें ४ अंगुल लम्बी दातुन करें- **चतुरङ्गुलमात्रं तु नारीणां ज्ञेयमुत्तमम्।।** गर्गः।।

दन्तधावन में दिशा निर्देश-

पूर्वमुख दाँत धोने से धैर्य, सुख और आरोग्य बढ़ता है। दक्षिण मुख धोने से कष्ट, पश्चिम मुख धोने से पराजय, उत्तर मुख दाँत धोने से गाय, गृह, स्त्री और परिजन को क्षति होती है। ईशान कोण की ओर दाँत धोने से कामना फलीभूत होती है।

प्राङ्मुखस्य धृतिः सौख्यं शरीरारोग्यमेव च।
दक्षिणेन तथा कष्टं पश्चिमेन पराजयः।।
उत्तरेण गवां नाशः स्त्रीणां परिजनस्य च।
पूर्वोत्तरे तु दिग् भागे सर्वान् कामानवाप्नुयात्।।

विष्णुस्मृतिः

दातुन का निषेध-

रविवार के दिन प्रतिपदा, अमावस्या, षष्ठी, नवमी तिथियों में लकड़ी की दातुन से मुँह-दाँत नहीं साफ करना चाहिए। १, ६, ११ तिथि, ९ तिथि, १२ तिथि, ग्रहण में, सूर्यास्त काल में, जन्मतिथि, विवाह तिथि, व्रत-उपवास में लकड़ी की दातुन का प्रयोग वर्जित है। लता एवं पुष्प की दातुन से धोया जा सकता है।

प्रतिपद् दर्श षष्ठीषु नवम्यां रविवासरे।
दन्तानां काष्ठसंयोगो दहत्यासप्तमं कुलम्।।

व्यासः।।

नन्दासु च नवम्यां च दन्तकाष्ठं विवर्जयेत्।।

कात्यायनः।।

यदि गलतालु, ओष्ठजिह्वा, मुखपाट, श्वासकास, हिचकी, उल्टी, अजीर्ण, मूर्छा, मद, कर्णरोग, दन्तरोग हो तो भी दन्तधावन नहीं करना चाहिए।

न खादेद् गलताल्वोष्ठजिह्वारोगसमुद्भवे।
अथास्यपाके श्वासे च कासहिक्कावमीषु च।।
दुर्बलोऽजीर्णभक्तश्च मूर्च्छाऽऽर्त्तो मदपीडितः।
शिरोरुगार्त्तस्तृषितः श्रान्तः पाकक्लमान्वितः।।
अर्दिती कर्णशूली च दन्तरोगी च मानवः।।

सुश्रुतचिकित्सा, २५।।

निषेध काल में दन्तधावन-

तृणपर्णैर्मध्यमाऽनामिकाऽङ्गुष्ठैर्निषिद्धाऽह्नि कुर्युः इति स्मृत्यर्थसारः।

ऊपर लिखित अवसरों पर घास-पत्ते, मध्यमा अंगुली, अनामिका-अङ्गुष्ठ अंगुली से (निषिद्ध काल में) दाँत धोने को कहा गया है।

दातुन करने से पूर्व प्रार्थना-

अन्नाद्याय व्यूहध्व ँ सोमो राजाऽयमागमत्।
स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन च।।

(वैदिक मंत्र)

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशून् वसूनि च।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते!

मुखदुर्गन्धिनाशाय दन्तानां च विशुद्धये।
ष्ठीवनाय च गात्राणां कुर्वेऽहं दन्तधावनम्।।

हे दन्तकाष्ठ! आपके प्रयोग से मेरा यश और भग (ऐश्वर्य) बढ़े।

हे वनस्पति! मुझे आपके द्वारा मुख धोने से आयु; बल, यश, वर्चस्व, संतान, पशु, धन, ब्रह्म ज्ञान, प्रज्ञा, मेधा की प्राप्ति हो।

हे वनस्पति! मुख दुर्गन्धि के नाश के लिए, दाँत की शुद्धि और चमक के लिए, शरीर की शुद्धि के लिए मैं दन्तधावन कर रहा हूँ।

जिह्वा (जीभ) की सफाई-

दातुन द्वारा दाँतों को धोने के बाद उसे दो भाग में फाड़ देते हैं। कूर्च (कूर्चिका) को आधे से पकड़ कर दाँतों से दबा कर दातुन को बीच से फाड़ा जाता है। गांठ वाली दातुन गांठ पर से टूट जाती है। अतः प्रयास करके सीधी तथा बिना गांठ वाली लम्बी दातुन ली जाती है। विशेषरूप से आम की दातुन जल्दी टूटती है। दातुन को मध्य से फाड़ने के बाद उसके आधे छिलके से जीभ के भीतरी मूलभाग से रगड़कर उसकी गंदगी दूर करते हैं फिर दूसरे अर्धभाग से दुबारा जीभ को रगड़कर साफ करते हैं-

दन्तधावनमुद्दिष्टं जिह्वोल्लेखनिका तथा।

शास्त्रों में सफाई की इन सभी सूक्ष्म पद्धतियों पर गहराई से विचार किया गया है। दातुन के अर्धभाग (छिलके) को दक्षिण दिशा की ओर शुचिभाग (पवित्र स्थान) में फेंकना चाहिए। जहाँ मूत्र-मल का विसर्जन करते हैं वहाँ से दूर दातुन का प्रयुक्त अवशेष फेंका जाता है-

पश्चात् प्रक्षाल्य तत्काष्ठं शुचौ देशे विनिक्षिपेत्।।

स्कन्दपुराणम्, प्रभासखण्ड, १७/१७

दातुन के इस नरम अवशेष को कई बार पशु चबाते हैं। अतः इसे ऐसी जगह पर फेंके जहाँ पर यह पड़ा पड़ा सूख जाय और बाद में आग लगा कर इसे जलाया जा सके। जिह्वा को रसना भी कहते हैं। यह रस के स्वाद को मस्तिष्क तक पहुँचाती है। अतः इसकी भी प्रतिदिवसीय सफाई दाँतों की ही भाँति आवश्यक होती है; अन्यथा जीभ बहुत बुद्धिमति होती है। यह अपनी गंदगी दाँतों से रगड़कर दूर कर लेती है। इस कारण मुख धोने के बाद भी जिह्वा की गंदगी दाँतों में लगी रह जाती है। अतः जिह्वा प्रक्षालन प्रतिदिन का आवश्यक कृत्य है। आजकल प्लास्टिक, लोहे, स्टील तथा ताम्बे

की जीभ छिलनी प्रचलित है। इनमें ताम्बे की जीभछिलनी तो गुणकारी है पर प्लास्टिक और लोहे के प्रयोग से बचना चाहिए। मुंह के भीतर लोहा, प्लास्टिक का प्रयोग कहीं से भी अच्छा नहीं माना गया है। दातुन अभाव के कारण आजकल दीर्घकाल में हानिकारक तत्त्वों का प्रयोग मनुष्य करने लगा है। प्रयास पूर्वक इन विसंगतियों से बचना चाहिए अथवा श्रेष्ठतम विकल्प को अपनाना चाहिए। मुख का अर्थ होता है 'श्रेष्ठ', 'प्रधान'। श्रेष्ठ की सफाई का साधन भी श्रेष्ठ ही होना चाहिएं। प्राचीन काल में 'जिह्वानिर्लेखनी' दस अंगुल की चाँदी, स्वर्ण या दतुअन की ही होती थी।

जिह्वानिर्लेखनं रौप्यं सौवर्णं वार्क्षमेव च।
तन्मलापहरं शस्तं मृदुश्लक्ष्णं दशाङ्गुलम्।।

सुश्रुतचिकित्सा, २४।।

दातुन के पश्चात् कुल्ला-

दातुन करने के बाद बारह बार कुल्ला 'गण्डूष) करना चाहिए और ॐ का स्मरण कर गायत्री मंत्र पढ़ते हुए शिखा बन्धन करना चाहिए-

पश्चाद् द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद् दन्तधावनम्।
स्मृत्वोङ्कारं च गायत्रीं निबध्नीयात् शिखां ततः।।

शौनक ऋषिः।।

अञ्जन कर्म-

आँखों में अंजन लगाने से नेत्रदाह, कंडू, नेत्रमल दूर होता है। महर्षि सुश्रुत ने सिन्धप्रान्तोद्भव 'स्रोतांजन' को श्रेष्ठ कहा है। इससे दृष्टि क्लेश दूर होता है। आँखों में तेज आता है और आँखें मारुतातप (हवा-गर्मी) सहने में सक्षम होती हैं। आँखों में अंजन और आश्च्योतन (रस बूँद) कर्म करना प्रचलित विधि है। भोजन के बाद, छर्दन के बाद, रात्रि जागरण के बाद, ज्वर पीड़ित होने पर अंजन, आश्च्योतन नहीं किया जाता है।

सुखं लघु निरीक्षेत दृढं पश्यति चक्षुषा।
मतं स्रोतोऽञ्जनं श्रेष्ठं विशुद्धं सिन्धुसंभवम्।।

दाहकण्डूमलघ्नं च दृष्टिक्लेदरुजापहम्।
तेजोरूपावलं चैव सहते मारुतातपौ।।

सुश्रुतचिकित्सा २४

नस्य कर्म-

नासिका छिद्र में सरसों का तेल कनिष्ठा से स्नेहलिप्त (बोर कर) लगाना चाहिए। इसे छिरकना नहीं चाहिए। नस्य कर्म सुबह-सायं किया जाता है। इसी तरह से कानों में भी तेल डाला जाता है। इससे नाक, कान के रोग नहीं होते हैं। अणु तैल का नस्य अत्यन्त स्वास्थ्यकारक होता है।

नस्यः स्नेहाऽङ्गुलिं दद्यात्प्रातर्निशि च सर्वदा।
न चोच्छिङ्घेदरोगाणां प्रतिमर्शः स दार्ढ्यकृत्।।

चरकसिद्धान्तः, ९/११६-११७।।

धूम्रपान-

स्मृतियों में धूम्रपान के सन्दर्भ में कोई चर्चा नहीं मिलती है; पर आयुर्वेद में इसे लाभकारी कहा गया है। एलायची, जटामासी, गुगुल, अगुरु, प्रियंगु, हरेणुका आदि पदार्थों से बनाया धूम्र पीने को कहा गया है-

हरेणुकां प्रियंगु च पृथ्वीकां केशरं नखम्।
ह्रीवेरं चन्दनं पत्रं त्वगेलोशीरपद्मकम्।।
ध्यामकं मधुकं मांसी गुग्गुल्वगुरुशर्करम्।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षलोध्रत्वचः शुभा।।

चरकसूत्रम्, ५/२७-३२।।

इससे अनेक रोग ठीक होते हैं- जैसे, शिरःशूल, सिर का भारीपन, कर्णशूल, अक्षिशूल, श्वास-कास-हिक्का, गलग्रह, दन्तदौर्बल्य, मुखदौर्गन्ध्य, कृमि, केशपतन, छींक, तन्द्रा, बुद्धिमोह तथा अतिनिद्रा आदि।

आजकल श्रेष्ठ वनस्पतियों, फलों, काष्ठों आदि से धूम्रवर्ती बनाकर धूम्रपान नहीं किया जा रहा है; बल्कि मादक पदार्थों, खतरनाक विषों और विषाक्त जानवरों के मेद-मांस-विषों, हानिकारक तत्त्वों से धूम्र वर्तिकायें बनायी जा रही हैं। अब हुक्का कोई नहीं पीता है। शराब, चरस, अफीम, गाँजा, ड्रग्स इन दिनों प्रचलन में हैं जो जीवन विध्वंसक तत्त्व है। इनसे सावधान रहना चाहिए। आयुर्वेद के धूम्र से इनकी तुलना नहीं की जा सकती है।

उपसंहार-

दाँत धोने, जिह्वा साफ करने तथा गरारा करने की प्रथा प्राचीन भारत में करोड़ों वर्षों से चली आ रही है। स्थानीय स्तर पर श्रेष्ठतम वनस्पतियों तथा वृक्षों से दाँत धोने से अनेक रोगों से बचाव होता है। मुख की शुद्धता बनी रहती है। दाँत धोते समय स्थिर रह कर धीमी गति से हस्तसंचालन करना चाहिए। घूमते हुए, बातचीत करते हुए दाँत, मुँह नहीं धोना चाहिए। जिस प्रकार से प्रातः सायं स्नान विहित है उसी तरह से दोनों समय मुँह-दाँत धोना शुभ माना गया है। दातुन के प्रयोग से मुख का कैंसर एवं अन्य भयानक रोग नहीं होते हैं। अतः सावधान मन होकर प्रातःकृत्य के अंगभूत दन्तधावन को करते रहना चाहिए। अपामार्ग, गूलर, नीम, मौलसिरी (वज्रदन्ती) तथा बबूल आदि को प्रयास पूर्वक ढूँढ़कर प्राप्त करना चाहिए। व्रत के दिनों में तो ब्रश की सबसे भारी अवैज्ञानिकता यही है कि उसका कूर्च (ब्रश) बासी, जूठा और बहुत दिनों तक प्रयोग में लाये जाने के कारण अशुद्ध और अग्राह्य होता है। ब्रश हमेशा जूठा रहता है। मुंह में से निकाला हुआ कौर (ग्रास, निवाला) जिस तरह से अग्राह्य होता है उसी तरह से ब्रश भी जूठा होता है। ब्रश को प्रतिदिन रगड़ कर साफ करना और उसको ढक कर सुरक्षित रखना भी रोजमर्रा में संभव नहीं है। भारतीय अवधारणा (कान्सेप्ट) के अनुसार ब्रश जूठा साधन है। व्रत में जूठे का प्रयोग वर्जित होता है। व्रत में शरीर और संसाधन दोनों की संशुद्धि अपेक्षित होती है। ब्रश से दाँत साफ करना ही नहीं चाहिए; अन्यथा व्रतभंग का दोष लगेगा। ब्रश से दाँतों की सफाई और स्वच्छता मिलती है; पर पवित्रता नहीं। एक ही जड़, जूठी वस्तु से महीनों; वर्षों तक मुंह धोना हितकर कैसे हो सकता है? बाहरी शुद्धता और भीतरी पवित्रता दोनों का ध्यान रखना आवश्यक होता है। यह हिन्दू जीवन पद्धति का अभिन्न अङ्ग है।

●

अशुद्धि से बचने के लिए, तीर्थ प्रदेश में जाने के बाद तथा प्रायश्चित्त करने में बालों का मुण्डन कराना आवश्यक होता है।

मनुष्य द्वारा किया हुआ पाप उसके केशों में निवास करता है। अतः पाप मुक्ति के लिए मुण्डन कराना चाहिए अथवा दो अंगुल तक बाल कटवा कर छोटा करा देना चाहिए-

यत्किञ्चित् क्रियते पापं सर्वं केशेषु तिष्ठति।
सर्वान् केशान् समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलिद्वयम्।।
पराशरस्मृतिः, ९/५३।।

यदि कोई किसी संस्कार या प्रायश्चित्त में केश नहीं कटवाना चाहे तो उसे द्विगुणित गोव्रत और दान करना चाहिए-

केशानां रक्षणाय द्विगुणं गोव्रतं चरेत्।
द्विगुणे व्रत आदिष्टे दक्षिणा द्विगुणा भवेत्।।
पराशरस्मृतिः, ९/५०।।

जो न प्रायश्चित्त करता है, न दक्षिणा (दान) देता है, न केशों (बालों) का कर्त्तन करवाता है उसका पाप उसके सिर पर हमेशा चढ़ा रहता है। उसे प्रायश्चित्त बताने वाला भी दोषी होता है-

यस्य न द्विगुणं दानं केशश्च परिरक्षितः।
तत्पापं तस्य तिष्ठेत वक्ता च नरकं व्रजेत्।।
पराशरस्मृतिः, ९/५२।।

अध्याय-३

तैलाभ्यङ्ग (उबटन, मालिश)

स्नान करने से पूर्व और मुख धोने के बाद हिन्दू जीवन पद्धति में तैलाभ्यङ्ग; उबटन, मालिश या स्नेहन की व्यवस्था बतलायी गयी है। यह व्यवस्था बाल्यकाल से ही चलने लगती है। जन्म लेने के बाद शिशु को सरसों तेल, जैतून तेल या अन्य निर्दिष्ट आयुर्वेदीय तेल से मालिश की जाती है। यह अभ्यङ्ग एक दिन में दो-दो, तीन-तीन बार तक किया जाता है। यह अभ्यङ्ग गर्भ में पड़े-पड़े मुड़े अंगों को एक ओर सीधा करता है तो दूसरी ओर ताकत प्रदान करता है। जब व्यक्ति शिशुत्व को पार कर जाता है तब भी भारतवर्ष में मातायें अपने बच्चों को रात में सोते समय मालिश कर देती हैं। इससे दिन भर की दौड़-धूप, खेलकूद, अतिशय श्रम से उत्पन्न थकान दूर हो जाती है और अंगों में प्रबलता भी आती हैं। पश्चिमी जगत् में शराब (वाइन, बोदका) से मालिश करने की प्रथा है। भारत में ज्यादातर शुद्ध सरसों तेल से मालिश की जाती है। कुछ लोगों को भ्रम होता है कि सरसों तेल से मालिश करने पर शरीर में कालापन बढ़ता है जबकि ऐसा कुछ नहीं है। शरीर का रंग माता-पिता के रंग, भौगोलिक-प्राकृतिक परिस्थिति और अपनी कुण्डलीजन्य परिस्थिति से सुनिश्चित होता है। सभी को महंगा जैतून तेल उपलब्ध हो यह संभव नहीं है। हमारे देश में मालिश प्रतिदिन करने की जहाँ प्रथा है वहीं एक सप्ताह में एक बार उबटन लगाने की भी प्रथा है। मालिश जनित तेल से यदि किसी को थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ता भी हो तो उस कुप्रभाव को उबटन दूर कर देता है। सरसों को सिल पर पिस कर उसमें तेल डालकर उबटन बनाया जाता है। इससे शरीर के रंग में निखार आता है। उबटन में अन्य कई एक ओषधियाँ भी पड़ती हैं। इस तरह से भारतवर्ष में व्यायाम और शारीरिक सफाई से पूर्व अभ्यङ्ग की व्यवस्था प्राचीन-काल से चली आ रही है।

तैलाभ्यङ्ग के गुण-

वैद्यराज वाग्भट्ट ने तैलाभ्यङ्ग में निम्नलिखित गुणों को सिन्निहित माना है- १. जराहर, २. श्रमहर, ३. वायुहर, ४. दृष्टिप्रसादकर, ५. आयुपुष्टिकर, ६. निद्राजनन, ७. त्वच्य, ८. दार्ढ्यकर। सिर, कान और पैरों में तैलाभ्यङ्ग अवश्य करना चाहिए-

अथ जातान्नपानेच्छो मारुतघ्नैः सुगन्धिभिः।
यथर्तुसंस्पर्श सुखैस्तैलैरभ्यङ्गमाचरेत्।।

अ.सं. सूत्रम् ३।।

एक अवस्था के बाद जब शिशु किशोर या नौजवान हो जाता है तब उसे अपने स्वास्थ्य और शरीर का ध्यान स्वयं ही रखना पड़ता है। यदि प्रतिदिवसीय अभ्यङ्ग और व्यायाम न संभव हो तो सप्ताह में या एक पक्ष में एक बार अवश्य कर लेना चाहिए। सरसों के तेल से शरीर के जोड़ों में ताकत बढ़ती है। अत: मालिश करना कसरत का पूर्ववर्ती अङ्ग होता है। पं. मदन मोहन मालवीय जी अपने विश्वविद्यालय के छात्रों से कहा करते थे- **दूध पियो कसरत करो नित्य जपो हरि नाम।** अर्थात् छात्रों को प्रतिदिन दूध अवश्य पीना चाहिए। **'सद्यः शक्तिकरः पयः'** के अनुसार दूध में शक्तिवर्धन की अपूर्व क्षमता होती है। व्यायाम (कसरत) करने से हड्डियों, नसों में मजबूती आती है, भीतरी ताकत में वृद्धि होती है। भार ढ़ोने, दबाव झेलने, धूप-शीत बर्दास्त करने की अनोखी क्षमता बढ़ती है। ब्रह्मचर्य अवस्था में कसरत और मालिश करके शरीर के भीतर जिस शक्ति का संचय किया जाता है वह मृत्यु पूर्व तक काम करती है। अतिशय व्यायाम की वर्जना भी सर्वत्र है। जितने व्यायाम से शरीर को सबलता मिले, थकान न हो उतना ही करना चाहिए। बीमारी और थकान की अवस्था में, अन्य श्रम कर लेने के बाद इसकी आवश्यकता नहीं पड़ती है। श्री मालवीय जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में एक ओर जहाँ पारम्परिक अखाड़ों को बनवाया वहीं दूसरी ओर शिवाजी हाल के माध्यम से आधुनिक व्यायाम के संसाधनों और पद्धतियों को भी उपलब्ध कराया। आज पारम्परिक अखाड़े खत्म हो रहे हैं। मिट्टी में लोटने की प्रथा समाप्त हो रही है। यह शरीर पार्थिव है। अत: पृथ्वी से इसका सम्बन्ध बना रहना चाहिए। ब्रह्मचर्य और व्यायाम शारीरिक शक्ति और दैवी ऊर्जा के लिए आवश्यक कृत्य हैं। इन दोनों के बिना व्यक्ति जीवन में प्रबलता नहीं प्राप्त कर पाता। शारीरिक व्यायाम का पूर्ववर्ती कृत्य है अभ्यङ्ग। बिना तेल लगाये, मालिश किये यदि प्रतिदिन व्यायाम किया जाए तो त्वचा में शुष्कता आती है। रोमकूप विदीर्ण होते हैं। इसीलिए आयुर्वेद में स्नेह (तेल) को जीवन के लिए उपादेय माना गया है। चरक संहिता में तैलाभ्यङ्ग के गुणों का वर्णन करते हुए बतलाया गया है-

स्नेहाभ्यङ्गाद्यथा कुम्भश्चर्म स्नेहविमर्दनात्।
भवत्युपाङ्गदक्षश्च दृढः क्लेश सहो यथा।।
तथा शरीरमभ्यङ्गाद् दृढं सुत्वक् च जायते।
प्रशान्तमारुताबाधं क्लेशव्यायामसंसहम्।।

चरकसूत्र ५/८५-८६

तैलाभ्यङ्ग से घड़ा चिकना हो जाता है। जिस घड़े में तेल भर कर रखा जाता है वह चिकना तथा संतृप्त हो जाता है। तैलाभ्यङ्ग या तैलमर्दन से चमड़ा चिकना हो जाता है। तेल डालने से धूरी, पहिया, घूर्णन यंत्र आदि मजबूत और भार सहने वाले हो जाते हैं। तैलाभ्यङ्ग से मनुष्य की हड्डियां मजबूत और त्वचा चमकीली, सुन्दर हो जाती है। वातज रोगों से बचाव होता है तथा शरीर श्रम सहने में सक्षम हो जाता है।

त्वचा में वायु और धूप-शीत का प्रकोप शीघ्र होता है। धूप-शीत का निदान शीघ्र होता है; पर वायु विकार विलम्ब से दूर होता है। अभ्यङ्ग से वायु विकार दूर हो कर त्वचा में प्रबलता आती है। प्रतिदिन तैलाभ्यङ्ग करने वाला व्यक्ति कोमल स्पर्श और परिपुष्ट अङ्ग हो जाता है। तैलाभ्यङ्ग से जरावस्था के चिन्ह शीघ्र नहीं आते। यदि आते भी हैं तो स्वल्प ही-

स्पर्शनेऽभ्यधिको वायुः स्पर्शनं च त्वगाश्रितः।
त्वच्यश्च परमभ्यङ्गस्तस्मात्तं शीलयेन्नरः।।

तेल लगाने और मालिश करने के बाद शरीर गर्म हो जाता है। जब तक शरीर सामान्य न हो जाए तब तक विश्राम करना चाहिए; तत्पश्चात् स्नान करना चाहिए। कुछ लोग स्नान करके व्यायाम और योगाभ्यास करते हैं। इससे क्रमबद्ध जीवन पद्धति में व्यतिक्रम होता है और स्नान के बाद सीधे पूजन का क्रम नहीं बन पाता है। इससे आत्मा की प्रबलता को क्षति पहुँचती है। यह आवश्यक है कि अभ्यङ्ग और व्यायाम से शरीर को मजबूत किया जाय तो यह भी अति आवश्यक है कि पूजन-हवन-तप से आत्मा को दीप्त किया जाय। भारतीय जीवन पद्धति शरीर को सबल बनाने का उपदेश देती है तो आत्मा को दीप्त और तेजस्वी बनाने का उपाय बतलाती है। सबल शरीर और दृढ़ मन के माध्यम से आत्मा के तेज को जगाया जा सकता है- **नाऽयं आत्मा बलहीनेन लभ्यः।** यह आत्मा बलहीनों द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती।

अत: शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक तीनों प्रकार के बल की प्राप्ति के लिए अभ्यंग और व्यायाम आवश्यक कृत्य हैं।

- तैल, अभ्यङ्ग, मालिश सोमवार, बुधवार, शनिवार को करना चाहिए।
- प्रतिदिन तेल, उबटन मालिश कराने वाले को वार का दोष नहीं लगता है।
- रविवार, मंगलवार को तेल, उबटन लगाने से शरीर को कष्ट होता है।
- गुरुवार को तेल-उबटन से धनहानि एवं शुक्रवार को समृद्धि शिथिल होती है।

नारदपुराण पूर्व ५६/१५७-१५८, नारदसंहिता, ५/९-१०।

- प्रतिपदा, षष्ठी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्या की तिथियों में तेल उबटन नहीं लगाना चाहिए।

अग्निपुराण १५५/३१, विष्णुपुराण ३/११/११८

- पद्मपुराण में कहा गया है कि षष्ठी और अष्टमी तिथि में तेल और मांस में पाप बसता है। अतः इन तिथियों में तेल, मांस का प्रयोग वर्जित है। चतुर्दशी और अमावास्या के दिन दाढी, बाल नहीं कटवाना चाहिए, न तो स्त्री संगम करना चाहिए-

षष्ठ्यष्टम्योर्विशेत्पापं तैले मांसे सदैव हि।
चतुर्दश्यां तथाऽमायां त्यजेत क्षुरमङ्गनाम्।।

पाताल. ९/५३।।

- द्वितीया, दशमी और त्रयोदशी तिथियों में उबटन नहीं लगाना चाहिए- **नाभ्यञ्जनं विश्वदशद्विके तिथौ-** मुहूर्तचिन्तामणिः १/७।।
- सप्तमी, नवमी, अमावास्या को आंवला का लेप सिर तथा शरीर पर नहीं करना चाहिए- **धात्रीफलैः स्नानममाद्रिगोष्वसत्।** मु.चि. १/७।
- आँवला लेप और आँवला के जल से स्नान करने से आँखों की रोशनी अत्युत्तम बनी रहती है। संतान और धन की स्थिति उत्तम रहती है।
- रविवार को पुष्प, मंगलवार को मिट्टी, गुरुवार को दूर्वा और शुक्रवार को गोबर तेल में डालकर लगाने से वार दोष नहीं लगता है-

रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वा भौमवारे च मृत्तिकाम्।
भार्गवे गोमयं क्षिप्त्वा तैलस्नानं सुखावहम्।। धर्मसिन्धुः।।

- सरसों तेल को भारतवर्ष में अत्यन्त महत्त्व प्राप्त है- **अथवा सार्षपं तैलं न दुष्येद् ग्रहणं विना।** शिवपुराण, सृष्टि १३/१२। सरसों का तेल केवल ग्रहण में ही दूषित होता है।
- सिर पर लगाये हुए तेल को शरीर में नहीं लगाना चाहिए। वस्तुतः इस तेल में बालों की गंदगी, सिर का सूक्ष्म तत्त्व (रुसी, मृत त्वचा) मिल जाता है जिसे शरीर में लगाने से हानि होती है- **शिरोऽभ्यङ्गावशिष्टेन तैलेनाङ्गं न लेपयेत्।।** कूर्मपुराण, पद्मपुराण, नारदपुराण।।
- मुण्डन कराने में सोमवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार ग्राह्य है- **ज्ञेन्दुशुक्रेज्यकानाम्।।** मु.चि. ५/२९।। लोक में सोम, गुरु, शनि के दिन बाल कटवाना वर्जित है।

शरीर परिमार्जन

शरीर को ठीक रखने के लिए स्वल्प परिमार्जन प्रतिदिन करना चाहिए। इससे वात रोग शाँत होता है। मोटापे से बचाव होता है। स्थिरता बनी रहती है। उबटन से, मालिश से तथा फेनिल (साबुन, रीठा, आँवला, मेंहदी) आदि से शरीर को स्वच्छ रखना चाहिए। इनसे शरीर में प्रसन्नता, शुद्धता, हल्कापन

बना रहता है तथा दुर्गन्धि दूर होती है-

दौर्गन्ध्यं गौरवं तन्द्रां कण्डूमलमरोचकम्।
स्वेदं वीभत्सतां हन्ति शरीरपरिमार्जनम्।।

चरकसूत्र ५/९३।।

इन सभी कार्यों में बहुत समय नहीं लगाना चाहिए। परन्तु स्वल्प काल में यदि प्रतिदिन इन कार्यों को किया जाये तो शारीरिक प्रबलता, स्वास्थ्य और प्रसन्नता बनी रहती है।

शिरोऽभ्यङ्ग

प्रतिदिन सिर पर तेल लगाने से शिरःशूल, खालित्य, पालित्य, खल्वाटता, आदि दोष नहीं होते हैं। सिर की हड्डियाँ मजबूत रहती हैं। इन्द्रियाँ प्रसन्न रहती हैं। नींद अच्छी आती है। त्वचा चमकीली, कोमल हो जाती है।

केश प्रसाधन

केश्या (कंघी) प्रतिदिन बालों में करनी चाहिए। इससे धूल, रूसी, ढील, गन्दगी दूर होती है।

कर्णाऽभ्यङ्ग

कान में तेल डालने से कान का रोग, ऊँचा सुनाई देना आदि रोग नहीं होता है-

न कर्णरोगा वातोत्था न मन्याहनु संग्रहः।
नोच्चैः श्रुतिर्न बाधिर्यं स्यान्नित्यं कर्णतर्पणात्।।

चरकसूत्र ५/८४

पादाऽभ्यङ्ग

पैरों में तेल, उबटन लगाने से- शुष्कता, स्तब्धता, रुक्षता, शून्यता, थकावट दूर होती है। साथ ही सुकुमारता, बल, स्थिरता, दृष्टि में प्रियता आती है एवं वातरोग से बचाव होता है। गठिया और गृध्रसी (स्यायटिका) जैसे रोग नहीं होते हैं।

आयुर्वेद के अनुसार अभ्यङ्ग करने वाले को अभिघात से क्षति नहीं होती है। बलकर्म (शारीरिक परिश्रम) अधिक करने पर भी शरीर में विकार नहीं उत्पन्न होता है। त्वचा में सुस्पर्श, चमक तथा सौन्दर्य बना रहता है। प्रतिदिन अभ्यङ्ग करने वाले व्यक्ति को बुढ़ापे के लक्षण स्वल्प होते हैं या नहीं होते हैं। अतः प्रतिदिन अभ्यङ्ग करना चाहिए-

न चाभिघाताभिहतं गात्रमभ्यङ्गसेविनः।
विकारं भजतेऽत्यर्थं बलकर्मणि वा क्वचित्।।
सुस्पर्शोपचिताङ्गश्च बलवान् प्रियदर्शनः।
भवत्यभ्यङ्गनित्यत्वात् नरोऽल्पजर एव च।।

चरकसूत्र ५/८७-८९।।

क्षौर (हजामत) कर्म

- **व्यर्कारशन्यंशकवारलग्ने**- रविवार, मंगलवार, शनि को क्षौर नहीं करना चाहिए। वसिष्ठ।।
- रविवार को क्षौर से १ मास, शनिवार को ७ मास तथा मंगलवार को ८ मास की आयु घट जाती है। बुध, सोम, गुरु, शुक्रवार में क्षौर से आयु बढ़ती है। यह वसिष्ठ मत है।
- शनि, मंगल, रविवार को दाढ़ी, बाल, नाखून नहीं कटवाना चाहिए। संध्या और रात में भी नहीं कटवाना चाहिए- रिक्ता (४/९/१४) तिथि में नहीं कटवाना चाहिए- **संध्यानिशाशनिकुजार्कदिने च रिक्ते।**
- शनि, रवि, सोम को क्षुरा नहीं लगवाना चाहिए- **तिलमात्रे क्षुरे सदा।** वसिष्ठः।
- रोहिणी; मघा, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, अनुराधा इन पाँच नक्षत्रों में बाल कटवाने से दीर्घकाल में धीरे-धीरे आयु क्षरित हो जाती है।
- वसिष्ठ के अनुसार पाँच-पाँच दिन पर क्षौर कर्म कराना चाहिए। राज्यकर्मचारी, नट, रूपजीवी (सिने कलाकार) को क्षौर कर्म का प्रतिबन्ध नहीं है-

राजकार्यनियुक्तानां नटानां रूपजीविनाम्।
श्मश्रुरोमनखक्षेदे नास्ति कालविशोधनम्।।

मुहूर्त्तगणपतिः।।

इस प्रकार से भारतीय जीवन पद्धति में तेल, उबटन लगाने में तथा मालिश कराने में भी शुभ मुहूर्त्त एवं शुभ वार का विचार किया गया है। व्यायाम को स्वास्थ्य का अंग मानकर उसे प्रतिदिवसीय कृत्य में सम्मिलित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में जहाँ धर्म का जीवन में प्रतिपल, प्रतिपग सन्निवेश किया गया, वहीं पर शारीरिक एवं मानसिक प्रबलता के भी अनेक उपाय निर्देशित किये गये हैं। शरीर और मन के पुष्ट होने पर ही सम्यक् उन्नति होती है। यही हिन्दू जीवन पद्धति है।

●

प्रातरुत्थाय यो विप्रः प्रातः स्नायी भवेत्सदा।
सप्तजन्मकृतं पापं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति।।
उषस्युषसि यत्स्नानं संध्यायामुदिते रवौ।
प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम्।।

दक्षस्मृतिः २/१०-११।।

उषः काल में जाग कर जो ब्रह्मवेत्ता हमेशा स्नान करता है उसके सप्तजन्म के पाप मात्र तीन वर्षों में दूर हो जाते हैं। जो व्यक्ति हरेक उषः काल में तथा सूर्यास्त से पूर्व स्नान करता है वह प्राजापत्य व्रत के तुल्य फल को प्राप्त करता है तथा उसके महापातक दोषों का नाश हो जाता है।

(सूर्योदय से पूर्व स्नान कर लेना अपने आप में एक भारी तपस्या है। इसे दृढ़तापूर्वक जीवन में अपनाना चाहिए। इससे व्यक्ति पवित्रात्मा और जितेन्द्रिय बन जाता है। आलस्य छोड़ कर उषः स्नान करना चाहिए।)

अध्याय-४

स्नान

स्नान परिभाषा-

जल से शरीर को प्रक्षालित करना अथवा धोना स्नान कहलाता है। स्नान में सिर से पैर तक धोना आवश्यक होता है। शरीर का कोई भी अङ्ग यदि जल से स्पर्श न हो तो स्नान अधूरा माना जाता है। शौच, दन्तधावन, अभ्यङ्ग आदि के बाद स्नान होता है। स्नान के बाद पूजन कर्म होता है।

प्रातः कालिक स्नान में मंत्रों का बहुत विस्तार नहीं करना चाहिए। बहुत देर तक स्नान करने से पूजन, जप, हवन का समय कम हो जाता है। अतः प्रातः कालिक स्नान थोड़ी देर में ही सम्पन्न कर लेना चाहिए-

अल्पत्वाद् होमकालस्य बहुत्वात्स्नानकर्मणः।
प्रातर्न तनुयात् स्नानं होमलोपो विगर्हितः।।

कात्यायनस्मृतिः, १२/६।।

विष्णुपुराण में लिखा है कि जागने में, सोने में, स्नान करने में, बैठने में, शय्या पर लेटे रहने में, अधिक समय न लगायें। न तो व्यायाम में ही अधिक समय दें-

अतीव जागरस्वप्ने तद्वत् स्नानासने बुधः।
न सेवेत तथा शय्यां व्यायामं च नरेश्वर।।

३/१२/१७।।

ज्यादा जागने से आलस्य, कमजोरी, ज्यादा सोने से दीर्घसूत्रता, रोग, बुद्धि दौर्बल्य, ज्यादा देर तक स्नान करने से पूजन-हवन कर्म में बाधा, ज्यादा देर तक बैठने से रीढ़ की हड्डी में कष्ट तथा बहुत देर तक व्यायाम करने से शारीरिक क्षय और सन्धियों में दीर्घ काल बाद दर्द होने लगता है। अतः यथासमय थोड़े में, शरीर की स्थिति के अनुसार ही इन कार्यों को करना चाहिए।

स्नान और स्वास्थ्य-

आयुर्वेद के अनुसार स्नान करने के अनेक गुण हैं। स्नान से अतिनिद्रा दूर होती है और दाह (तपन, गर्मी) से बचाव होता है। श्रम से मुक्ति, पसीना से बचाव, घबड़ाहट और खुजली से रक्षा होती है। प्यास में कमी आती है। शरीर का मल दूर होता है। इन्द्रियाँ प्रसन्न होती हैं और तुष्टि का वर्धन, पुंसत्व का वर्धन, रक्त में शुद्धता तथा अग्निदीपन होता है। तन्द्रा (झपकी) दूर होती है और अशुद्धि से उत्पन्न पाप दूर होता है-

पवित्रं वृष्यमायुष्यं श्रमस्वेदमलापहम्।
शरीरबलसंधानं स्नानमोजस्करं परम्।।

चरकसूत्र ५/९४

स्नानं दाहश्रमहरं स्वेदकण्डूतृषापहम्।
हृद्यं मलहरं श्रेष्ठं सर्वेन्द्रियविशोधनम्।।
तन्द्रापापोपशमनं तुष्टिदं पुंस्त्ववर्धनम्।
रक्तप्रसादनं चापि मतमग्नेश्च दीपनम्।।

सुश्रुतचिकित्सा २४।।

धर्मशास्त्र की दृष्टि से स्नान धर्म साधन का महत्त्वपूर्ण प्रथम अङ्ग है। धर्मशास्त्र की दृष्टि में और आयुर्वेद की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण भेद है। आयुर्वेद के लिए स्नान शरीर प्रधान है; जबकि धर्मशास्त्र की दृष्टि में स्नान- आत्मशुद्धि, पवित्रता, पापविमोचन और पूजार्हता का कारक है।

स्नानकाल-

प्रातः, मध्याह्न और सायं काल में स्नान कर्म विहित है। कम से कम दो काल (प्रातः सायं) में स्नान अवश्य करना चाहिए। इससे शरीर पवित्र, शुद्ध तथा देवकर्म योग्य बना रहता है। मध्य रात्रि में वरुणदेवता सोते रहते हैं। अतः सामान्य स्थिति में मध्यरात्रि में स्नान नहीं करना चाहिए। ग्रहण में मध्य रात्रि में भी स्नान किया जाता है। सामान्य गृहस्थ को प्रतिदिन प्रातः कालिक स्नान अवश्य करना चाहिए। नदी में, जलाशय में, झील में, कुण्ड में मध्य रात्रि में न तो आचमन करना चाहिए न ही स्नान करना चाहिए-

आचान्तमनुगर्त्ते वा निशिस्नानं न विद्यते।
स्नानमाचमनं प्रोक्तं दिवोद्धृतजलेन तु।।

पराशरः।।

दिन में रखे हुए जल से स्नान तथा आचमन कार्य रात्रि में कर सकते हैं। 'देवल' ने भी निमित्त स्नान में दिन में रखे हुए पानी से स्नान करने को कहा है-

दिवोद्धृतैर्जलैः स्नानं निशि कुर्यान् निमित्ततः।

कूप में प्रवेश कर स्नान करना सर्वथा वर्जित है। इसमें जीवन को आघात, विषधर, गैस आदि से नष्ट होने का सतत भय बना रहता है।

मध्य रात्रि में केवल निमित्त स्नान विहित है। ग्रहण लगने पर मध्य रात्रि में भी स्नान का दोष नहीं होता है-

रात्रौ स्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषतः।
नैमित्तिकं तु कुर्वीत स्नानं दानं च रात्रिषु।।

व्यासः।।

स्नान से तपस्विता-

जो दिन में तीन बार स्नान करता है वह तपस्वी होता है। सामान्य व्यक्ति दिन में एक बार स्नान अवश्य करता है। स्नान के बिना तप नहीं होता। जीवन तप और यज्ञ स्वरूप तभी हो पाता है जब व्यक्ति स्नान कर लेता है। जिन देशों, सभ्यता-संस्कृतियों में स्नान विहित नहीं है वे तपस्वी नहीं है। तपस्विता के लिए बाह्यशुद्धि और अन्तःशुद्धि दोनों आवश्यक होती है। बाह्य शुद्धि स्नान से आती है और अन्तःशुद्धि जप-पूजन-हवन-पाठ से उत्पन्न होती है। प्राचीन भारत में तपस्वियों के लिए त्रिकाल स्नान आवश्यक कर्म था-

तिसृष्वपि च संध्यासु स्नातव्यं च तपस्विभिः।

स्नान करने के बाद ही व्यक्ति देवता और पितरों के कर्म करने की पात्रता एवं अधिकार को प्राप्त करता है। सभी प्रकार के विधि-विधान, दान, जप, हवन पवित्र होकर ही किये जाते हैं और पवित्रता हेतु स्नान आवश्यक कृत्य है-

स्नातोऽधिकारी भवति दैवे पित्र्ये च कर्मणि।
पवित्राणां तथा जप्ये दाने च विधिचोदिते।।

वीरमित्रोदयः।।

बिना स्नान किया हुआ मनुष्य जप, अग्नि होम आदि के योग्य नहीं होता है। इन सभी श्रेष्ठ कर्मों के लिए उषः स्नान करना आवश्यक होता है। इसे नित्य स्नान कहा जाता है।

अस्नातः पुरुषोऽनर्हो जप्याग्निहवनादिषु।
प्रातः स्नानं तदर्थं च नित्यस्नानं प्रकीर्तितम्।।

शंखस्मृतिः, ८/२।।

स्नान की आवश्यकता-

दक्ष प्रजापति ने अपनी स्मृति में स्नान की आवश्यकता को विस्तारपूर्वक वर्णित किया है। यह शरीर हमेशा मलिन होता रहता है। इसके नौ छिद्रों में दिन-रात (अहर्निश) स्राव (रिसाव) होता रहता है। (दो आँख, दो कान, दो नाक, मुख, मलाशय, मूत्राशय, ये नवछिद्र शरीर के कहे गये हैं।) अत: प्रात:काल स्नान करने से स्राव जनित अपवित्रता से शुद्धि होती है।

अत्यन्तमलिनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः।
स्रवत्येष दिवारात्रौ प्रातः स्नानं विशोधनम्।।

दक्षस्मृतिः २/७।।

रात्रि में सोये हुए मनुष्य की इन्द्रियाँ गीली हो जाती हैं और उनसे हमेशा स्राव होता रहता है। शरीर का उत्तमाङ्ग (गर्दन से ऊपर का भाग) अधमाङ्ग से समता प्राप्त कर लेता है। लार, पसीना एवं वस्त्रों के उथल-पुथल हो जाने से शरीर अशुद्ध हो जाता है। सो कर उठा हुआ व्यक्ति विविध प्रकार के स्वेदों (पसीने) से भरा रहता है। अत: बिना स्नान किये उसे अन्य दूसरा कोई कर्म आरम्भ नहीं करना चाहिए-

क्लिद्यन्ति हि प्रसुप्तस्य इन्द्रियाणि स्रवन्ति च।
अङ्गानि समतां यान्ति उत्तमान्यधमैः सह।।

दक्षस्मृतिः २/८।।

लालास्वेदसमाकीर्णः शयनादुत्थितः पुमान्।
अस्नात्वा नाचरेत् कर्म जपहोमादि किञ्चन।।

दक्षस्मृतिः २/९।।

सूर्योदय पूर्व स्नान का महत्त्व-

जो व्यक्ति उष:काल में उठ कर सूर्योदय से पूर्व स्नान कर लेता है वह सात जन्मों के पापों को तीन वर्ष में ही धो डालता है। आशय है तीन वर्ष तक उष: काल में स्नान करने वाला व्यक्ति अपने सात जन्मों के पाप को धो डालता है। उष: काल में उठ कर सूर्योदय से पूर्व जो स्नान कर लेता है, वह प्राजापत्यव्रत का पुण्य प्राप्त कर लेता है और उसके महापातक नष्ट हो जाते हैं-

प्रातरुत्थाय यो विप्रः प्रातःस्नायी भवेत्सदा।
सप्तजन्मकृतं पापं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति।।

दक्षस्मृतिः २/१०।

उषस्युषसि यत्स्नानं संध्यायामुदिते रवौ।
प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम्।।

दक्षस्मृतिः २/११।।

प्रात: कालीन स्नान के प्रतिफल दृष्ट और अदृष्ट दोनों होते हैं। प्रात: स्नान करने वाला पवित्रात्मा हो जाता है और वह सभी पुण्य कर्मों का योग्य अधिकारी हो जाता है-

प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत्।
सर्वमर्हति पूतात्मा प्रातःस्नायी जपादिकम्।।

दक्षस्मृतिः २/१२।।

प्रात: कांल का प्राकृतिक जल बाह्य वातावरण से रक्षा करता है। शीत काल में सूर्योदय पूर्व का जल गर्म रहता है और गर्मी में शीतल रहता है। अत: प्रायश: सूर्योदय पूर्व स्नायी व्यक्तियों को शतायु या इससे अधिक आयु वाला पाया गया है। उष: कालीन स्नान से शरीर की उष्मा, इन्द्रियों की स्फूर्ति, मलय पवन और स्नात शरीर का सम्पर्क व्यक्ति में तेज, इन्द्रिय विजय और तप को भर देता है। फलत: प्रात: स्नान् करने वाला व्यक्ति सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक गुणों से युक्त होता है।

स्नान के 'भेद-

शङ्ख स्मृति में छः प्रकार के स्नान क़हे गये हैं। ये हैं- नित्यस्नान, नैमित्तिक स्नान, काम्यस्नान, क्रियाङ्गस्नान, मलाकर्षण स्नान और क्रियास्नान-

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम्।
क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढा स्नानं प्रकीर्तितम्।।८/१।।

१. **नित्य स्नान-** प्रतिदिन किया जाने वाला स्नान नित्य स्नान कहलाता है।

२. **नैमित्तिक स्नान-** पवित्र रहने पर भी शव, कुत्ता, सूकर, गदहा, रजस्वला, चाण्डाल, पतित आदि से स्पर्श हो जाने पर किया जाने वाला स्नान नैमित्तिक कहलाता है। वमन होने के बाद, बाल-दाढ़ी कटवाने के बाद, मैथुन के बाद, दुःस्वप्न देखने के बाद स्नान करने से ही व्यक्ति शुद्ध होता है। कुत्ता, वराह, गदहा, ऊँट, भेड़िया, सियार, वानर, कौआ, मुर्गा,

गृध्र से यदि स्पर्श हो जाये तो तत्काल स्नान करना चाहिए- **श्ववराहखरानुष्ट्रान् वृकगोमायुवानरान्। काककुक्कुट गृध्रांश्च स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत।।** संवर्तस्मृतिः। बहुत बार ऐसी स्थिति हो जाती है जब मूत्र-मल विसर्जन के बाद शुद्धि के लिए जल की उपलब्धता नहीं होती है। ऐसे में जहाँ जल मिले वहीं गुप्ताङ्ग प्रक्षालन करके वस्त्र सहित स्नान करना चाहिए-

कृत्वामूत्रं पुरीषं वा यदा नैवोदकं लभेत्।
स्नात्वा लब्धोदकः पश्चात् सचैलस्तु विशुद्ध्यति।।

अङ्गिराः।।

यदि शराब बेचने वाले और शराबी से स्पर्श हो जाये तो स्नान करना चाहिए। मार्ग में जाते समय यदि शव वाहकों और श्मशान यात्रा करने वालों से स्पर्श हो जाए तो घर आकर या जल संस्था में जाकर स्नान करना चाहिए। चिता धूम (प्रेत धूम) शरीर को यदि स्पर्श कर जाये तो स्नान करना चाहिए।

बृहस्पति, सुमन्तु, मार्कण्डेय आदि ऋषियों के वचनानुसार घरेलू बिल्ली (मार्जार), चूहा, मक्खी आदि के स्पर्श से व्यक्ति दूषित नहीं होता है-

स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन।
मार्जारश्चैव दर्वी च मारुतश्च सदा शुचिः।।

बृहस्पतिः।।

यदि जाने-अनजाने में दूसरे का घाव-पिव-मल-हड्डी-रजोवस्त्र-मूत्र-वीर्य-खून स्पर्शित हो जाये तो मिट्टी, उबटन, दुग्धादि, लेप (साबुन आदि) से स्नान करना चाहिए-

मानुषास्थि वसां विष्ठामार्त्तवं मूत्ररेतसी।
मज्ञानं शोणितं वापि परस्य यदि संस्पृशेत्।।
स्नात्वा प्रमृज्य लेपादीनाचम्य च शुचिर्भवेत्।।

देवलः।।

३. **काम्यस्नान-** कामना की आपूर्ति हेतु किया जाने वाला स्नान काम्य कहलाता है; जैसे- पुष्य स्नान, ललही छठ आदि स्नान, कुण्ड आदि में किया जाने वाला स्नान। कार्तिक, माघ मास के स्नान भी इसी में आते हैं।

४. **क्रियाङ्ग स्नान-** देवता, पितरों के निमित्त तीर्थ क्षेत्र में जाकर किया जाने वाला स्नान क्रियाङ्ग स्नान कहलाता है जैसे- श्राद्धस्नान।

५. **मलाकर्षण स्नान-** उबटन, तेल, मालिश आदि कर-कराकर किया जाने वाला स्नान मलाकर्षण स्नान कहलाता है।

६. **क्रियास्नान-** सरिता, देवखात, तीर्थ जल, नदी, तालाब, कुण्ड, समुद्र आदि में किया जाने वाला स्नान क्रियास्नान कहलाता है।

जल स्नान से शरीर शुद्ध होता है। समन्त्रक स्नान से पुण्य की प्राप्ति होती है। तीर्थों में जाकर स्नान करने से महान् पुण्य प्राप्त होता है।

सभी तीर्थ पुण्यदायक होते हैं। तीर्थों में किया स्नान पाप नाशक होता है। सभी झरने, झीलें, नदियाँ, तीर्थ, पर्वत, पुण्यकारी होते हैं। गंगा नदी सभी से ज्यादा पुण्य देने वाली है-

सर्वतीर्थानि पुण्यानि पापघ्नानि सदा नृणाम्।
परस्परानपेक्षाणि कथितानि मनीषिभिः।।

शंखस्मृतिः ८/१३।।

सर्वे प्रस्रवणाः पुण्याः सरांसि च शिलोच्चयाः।
नद्यः पुण्यास्तथा सर्वा जाह्नवी तु विशेषतः।।

शंखस्मृतिः ८/१४।।

स्नान के दशगुण-

उषः काल में स्नान करने वाले व्यक्ति के भीतर दशगुणों का निवास होता है। ये हैं- सौन्दर्य, तेज, बल, शौच (शुद्धि), आयु, आरोग्य, अलोलुपता, दुःस्वप्ननाश, तप और मेधा-

गुणा दश स्नानपरस्य साधो रूपं च तेजश्च बलं च शौचम्।
आयुष्यमारोग्यमलोलुपत्वं दुःस्वप्नघातश्च तपश्च मेधा।।

वीरमित्रोदयः।।

उषः स्नान से सूर्य तेज की प्राप्ति-

'प्रातःस्नायी भवेदर्कः' उषः काल में स्नान करने वाला सूर्य की तरह तेजस्वी होता है। अतः उषः काल में प्रतिदिन स्नान करना चाहिए। यदि कोई उषः काल में स्नान नहीं करता है तो वह अपने जीवन में सूर्य जैसे तेजस्वी होने का अवसर खोता है।

प्राकृतिक प्रवाह में स्नान का महत्त्व-

नदी, नद, झरना, कुण्ड प्रस्रवण, तालाब, देवखात आदि में स्नान करने का बहुत महत्त्व है। इनके पास पहुँच कर अवश्य स्नान करना चाहिए।

उषः काल में अनेक मंत्रों के उच्चारणपूर्वक इनमें स्नान का अपूर्व महत्त्व कहा गया है। नदी में धारा की ओर मुँह करके स्नान करना चाहिए। स्थिर जल वाले साधनों में पूर्व मुख स्नान करना चाहिए। जल का ताड़न और विक्षोभण नहीं करना चाहिए। इससे जल क्षुब्ध और गंदा होता है।

स्नान के विधि-निषेध-

- दूसरों के बनाये जल साधनों से स्नान नहीं करना चाहिए। विशेषतः सरोवर में। यदि स्नान करना ही पड़े तो उस सरोवर से सात या पाँच ढेला मिट्टी निकालनी चाहिए; जिससे एक दिवसीय स्नान तुल्य गहराई बढाने में स्वयं का योगदान हो सके और उस सरोवर का प्रत्युपकार हो सके।
- मध्य रात्रि में स्नान नहीं करना चाहिए। भोजन के तत्काल बाद स्नान नहीं करना चाहिए। बहुत वस्त्र पहन कर निरंतर स्नान नहीं करना चाहिए। अज्ञात सरोवर में स्नान नहीं करना चाहिए-

न स्नानमाचरेद् भुक्त्वा नातुरो न महानिशि।
न वासोभिः सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये।।

मनुस्मृतिः ४/१२९।।

- जल में अपना प्रतिबिम्ब नहीं देखना चाहिए- **नात्मानमीक्षेत जले।**
- पानी को अंगों से पिटना नहीं चाहिए।
- स्नान करने के बाद तेल लगाना, मुण्डन कराना, मालिश कराना वर्जित है।
- अशक्त, बीमार व्यक्ति को सिर के नीचे पांनी डाल कर स्नान करना चाहिए। गीले कपड़े से शरीर पोंछने या अपने ऊपर जल छिड़कने से अशक्त व्यक्ति की शुद्धि हो जाती है-

अशिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम्।
आर्द्रेण वाससा वा स्यान्मार्जनं दैहिकं विदुः।।

जाबालस्मृतिः।।

इस तथ्य को आयुर्वेद भी अपने स्वस्थवृत्त में स्वीकृति देता है।

- शीतल जल से स्नान करना आँखों की रोशनी के लिए शुभकारी होता है।
- शीतल जल से स्नान करने पर शरीर की अग्नि भीतर रहती है।
- शीतल जल से स्नान करने से रक्त, पित्त दोष शान्त होता है।
- शीत काल में अति शीत जल से स्नान न करें।

- उष्ण जल से सिर पर स्नान न करें। इससे आँखों की रोशनी कम होती है- **उष्णेन शिरसः स्नानमहितं चक्षुषः सदा।** सु.चि. २४॥
- पुत्र जन्म सुन कर वस्त्र सहित स्नान करना चाहिए। सूर्य संक्रान्ति में, ग्रहण में, पुण्यकाल और मोक्षकाल में स्नान करना चाहिए।
- श्मशान यात्रा में भाग लेकर सवस्त्र स्नान करना चाहिए।
- प्रसूतिका गृह में प्रवेश के बाद स्नान करना चाहिए। थकान मिटाये बिना स्नान नहीं करना चाहिए।
- जननशौच, मरणशौच, संक्रान्ति, ग्रहण आदि के शुद्ध स्नान के बाद यज्ञोपवीत बदलकर नया कर लेना चाहिए।
- धूप से तप कर तत्काल स्नान नहीं करना चाहिए। इससे दृष्टि मन्द पड़ती है और सिर में दर्द होने लगता है- **आतपसन्तप्तस्य जलावगाहो दृङ्मान्द्यं शिरोव्यथां च जनयति।।** नीतिवाक्यामृत, २५/२८॥
- काँसे के पात्र से स्नान नहीं करना चाहिए।
- नग्न होकर स्नान नहीं करना चाहिएं- **'न नग्नः स्नानमाचरेत्'**

मनुस्मृतिः ४/४५॥ कूर्मपुराण, उ. १६/६५, पद्मपुराण, स्वर्ग ५५/६५

- पहली बार सिर पर ही स्नान जल डालना चाहिए। बिना सिर पर स्नान किये स्नान नहीं कहा जाता। इससे बाहरी अधिक उष्मा पैरों द्वारा धरती में प्रविष्ट हो जाती है।
- स्नान के बाद गीले कपड़े तथा अपने हाथों से शरीर को नहीं झाड़ना-पोंछना चाहिए।
- स्नान किये वस्त्र को निचोड़ कर पुनः उसी से भूल कर कभी शरीर नहीं पोंछना चाहिए। यदि ऐसा हो जाए तो दुबारा स्नान करना चाहिए।
- स्नान के पश्चात् साफ-सुथरा, पवित्र, धुला हुआ वस्त्र पहनना चाहिए। अधः अन्तःवस्त्र (लंगोटा, चड्ढी, पैंट, पैंटी) तथा ऊर्ध्व अन्तः वस्त्र (गंजी, कंचुक) आदि धुला पहनना चाहिए। पूर्व धारित अन्तःवस्त्र को स्नान के बाद पहनने से व्यक्ति अशुद्ध हो जाता है।
- भारतवर्ष में प्रतिदिन स्वयं से प्रक्षालित (धोये हुए) वस्त्र को स्नान के बाद पहनने की जीवन शैली रही है। जो प्रतिदिन धोया जाय उसे धौतवस्त्रम् (धोती) कहते हैं। नाभि से नीचे पहनने वाला वस्त्र अलग होता है और

नाभि से ऊपर वाला वस्त्र अलग होता है। **नोत्तरीयमधः कुर्यान् नोपर्यधस्त्यम्बरम्।** हमेशा द्विवस्त्र धारण करना चाहिए। ऐसा न करने से किया हुआ स्नान व्यर्थ हो जाता है। स्नान का उद्देश्य स्वच्छता और पवित्रता दोनों है। स्नान पूजाकर्म है। अत: पवित्रता भंग न हो इसका हमेशा ध्यान रखा जाता है।

- जल में हाथ, पैर नहीं पिटना चाहिए।
- जहाँ प्रभूत (ज्यादा) जल हो वहीं स्नान करना चाहिए। कम जल वाले स्थान का परित्याग करके प्रभूत जल में ही स्नान करना चाहिए-

प्रभूते विद्यमाने तु उदके सुमनोहरे।
नाल्पोदके द्विजः स्नायान्न नदी चोत्सृज्य कृत्रिमे।।

याज्ञवल्क्यस्मृतिः।।

लघुहारीत स्मृति में कहा है-

- रोग ग्रस्त होने पर स्नान न करें- **नातुरः।**
- भोजन कर स्नान न करें- **न भुक्त्वा।**
- अजीर्ण होने पर स्नान न करें- **नाजीर्णे।**
- बहुत कपड़ा पहन कर स्नान न करें- **न बहुवाससा।**
- नग्न स्नान न करें- **न नग्नो।**
- भोजन करते हुए स्नान न करें- **नाश्नन्।**
- सज-धज (अलंकृत) कर स्नान न करें- **नालंकृतः।**
- अज्ञात जल में स्नान न करें- **नाज्ञाते जले।**
- बहुत जल उपलब्ध होने पर थोड़े जल में स्नान न करें- **नाल्पेजले।**
- अर्धरात्रि में स्नान न करें- **न निशायां स्नायात्।**
- नदी से निकल कर अलग जमा जल में स्नान न करें- **नद्या यच्च परिभ्रष्टं नद्या यच्च विनिःसृतम्।। वीरमित्रोदयः।।**

स्कन्दपुराण में लिखा है कि घुटने भर जल में स्नान नहीं करना चाहिए। नाभि प्रदेश पर्यन्त जल में स्नान करना चाहिए-

नाभिमात्रं च यत्तोयं तत्तु स्वल्पमुदाहृतम्।
ततः स्नानं प्रकुर्वीत जानुमात्रे न तु क्वचित्।।

- बीमारी की अवस्था में पक्व (उष्ण) जल से स्नान करना चाहिए- **उष्णाम्भः पावनं स्मृतम्।। यमः।।**
- प्राप्त होने पर तीर्थ स्नान और गंगा स्नान हमेशा करना चाहिए।
- सिंह राशि और कर्क राशि में जब सूर्य हो तो नदी में स्नान नहीं करना चाहिए; क्योंकि सभी नदियाँ उस समय रजस्वला होती हैं-

  सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्या रजस्वला।। गंगा नदी को इस प्रतिबन्ध से दूर रखा गया है- **वर्जयित्वा तु जाह्नवीम्। याज्ञवल्क्यस्मृतिः।।**

स्नान का अपवाद-

यदि कोई बीमार हो गया हो, ज्वर, सर्दी, कफ से पीड़ित हो अथवा अस्थिभंग के बाद वज्र लेप (प्लास्टर) करा कर लेटा हो तो वह स्नान कैसे करे या उसके लिए कौन-सा उपाय विहित है? इस सन्दर्भ में जाबाल, मार्कण्डेय, बृहस्पति एवं यम ने व्यवस्था दी है-

सिर एवं शरीर को आर्द्र (गीला) कपड़े से मार्जन करना (पोंछना) चाहिए। सिर के नीचे ही स्नान करना चाहिए- अशिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम्। आर्द्रेण वाससा वापि मार्जनं दैहिकं विदुः।

मन्त्रस्नान से नित्यस्नान की पूर्ति नहीं होती है। स्नात व्यक्ति को ही मंत्र स्नान करना चाहिए-

शिरःस्नातस्तु कुर्वीत दैवं पैत्र्यमथापि वा।।

मार्कण्डेयः।।

आर्द्र (गीला) कपड़े से शरीर को पोंछ लेने से, तत्पश्चात् धुला वस्त्र पहन लेने से स्नान की पूर्ति हो जाती है-

आर्द्रेण कर्पटेनाङ्गशोधनं कापिलं स्मृतम्।।

बृहस्पतिः।।

'यमस्मृति' के अनुसार कोई स्वस्थ व्यक्ति यदि रोगी (आतुर) को स्नान कर-करके दस बार स्पर्श कर दे तो वह स्नात हो जाता है।

आतुरस्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः।
स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुध्येत् स आतुरः।।

परिशिष्ट

प्राकृतिक जलस्रोतों में स्नान करने से पुण्य की प्राप्ति होती है। नद, नदी, सरिता, देवखात, तड़ाग, कुण्ड आदि में अवगाहन से पूर्व वरुण देवता की प्रीति के लिए मंत्रोच्चार करने का विधान है। इन प्राकृतिक जलस्रोतों में स्नान करते समय मंत्रों का उच्चारण करना आवश्यक होता है। ऋषियों ने मंत्र स्नान का बृहद् तथा लघु दोनों स्वरूप वर्णित किया है।

कात्यायन ऋषि के अनुसार जल में डुबकी लगा कर तीन बार अघमर्षण मंत्र का जप करना चाहिए, अथवा 'द्रुपदादिव' या 'आयं गौः' मंत्र का तीन बार स्मरण करना चाहिए अथवा जल में स्नान करते समय ॐ या विष्णु का तीन बार स्मरण करना चाहिए।

महत्त्वपूर्ण स्नान मंत्र-

स्नान मंत्रों में तीन मंत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं सुप्रसिद्ध हैं। इन तीनों मंत्रों का प्रयोग सभी ऋषियों ने करने को कहा है-

१. अघमर्षण मंत्र-

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।
समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी।
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः।।

२. आपो देवता मंत्र-

ॐ आपो हि ष्ठा मयो भुवः
ता न ऊर्जे दधातन
महेरणाय चक्षसे
यो वः शिवतमो रसः
तस्य भाजयतेह नः

उशतीरिव मातरः
तस्मा अरं गमाम वः
यस्य क्षयाय जिन्वथ
आपो जनयथा च नः

इस मंत्र को पढ़ते हुए स्नान करते हैं; पर 'यस्य क्षयाय जिन्वथ' बोलते समय सिर पानी से बाहर रखा जाता है और सिर पर पानी नहीं पड़ने दिया जाता है।

ये दोनों मंत्र पाप नाशक, आयुवर्धक और ऊर्जा संधायक हैं।

३. प्राणायाम मंत्र

अनेक ऋषियों ने जल में अवगाहन कर अन्तर्जल में तीन प्राणायाम या एक प्राणायाम मंत्र सहित करने को कहा है। (अन्तर्जल में नासिका छिद्र को बंद किये बिना भी प्राणायाम होता है।)

मंत्र-

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।।

इन तीन प्रमुख मंत्रों से प्राचीन काल में ब्रह्मवेत्ता, महर्षिगण, त्रिकालज्ञ, सनातनधर्मी हिन्दू स्नान किया करते थे। ये तीनों मंत्र सभी प्रकार के पापों को नष्ट करने में समर्थ हैं।

बहती धारा में प्रवाह की ओर मुख करके तथा स्थिर जल में पूर्व की ओर मुख करके इन मंत्रों को स्मरण करते हुए स्नान किया जाता है। इन मंत्रों से स्नान करने वाला व्यक्ति परम पवित्र हो जाता है।

कात्यायन ऋषि के अनुसार स्नान करते समय पचीस मंत्रों का वाचन किया जाता है।

- आपो हि ष्ठा = ३ मंत्र
- इदमापः प्रवहते = १ मंत्र (= ४)
- हविष्मतीरिमा आप = १ मंत्र (= ५)
- देवीरापो अपान्नपा = १ मंत्र (= ६)
- कार्षिरसि समुद्रस्य = १ मंत्र (= ७)
- आपो देवा मधुमती = १ मंत्र (= ८)

• द्रुपदादिव मुमुचान	=	१ मंत्र (= ९)
• शन्नो देवीरभिष्टय	=	१ मंत्र (= १०)
• अपां रसम्	=	१ मंत्र (= ११)
• अपो देवीरूपसृजेति	=	१ मंत्र (= १२)
• पुनन्तु मा पितरः	=	१ मंत्र (= १३)
• पुनन्तु मा पितामहा	=	१ मंत्र (= १४)
• अग्न आयूंषि	=	१ मंत्र (= १५)
• पुनन्तु मा देवजनाः	=	१ मंत्र (= १६)
• पवित्रेण पुनीहि मा	=	१ मंत्र (= १७)
• यत्ते पवित्रम्	=	१ मंत्र (= १८)
• मवमैनः सो	=	१ मंत्र (= १९)
• उभाभ्यां देव सवितर्	=	१ मंत्र (= २०)
• वैश्वदेवी पुनातु	=	१ मंत्र (= २१)
• चित् पतिर्मा पुनातु	=	१ मंत्र (= २२)
• वाक्पतिर्मा पुनातु	=	१ मंत्र (= २३)
• देवोमा सविता पुनातु	=	१ मंत्र (= २४)
• चित्पतिर्मा पुनातु	=	१ मंत्र (= २५)

इन मंत्रों का वाचन प्रबल ब्रह्म वर्चस्व की कामना करने वाले दृढ़व्रत लोग ही कर सकते हैं। सामान्य व्यक्ति इन मंत्रों का प्रयोग नहीं कर सकता न तो उन सामान्य जनों के लिए कात्यायन पद्धति का यह विधान ही है।

स्नान करते समय मिट्टी से शरीर लेप कर स्नान करने के- **'सुमित्रिया और दुर्मित्रिया'** मंत्र कहे गये हैं। याज्ञवल्क्यः।। याज्ञवल्क्य ऋषि ने स्नान के अनेक मंत्र उपदिष्ट किये हैं। साथ ही सामान्य व्यक्ति के लिए ऋषिवर ने सामान्य उपाय भी निर्दिष्ट किया है; जैसे-

जलमध्ये स्थितो विप्रः शुद्धभावो हरिं स्मरेत्।।

जल में खड़ा होकर व्यक्ति श्री हरि का शुद्ध भाव से स्मरण कर ॐ बोलता हुआ स्नान करे। जिन्हें गायत्री मंत्र याद हो वे जल में डुबकी लगा कर गायत्री मंत्र स्मरण ३ बार करें। अथवा बार बार ॐ का जप करें अथवा अव्यय विष्णु का स्मरण करें। विष्णु का आवास नार (जल) है। वे नार के पति होने से नारायण हैं-

आवर्त्तयेद् वा प्रणवं स्मरेद् वा विष्णुमव्ययम्।
विष्णोरायतनं ह्यापः स ह्यपां पतिरुच्यते।।
ध्यायन् नारायणं नित्यं स्नानादिषु च कर्मसु।

वीरमित्रोदयः।।

याज्ञवल्क्य ऋषि ने भी अघमर्षण मंत्र से जल में निमज्जन को श्रेष्ठ कहा है। शरीर में पवित्र मिट्टी लगा कर स्नान करते समय मिट्टी की प्रार्थना का मंत्र निम्नलिखित है-

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्।।
उद्धृताऽसि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
नमस्ते सर्वभूतानां भववारिणि सुव्रते।।
आरुह्य मम गात्राणि सर्वपापं प्रमोचय।।

अशुद्ध व्यक्ति को जलस्रोत में मौन अवगाहन करना चाहिए। बौधायन ऋषि ने स्नान के निम्नलिखित मंत्रो को निर्दिष्ट किया है-

हिरण्यश्रृङ्गं वरुणं प्रपद्ये तीर्थं मे देहि याचितः।
यन्मया भुक्तमसाधूनां पापेभ्यश्च प्रतिग्रहः।
यन्मे मनसा वाचा कर्मणा वा दुष्कृतं कृतं तन्न इन्द्रो वरुणो बृहस्पतिः सविता च पुनन्तु पुनः पुनः।।

(स्वर्ण के सींग वाले वरुण को प्रणाम करता हूँ। हे वरुण देव! मुझे तीर्थ प्रदान करें। जो भी मैंने कुत्सित अन्न या मांगा हुआ अन्न खाया है उसके पाप से मुझे मुक्त करें। मन, वाणी, कर्म से किया गया मेरे द्वारा पाप इन्द्र, वरुण, बृहस्पति, सविता देवता दूर करें। मुझे पवित्र करें। बार बार पवित्र करें।)

मनुष्य के शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोम कूप (रोयें) होते हैं। ये तीर्थ स्वरूप हैं। अतः स्नान के बाद शाँत भाव से खड़ा हो कर शरीर से पानी को स्वतः टपक जाने देना चाहिए। शीघ्रता होने पर सूखे कपड़े से शरीर को पोंछना चाहिए। पोंछते समय सबसे पहले मुख तब सिर इसके बाद क्रमशः शरीर का निचला हिस्सा पोंछना चाहिए। जल के भीतर भूल कर भी स्नान किये वस्त्र को

नहीं निचोंड़ना चाहिए। इससे वह जल स्रोत प्रदूषित होता है। ऐसा करने से स्नान का पुण्य वृथा हो जाता है-

जल मध्ये तु यः कश्चिद् द्विजातिर्ज्ञानदुर्बलः।
निष्पीडयति तद्वस्त्रं स्नानं तस्य वृथा भवेत्।।

पराशरः।।

तीर्थ स्नान मंत्र

गंगा स्नान मंत्र-

विष्णुपादाब्जसम्भूते गंगे त्रिपथगामिनि।
धर्मद्रवेति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि।।

श्रद्धया धर्मसम्पन्ने देवि श्रीमति जाह्नवि।
अमृतेनाम्बुना देवि भागीरथि पुनीहि माम्।।

गंगा गंगेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्व-पापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।।

गंगासागर स्नान मंत्र-

त्वं देवि सरितां नाथे त्वं देव सरितां पते।
उभयोः सङ्गमे स्नात्वा मुञ्चामि दुरितानि वै।।

करतोया स्नान मंत्र-

करतोये सदानीरे सरित् श्रेष्ठेति विश्रुते।
आप्लावयसि पौराणां पापं हर करोद्भवे।।

ब्रह्मपुत्र स्नान मंत्र-

ब्रह्मपुत्र महाभाग शन्तनोः कुलवर्धन।
अमोघगर्भसम्भूत पापं लौहित्य मे हर।।

कौशिकी स्नान मंत्र-

गाधिराजसुते देवि विश्वामित्रमुनेः स्वसः।
ऋचीकभार्ये सत्यार्ये पापं मे हर कौशिकी।।

नर्मदा स्नान मंत्र-

आद्ये नमः पुण्यजले नमः सागरगामिनि।
नर्मदे पापनिर्मुक्ते नमो देवि दरानने।।

भीमरथी स्नान मंत्र-

भीमस्वेदसमुद्भूते रथनेमिविनिः सृते।
सर्वपापविनाशार्थं स्नास्ये देवि तवाम्भसि।।

समुद्र स्नान मंत्र-

अमावास्या में समुद्र स्नान श्रेयस्कर माना गया है। अमावास्या में समुद्र शाँत रहता है। निर्णयसिन्धु के प्रथम परिच्छेद के अन्तिम भाग में लिखा है-

समुद्रे पर्वसु स्नायादमायां च विशेषतः।
पापैर्विमुच्यते सर्वैरमायां स्नानमाचरन्।।

शुक्रवार और मंगलवार के दिन समुद्र में स्नान नहीं करना चाहिए-

भृगुभौमदिने स्नानं नित्यमेव विवर्जयेत्।

पीपल की पूजा, परिक्रमा, अंक भरना शनिवार को तथा समुद्र में स्नान अमावास्या को करना चाहिए। सेतुबन्ध रामेश्वरम् में किसी भी दिन समुद्र की पूजा कर स्नान का विधान है।

समुद्र में स्नान से पूर्व मन्त्र पढ़ते हुए एक पत्थर समुद्र के भीतर फेंकना चाहिए। इसके बाद समुद्र में प्रवेश करना चाहिए। इस पत्थर का भोजन पिप्पलाद ऋषि से उत्पन्न कृत्या करती है-

पिप्पलाद समुत्पन्ने कृत्ये लोकभयंकरे।
पाषाणस्ते मया दत्तः आहारार्थे प्रकल्प्यताम्।।

इस मंत्र को बोल कर समुद्र में पत्थर फेंकने की प्राचीन प्रथा रही है।

विश्वाची च घृताची च विश्वयोने विशांपते।
सान्निध्यं कुरु मे देव सागरे लवणाम्भसि।।

नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो अपांपते।
नमो जलधिरूपाय नदीनां पतये नमः।।

नमस्ते जगदाधार शंखचक्रगदाधर।
देव देहि ममानुज्ञां तव तीर्थनिषेवणे।।

त्रितत्त्वात्मकमीशानं नमो विष्णुमुमापतिम्।
सान्निध्यं कुरु देवेश सागरे लवणाम्भसि।।

अग्निश्च योनिरनिलश्च देहो रेतोधा विष्णुरमृतस्य नाभिः।
एतद् ब्रुवन् पाण्डवसत्यवाक्यं ततोऽवगाहेत पतिर्नदीनाम्।।

स्नान करके समुद्र को जल में ही अर्घ्य दें-

सर्वरत्नोभवान् श्रीमान् सर्वरत्नाकरो यतः।
सर्वरत्नप्रधानस्त्वं गृहाणार्घ्यं महोदधे।।



स्नान की सामान्य विधि

स्नान पश्चात् धारण करने वाले वस्त्र को पवित्र स्थान में रखना चाहिए। यज्ञोपवीत पहने हुए, एक वस्त्र पहने हुए, प्रवाह की ओर या पूर्व की ओर मुख करके स्नान करना चाहिए। स्नान करते समय गंगा, वरुण, तीर्थ की प्रार्थना करनी चाहिए-

नमामि गंगे तव पादपंकजं
सुरासुरैर्वन्दितदिव्यरूपम् ।
भुक्तिं च मुक्तिं च ददासि नित्यं
भावानुसारेण सदा नराणाम्।।

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
कावेरि नर्मदे सिन्धो जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।



अध्याय-५

योगसाधना

योग साधना और उसका प्रतिदिवसीय अभ्यास मनुष्य को शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक प्रबलता के लिए अवश्य करना चाहिए। यह कार्य सूर्योदय के पश्चात् तर्पण एवं वैश्वदेव के बाद करना चाहिए। जो लोग तर्पण और वैश्वदेव नहीं करते हैं उन्हें जलपान-भोजन करने से कम से कम एक घंटा पूर्व योगाभ्यास करना चाहिए। योगसाधना ध्यान-प्राणायाम प्रधान है; जबकि योगाभ्यास हठयोग, मुद्रा और क्रिया प्रधान है। योग में इन दोनों का समन्वय रहता है।

योगासन और व्यायाम हमेशा खाली पेट करना चाहिए। भोजन के पाँच घण्टे बाद ही योगासन करना चाहिए। यदि पेट साफ नहीं हो तो योगासन हानिकारक होता है। रात में यदि नींद पूरी न हुई हो और अजीर्ण हो तो भी आसन नहीं करना चाहिए। योगासन करने के एक घण्टे बाद ही कुछ भी खाना-पीना चाहिए।

योग का महत्त्व-

योग मनुष्य के जीवन में प्रत्यक्ष परिणाम उत्पन्न करता है। इसमें प्रत्यक्ष या अनुभव द्वारा सब कुछ देखने-सुनने को मिलता है। फलतः योग क्रियापरक शास्त्र और मानव से जुड़ा प्रतिदिवसीय विषय है। योग सार्वभौम धर्म है। यह सभी के लिए हितकारी है। जिस तरह से समस्त विश्व में भूख, प्यास, निद्रा, भय, मैथुन सभी प्राणियों में समानरूप से व्याप्त है उसी तरह से योग का प्रभाव सभी प्राणियों में व्याप्त है। योग मनुष्य को अंतिम ध्येय तक पहुँचाता है। योग विश्व में 'आसन' या कसरत के रूप में जाना जाता है पर यह स्थूल से 'सूक्ष्म' होते ही अपूर्व शक्ति उत्पन्न करने लगता है।

योगासन केवल शारीरिक मजबूती के लिए नहीं किये जाते हैं, बल्कि इनसे चित्त स्थिर होता है और मन सूक्ष्म में स्थिर होने लगता है। अतः योगासन का अंतिम लक्ष्य चित्तवृत्तियों का निरोध है।

योग के द्वारा अभौतिक तत्त्व का ज्ञान प्राप्त किया जाता है; जबकि भौतिक ज्ञान-विज्ञान से सांसारिक पदार्थों और तत्त्वों का ज्ञान होता है।

योग के द्वारा पंचमहाभूतजय, सिद्धिप्राप्ति, कायसम्पत् प्राप्ति और अप्रतिहतगति होती है। कायसम्पत्ति का अर्थ है- रूप, सौन्दर्य, बल, वज्रसदृशत्व

की प्राप्ति। योग के द्वारा ही व्यक्ति सर्वभाव अधिष्ठित होता है और सर्वज्ञत्व को प्राप्त करता है। अतः भारतवर्ष में प्रत्येक व्यक्ति स्वभावतः योगी होता था। यह योग लुप्त और प्रकट होता रहता है।

योगसाधना की स्थिति-

- योगसाधना हमेशा बैठ कर करनी चाहिए- **आसीनः संभवात्।** ब्र.सू. ४/१/७.
- प्रशान्त इन्द्रिय, निश्चल मन ध्यान करना चाहिए- **ध्यानाच्च।** ब्र.सू. ४/१/८.
- अचल बैठना चाहिए- **अचलत्वं चापेक्ष्य।** ब्र.सू. ४/१९.
- पवित्र स्थान में शुद्ध आसन पर बैठ कर पद्मासन आदि में बैठ कर ध्यान करना चाहिए- **स्मरन्ति च।** ब्र.सू. ४/१/१०.
- जहाँ मन एकाग्र हो सकें वहीं पर बैठना चाहिए- **यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात्।** ब्र.सू. ४/१/११.
- ध्यान न्यूनतम एक मुहूर्त्त (२ घटी = ४८ मिनट) करना चाहिए। अधिकतम की कोई सीमा नहीं है।
- विशुद्ध अन्तःकरण, निर्मल ज्ञान, सतत दृढ़ ध्यान से उस परमात्मा को प्राप्त किया जाता है-

  ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः।

  मुण्डकोपनिषद् ३/१/८

- ध्यान योग के माध्यम से षट्चक्रों का भेदन होता है और योगसिद्ध अवस्था की प्राप्ति होती है।
- 'ॐ' या 'प्राणायाम मंत्र' का ध्यान किया जाता है।
- योग के आठ अंग होते हैं- **यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि।**
- स्थिर, सुखपूर्वक बैठने को आसन या योगासन कहा जाता है- **स्थिरसुखमासनम्।** नाना प्रकार के आसनों को करने से नाना प्रकार के रोगों से मुक्ति मिलती है और शरीर तथा मन रोग रहित होता है।
- प्राणायाम और ध्यान के सिद्ध होते ही कुहरा, धुआं, सूर्य, वायु, अग्नि, जुगनू, विद्युत, स्फटिक, चन्द्र, सूर्य, दिखने लगते हैं। इनके शाँत होने के बाद ब्रह्म का प्रकाश दिखता है।
- पंचमहाभूतों पर विजय के बाद योग अग्नि की प्राप्ति होती है।

- योग करने वाले का शरीर हल्का, रोग रहित, लालसा रहित, कान्तियुक्त, मधुर स्वर, सुगन्ध युक्त तथा स्वल्प मूत्र-मल वाला हो जाता है।
- योग की परिभाषा है- **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**। चित्त की वृत्तियों को रोकना ही योग है। मन की चंचलता पर सर्वथा विजय योग से ही संभव है।

प्राणायाम और आसन के अनेक भेद हैं। इन सभी विषयों को स्वतन्त्र ग्रन्थों से प्राप्त करना चाहिए। कतिपय प्रमुख आसनों का नाम निर्देश यहाँ किया जा रहा है-

१. सिद्धासन
२. पद्मासन
३. भद्रासन
४. मुक्तासन
५. वज्रासन
६. स्वस्तिकासन
७. सिंहासन
८. गोमुखासन
९. वीरासन
१०. धनुरासन
११. शवासन (मृतासन)
१२. गुप्तासन
१३. मत्स्यासन
१४. मत्स्येन्द्रासन
१५. गोरक्षासन
१६. पश्चिमोत्तासन
१७. उत्कटासन
१८. संकटासन
१९. मयूरासन
२०. कुक्कुटासन
२१. कूर्मासन
२२. उत्तानकूर्मासन
२३. उत्तानमण्डूकासन
२४. वृक्षासन
२५. मण्डूकासन
२६. गरुडासन
२७. वृषासन
२८. शलभासन
२९. मकरासन
३०. उष्ट्रासन
३१. भुजंगासन
३२. योगासन

इन सुप्रसिद्ध बत्तीस आसनों का उल्लेख घेरण्ड संहिता में हुआ है।

इनमें से कुछ आसनों से प्राप्त होने वाले परिणामों को नीचे दिया जा रहा है-

१. **सिद्धासन-** मोक्षप्राप्ति, निर्मोह, त्याग
२. **पद्मासन-** रोगनाश और योगसिद्धि
३. **भद्रासन-** रोगनाश
४. **मुक्तासन-** सिद्धिप्राप्ति
५. **वज्रासन-** सिद्धिप्राप्ति
६. **स्वस्तिकासन-** वायुनाश, रोगनाश
७. **सिंहासन-** रोगनाश
८. **गोमुखासन-** दृढ़ता, स्थिरता

९.	वीरासन-	स्थिरता, विक्रम
१०.	धनुरासन-	लक्ष्य प्रदायक
११.	शवासन-	योगसिद्धिकारक
१२.	गुप्तासन-	सिद्धिप्रद
१३.	मत्स्यासन-	रोगनाशक
१४.	उत्कटासन-	योग में सहायक
१५.	भुजंगासन-	कुण्डलिनी जागरण

इस तरह से सभी आसनों से कुछ न कुछ शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक लाभ अवश्य होता है। आसनों को करने से शरीर में अपूर्व स्फूर्ति, बल, काँति बनी रहती है। इन्हें बाल्यावस्था से ही करना चाहिए।

मुद्रायें-

योगशास्त्र में पचीस मुद्रायें अत्यन्त महत्त्व की हैं। इन्हें करने से आयु की वृद्धि और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। ये हैं- १. महामुद्रा, २. नभोमुद्रा, ३. उड्डीयान, ४. जालन्धर, ५. मूलबन्ध, ६. महाबन्ध, ७. महावेध, ८. खेचरी, ९. विपरीतकरिणी, १०. योनि, ११. वज्राली, १२. शक्तिचालिनी, १३. तड़ागी, १४. माण्डवी, १५. शाम्भवी, १६. पार्थिवी धारणा, १७. आम्भसीधारणा १८. आग्नेयी धारणा, १९. वायवीय धारणा, २०. आकाशीधारणा, २१. आश्विनी, २२. पाशिनी, २३. काकी मुद्रा, २४. मातंगिनी मुद्रा, भुजंगिनी।

मुद्राओं को करने वाला व्यक्ति न तो शीघ्र वृद्ध होता है न ही उसकी शीघ्र मृत्यु होती है।

योगाभ्यास काल का भोजन

योग का शुभारंभ शरद् ऋतु और वसन्त ऋतु में करते हैं। इससे बीमार पड़ने का भय नहीं होता है। आरम्भ के दिनों में दूध, घी का प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। दिन भर में मात्र दो ही बार भोजन लेना चाहिए-

आरम्भे प्रथमं कुर्यात् क्षीराज्यं नित्य-भोजनम्।
मध्याह्ने चैव सायाह्ने भोजनद्वयमाचरेत्।।

घेरण्डः

इलायची, जायफल, लौंग, जामुन, कटजामुन, हर्रे, खर्जूर खाना शुभकारी होता है-

एलां जातिलवङ्गं च पौरुषं जम्बुजाम्बुलम्।
हरीतकीं च खर्जूरं योगी भक्षणमाचरेत्।।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण प्रोक्त योग-

योग स्थिति को प्राप्त करने हेतु एकान्त स्थान में गुरु के साथ या अकेले में शरीर एवं इन्द्रियों को वश में रखते हुए परमात्मा में ध्यान लगाया जाता है-

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।।

पवित्र भूमि पर ऊन, कुश या मृगचर्म आसन के ऊपर बैठ कर ही ध्यान लगाया जाता है। यदि भूमि अपवित्र और उग्र होगी तो ध्यान में विघ्न पड़ेगा। अति ऊँचे स्थान, अति नीचे स्थान में जाकर एकान्त में योग नहीं करना चाहिए। सुरक्षित, पवित्र और सम स्थान में बैठकर योगसाधना करनी चाहिए। मन को एकाग्र कर, इन्द्रियों को निश्चेष्ट कर ही योग करना सम्भव है। शरीर, सिर और गले को एक सीध में स्थिर रख नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर ॐ या परमात्मा का ध्यान करना चाहिए। योगी व्यक्ति स्वल्पाहार लेता है। योगकाल का भोजन अत्यन्त हल्का और सुपाच्य होना चाहिए। साथ ही सात्विक भोजन होना चाहिए। सुयोग्य आहार-विहार तथा दैनिक क्रिया वाला व्यक्ति ही योग में सिद्धि को प्राप्त करता है। जिस तरह से वायु रहित स्थान में दीपक की लौ जलती है, उसी तरह से स्पन्दन रहित योग स्थिति के द्वारा ही योग सिद्धि होती है। इसी तरह प्रतिदिन ध्यान करता हुआ व्यक्ति परमात्मा के स्वरूप को जान पाता है। योग साधना काल में ईश्वरीय तत्त्व के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं सोचना चाहिए। यदि कभी मन भटके तो प्रयत्नपूर्वक उसे खींचकर पुनः अपने भीतर समाविष्ट कर लेना चाहिए। मन को हरेक स्थिति में वशीभूत कर रखने वाला ही योगी हो पाता है। इस प्रकार से व्यक्ति के भीतर विद्यमान तमोगुण एवं रजोगुण का सर्वथा अभाव हो जाता है और सत्गुण का प्राकट्य होने लगता है। मन अत्यधिक चंचल और बलवान् होने के कारण वश में नहीं आ पाता है। जिस तरह से वायु को मुट्ठी में नहीं बाँधा जा सकता, उसी तरह से मन को भी वश में नहीं किया जा सकता। पर निरन्तर अभ्यास और वैराग्य के द्वारा ही मन वश में हो पाता है-

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।।

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।।

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

श्रीमद्भगवद्गीता, ६/१०,११,१३,२५,२६,३५

योग द्वारा मृत्यु वरण-

भारतवर्ष में मृत्युकाल को जानकर समाधि के द्वारा मृत्युवरण की प्रक्रिया प्रसिद्ध रही है। इसका उल्लेख महाकवि कालिदास ने भी किया है- **योगेनान्ते तनुत्यजाम्**। अर्थात् रघुकुल के राजा जीवन के अन्त में योग क्रिया द्वारा शरीर का त्याग कर ऊर्ध्वलोक प्रस्थान करते थे। जीवन के अन्तिम क्षणों में ईश्वर का ध्यान करते हुए शरीर का त्याग करना चाहिए। अन्तिम क्षणों में जैसी भावना रहती है, वैसा ही अगला जीवन प्राप्त होता है-

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।

श्रीमद्भगवद्गीता, ८/५-६

निरन्तर योगाभ्यास करने वाला व्यक्ति ही मृत्यु काल में अपने शरीर को वश में रखकर अन्तिम यौगिक क्रिया सम्पन्न कर सकता है। अचानक ऐसी स्थिति नहीं प्राप्त की जा सकती है। योग का अभ्यासी व्यक्ति ही मृत्यु योग को साध पाता है-

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।

श्रीमद्भगवद्गीता, ८/१०

इस प्रकार से जो मृत्यु वरण करता है, उसके मूर्धाभाग में छिद्र हो जाता है और वह व्यक्ति ईश्वरधाम को प्राप्त करता है। यह योग मृत्यु कहलाती है।

•

युवा सुवासाः परिवीत आगात्
स उ श्रेयान् भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति
स्वाध्यो मनसा देवयन्तः।।

ऋग्वेदः, मण्डलम् ३ सूक्तं ८ मंत्रः ४

यह तरुण उत्तम वस्त्र पहन कर आया हुआ है। यह श्रेयस्कर दिखलाई दे रहा है। इसे ज्ञानी (कवि, आचार्य) स्वाध्याय (वेदाध्ययन) के द्वारा देवों की तरह उन्नत मन (विचार वाले) बना रहे हैं।

(शुचि होकर, श्रेष्ठ वस्त्र पहन कर स्वाध्याय करने वाला देवों की तरह उन्नत मन मस्तिष्क होता है।)

अध्याय-६

वस्त्रपरिधान

स्नान के पश्चात् सफेद, धुले हुए, शुद्ध वस्त्र को धारण करना चाहिए। दर्पण देख कर, केशप्रसाधन कर, माङ्गल्यद्रव्य का व्यवहार कर व्यक्ति को प्रतिदिन सज्जित होना चाहिए-

स्वाचान्तस्तु ततः कुर्यात् पुमान् केशप्रसाधनम्।
आदर्शाञ्जनमाङ्गल्यं दूर्वाद्यालम्भनानि च।।

विष्णुपुराणम्, ३/११/२२

एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य च विधानतः।
उत्थाय वाससी शुक्ले शुद्धे तु परिधाय वै।।

मत्स्यपुराणम्।।

'सति विभवे न जीर्णमलवद्वासाः स्यात्' गौतमस्मृतिः ९।

यज्ञोपवीत (जनेऊ) और उत्तरीय (दुपट्टा) दोनों पवित्र माने गये हैं। श्रेष्ठ, सांस्कृतिक व्यक्तित्व वाले मनीषी जनों को इन दोनों को धारण करना चाहिए-

यथा यज्ञोपवीतं तु धार्यते च द्विजोत्तमैः।
तथा संधार्यते यत्नादुत्तराच्छादनं शुभम्।।

उत्तरीय भी कंधे पर ही धारण किया जाता है; यज्ञोपवीत की तरह। देवसंस्कृति का प्रतीक है उत्तरीय। यह मनुष्य के व्यक्तित्व को भव्यता प्रदान करता है और पवित्र आचरण से जोड़ता है। वस्त्र संस्कृति और शस्त्र संस्कृति में से वस्त्र संस्कृति जीवन को शाँति, समृद्धि प्रदान करती है। दुपट्टा संस्कृति शालीनता, सौहार्द्र, सहिष्णुता की परिचायक है। कट्टा (शस्त्र) संस्कृति भय, आधिपत्य और स्वधन विकास हेतु प्रयुक्त होती है। वही कट्टा (शस्त्र) संस्कृति शुभ, स्वीकार्य, अनुकरणीय होती है जो दुपट्टा संस्कृति की रक्षा करती है।

वस्त्र हमेशा सूखा हुआ पहना जाता है- **ते च वस्त्रे शुष्के धार्ये**, गीला वस्त्र और एक वस्त्र पहन कर नहीं रहना चाहिए- **नार्द्रमेकं च वसनं**

परिदध्यात्कथंचन। जाबालिः। गीला वस्त्र धारण से त्वचा रोग, धूल कण का सटाव शरीर में होता है; जबकि एक वस्त्र धारण करने से शरीर पर लोगों की दृष्टि (नजर) लगती है और धूप-शीत से शरीर को क्षति पहुँचती है।

शातातप ऋषि ने कहा है कि यदि गीला वस्त्र पहनना ही पड़े तो उसे सात बार हवा में उछालना (झटकारना) चाहिए- **सप्तवाताहतं शुष्कवत् भवति।**

अधोवस्त्र को शरीर के ऊर्ध्व भाग में नहीं पहनते हैं, न तो उत्तरीय वस्त्र को नीचे पहनते हैं। अन्तःवस्त्र (अधोवस्त्र) पहने बिना नहीं रहना चाहिए-

नोत्तरीयमधः कुर्यात् नोपर्याधस्त्यमम्बरम्।
नान्तर्वासो विना जातु निवसेद् वसनं बुधः।।

व्यासः।।

कपड़ा बदलते समय शुष्क कपड़े से शरीर आच्छादन करके तब गीले कपड़े का त्याग करते हैं। नग्न हो कर कपड़ा नहीं पहनना चाहिए। सफेद वस्त्र में लक्ष्मी का निवास होता है। अतः प्रयत्नपूर्वक सफेद (श्वेत) वस्त्र पहनना चाहिए- **'श्वेतं धार्यं च यत्नतः'** विष्णुधर्मोत्तरपुराण। यहीं पर यह भी निर्देश है कि दूसरे का पहना वस्त्र नहीं पहनना चाहिए- **वस्त्रं नान्यधृतं धार्यम्।** पूजन, हवन, यजन, संस्कार आदि में जला, कटा-फटा, चूहे द्वारा कुतरा, उठने-बैठने से फट जाने वाला वस्त्र नहीं पहनना चाहिए-

न स्यूतेन न दग्धेन पारक्येण विशेषतः।
मूषिकोत्कीर्णजीर्णेन कर्म कुर्याद् विचक्षणः।।

महाभारतम्।।

प्रतिदिवसीय पूजन के वस्त्र को स्वयं धोना श्रेयस्कर होता है- **स्वयं धौतेन कर्त्तव्या क्रिया धर्म्या विपश्चिता।। देवलः।** अपने हाथ से धुल वस्त्र को पहन कर ही स्नान-दान-ध्यान-योग-हवन की क्रियायें करनी चाहिए। धोबी द्वारा धोये गये वस्त्र में पवित्रता नहीं होती है। धोबी द्वारा धुले वस्त्र पर जल छिड़ककर पवित्र कर लेना चाहिए-

स्वयं धौतेन कर्त्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रिया।
न तु रजकधौतेन नाहतेन न कुत्रचित्।।

कर्मसमुच्चयः संध्याप्रयोगः

स्थल पर सूखे वस्त्र से क्रिया करनी चाहिए तथा जल में गीले वस्त्र से क्रिया की जाती है-

आर्द्रवासा जलेकुर्यात् तर्पणाचमनं जपम्।
शुष्कवासाः स्थले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम्।।

कर्मसमुच्चयः, संध्याप्रयोगः

ब्राह्मणादि भेद से वस्त्र विचार-

मनुमहाराज के अनुसार ब्राह्मण को सफेदवस्त्र धारण करना चाहिए। राजन्य वर्ग को माञ्जिष्ठ वस्त्र धारण करना चाहिए। वैश्यवर्ग को पीला वस्त्र तथा शूद्र को नीला, काला, मलिन वस्त्र पहनना चाहिए-

ब्राह्मणस्य सितं वस्त्रं माञ्जिष्ठं नृपतेः स्मृतम्।
पीतं वैश्यस्य, शूद्रस्य नीलं मलवदिष्यते।।

आशय है पूजन के समय सफेदवस्त्र, युद्ध और जीविका में लालवस्त्र, व्यवसाय में पीला या क्रीम वर्ण का वस्त्र तथा सफाई और धूमिल कार्य में धूमिल वस्त्र पहनना चाहिए।

वस्त्र धारण मंत्र-

वस्त्र धारण करते समय मंत्र पढ़ना चाहिए। इससे सुयश, दीर्घायु, संपत्ति की प्राप्ति होती है। मंत्र इस प्रकार से है-

परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदृष्टिरस्मि।
शतं च जीवामि शरदः पुरुची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये।।

अथवा पूर्वोक्त 'युवासुवासाः परिवीत आगात्' मंत्र से नव वस्त्र को समर्पित करते हैं।

वस्त्र भेद-

प्रत्येक व्यक्ति को तीन प्रकार का वस्त्र अलग-अलग रखना चाहिए। **सोने के लिए वस्त्र अलग होना चाहिए। यात्रा के लिए वस्त्र अलग होना चाहिए और पूजा के लिए वस्त्र अलग होना चाहिए-**

अन्यदेव भवेद् वासः शयनीये सदैव हि।
अन्यद् रथ्यासु देवानामर्चायामन्यदेव हि।।

महा. अनु. १०४/८६।।

मार्कण्डेयपुराण के अनुसार लोकयात्रा के लिए वस्त्र अलग होना चाहिए और देवदर्शन के लिए अलग होना चाहिए-

अन्यच्च : : लोकयात्रायामन्यदीश्वरदर्शने।

काला, नीला, अत्यन्त लाल वस्त्र हमेशा नहीं पहनना चाहिए। वसिष्ठ ऋषि ने विधान किया है कि पूजा-जप-होम-यज्ञ-उपवास-श्राद्ध के समय व्यक्ति को धौत (धोती) वस्त्र ही पहनना चाहिए-

जपहोमोपवासेषु धौतवस्त्रधरो भवेत्।
अलंकृतः शुचिर्मौनी श्राद्धादौ विजितेन्द्रियः।।

आयुर्वेद के अनुसार भी हमेशा निर्मल वस्त्र धारण करना चाहिए- इससे यश, आयु का वर्धन होता है। यह अलक्ष्मी को दूर करता है तथा काम्य होता है। मन हर्षित रहता है तथा श्रेष्ठ जनों की परिषत् में बैठने को स्थान मिलता है-

काम्यं यशस्यमायुष्यमलक्ष्मीघ्नं प्रहर्षणम्।
श्रीमत्पारिषदं शस्तं निर्मलाम्बरधारणम्।।

चरकसूत्रम्, ५/९५।।

मलिन वस्त्र धारण के दुष्परिणाम-

मलिन वस्त्र पहनने से खुजली होती है। दद्रु (दाद) और कण्डू (खुजली) गंदे-गीले वस्त्र पहनने से होते हैं। कृमियों का निवास मलिन वस्त्र में होता है। दरिद्रता, ग्लानि और हीनभाव की उत्पत्ति मलिन वस्त्र धारण करने से होती है-

कदापि न जनैः सद्भिर्धार्यं मलिनमम्बरम्।
तत्तु कण्डूकृमिकरं ग्लान्यलक्ष्मीकरं परम्।।

भावप्रकाशः।।

अत: फटा, कटा, मलिन, अधसिला, दूसरों से पहना वस्त्र नहीं धारण करना चाहिए-

वासो न धारयेज्जीर्णं मलिनं रक्तमुल्बणम्।
नैव चान्येन विधृतं वस्त्रं पुष्पमुपानहौ।।

अ.सू.सं. ३।।

प्राचीनकाल में भी लोक अलग-अलग वस्त्र पहनते थे। राजवस्त्र, सैन्यवस्त्र, पुरोहितवस्त्र, रूपक (नाटक) वस्त्र, स्वर्णवस्त्र-रजतवस्त्र (सोने चाँदी की जरी वाला वस्त्र), ऊर्ण वस्त्र, पटसन वस्त्र, केलावस्त्र, कर्पासवस्त्र प्रभृति सहस्राधिक वस्त्रों के प्रकार होते थे। अत: पूजन एवं यज्ञ में प्रतिदिन स्वयं द्वारा धोये जाने वाला वस्त्र धारण किया जाता था- 'स्वयं दासास्तपस्विन:।' तपस्वी स्वयं के दास होते थे। वे अपना वस्त्र और अपनी वस्तु (भोजनादि पात्र) स्वयं साफ किया करते थे।

ग्रहों का वस्त्र पर प्रभाव-

- सफेद वस्त्र शुक्र और चन्द्रमा ग्रह के प्रभाव से मन में पवित्रता और जीवन में समृद्धि को देता है।
- लाल वस्त्र सूर्य; मंगल के तत्त्व से प्रभावित होने के कारण उग्रता, आक्रोश तथा राजस् तत्त्व को देता है। अत: इसे कम पहनना चाहिए।
- चित्र-विचित्र वस्त्र बुध ग्रह से प्रभावित होता है। यह चित्त को चंचल और धन की ओर अग्रसर करता है।
- काला, नीला वस्त्र शनि का प्रभाव देता है। यह शरीर, मन तथा अदृष्ट को दुष्प्रभावित करता है। यह तमो गुण को सृजित करता है। अत: इससे बचना चाहिए- **न रक्तमुल्वणं वासो न नीलं तु प्रशस्यते।**
- मलिन, कटा, फटा, कुतरा वस्त्र राहु-केतु के प्रभाव को देता है। यह जीवन में स्वास्थ्य, धन, यश का संकट उत्पन्न करता है।

अत: वस्त्र हमेशा शुभ्र, शुभ, आकर्षक, धुला हुआ और कान्तिमान् ही पहनना चाहिए।

वस्त्र शुद्धि-

वस्त्र को झाड़ फटकार कर धारण करना चाहिए। रजक द्वारा धोये वस्त्र पर ऊपर से जल छिड़क लेना चाहिए- **प्रोक्ष्य वास उपयोजयेत्।**

वस्त्र को स्वच्छ और पवित्र दोनों ही कर लेना चाहिए। धुलाई, प्रोंक्षण करके वस्त्र के ऊपर कुछ बूँदें जल छिड़क लें।

वस्त्र उलटा न करें-

वस्त्रों को उलट कर नहीं पहनना चाहिए; न तो इसे उलटा टांगना चाहिए- **विपर्ययं न कुर्वीत वाससो बुद्धिमान् नरः।।** महाभारत अनु, १०४/८५।।

किनारी बने वस्त्र ही पहनें-

जिस वस्त्र में किनारी (दशा, मगजी) न हो उसे नहीं पहनना चाहिए। प्रायश: वस्त्रों के निर्माण में किनारी (कोर, मगजी) होती ही है। अत: चारों ओर से घिरे, किनारी युक्त वस्त्र को पहनना चाहिए- **वर्ज्यं च विदशं वस्त्रम्।** मार्कण्डेय पुराणम्, ३४/५५, ब्रह्मपुराणम्, २२१/५४.

विवर्जित वस्त्र-

नानाप्रकार के (रंगविरंगे) वस्त्र, किनारी रहित वस्त्र, बाल वाले वस्त्र, सुगन्धियुक्त वस्त्र, नीली रंग वाला वस्त्र, मल युक्त वस्त्र, छोटा वस्त्र, जला वस्त्र, फटा वस्त्र, युद्ध के चित्रों से चित्रित वस्त्र, कुसुम्भ या अरुण (प्रगाढ रक्त) रंग का वस्त्र देव पूजन में भूल कर भी प्रयोग में नहीं लाया जाता है-

नानारंगविराजितं गतदशं केशोद्भवं वासितं
नीलीरङ्गसमन्वितं च समलं नैवायतं चास्ति यत्।
दग्धं चैव च खण्डितं च बहुधा युद्धादिकैश्चित्रितं
तद्वर्ज्यं खलु देवपूजनविधौ वस्त्रं कुसुम्भारुणम्।।

रुमाल, गंजी, गमछा को संभालें-

अपने छोटे-छोटे वस्त्रों को सावधानी पूर्वक रखना चाहिए; जिससे दूसरे लोग इसका उपयोग न कर सकें। ये छोटे वस्त्र जब दूसरों के हाथ में पड़ जाते हैं तो तांत्रिक प्रयोग होने का भय बना रहता है। साथ ही छोटे वस्त्रों को दूसरे लोग शीघ्र ही उपयोग में लाते हैं। ऐसा करने पर दूसरों का रोग उस वस्त्र में संक्रमित होता है।

उष्णीष (पगड़ी) या टोपी धारण-

बाहरी बाधा से पगड़ी बचाती है। यह शीत बाधा और लू से बचाती है। अत: इसे सिर पर धारण करना चाहिए-

पवित्रं केश्यमुष्णीषं वातातपरजोपहम्।।

सुश्रुतचिकित्सा, २४/७४

व्यक्तित्व निर्माण में वस्त्रों का महत्त्व-

वस्त्र व्यक्ति की अभिरुचि, परिष्कार, विचार और व्यवहार को परिलक्षित करते हैं। वस्त्रों के द्वारा स्वयं और दूसरों के चित्त में शाँति-अशाँति, अनुत्तेजना-उत्तेजना; प्रेम-घृणा, विश्वास-अविश्वास का भाव उत्पन्न होता है।

वस्त्र सभ्यता और संस्कृति के संवाहक होते हैं। ऊन, रेशम (सिल्क) और कपास द्वारा निर्मित सूती वस्त्र शरीर और मन को विश्राम प्रदान करते हैं। अधिक वस्त्र और विवस्त्र नहीं होना चाहिए। भगवान् श्री विष्णु को पीताम्बर कहा जाता है। वे श्रेष्ठ, सुन्दर, दिव्य, चित्तहारी वस्त्र-धारण करते हैं।

वस्त्र ऋतु प्रधान भी होते हैं। ऋतु के अनुकूल वस्त्रों को धारण करना चाहिए। वस्त्र सुरक्षा के आवरण होते हैं। अतः वस्त्र को आवरण कहा जाता है। वस्त्र अंगों को आवरण प्रदान करते हैं। शीत, लू, धूप, वर्षा, फुहार, कुहासा, दुर्गंध आदि से वस्त्र बचाते हैं। शरीर के नौ छिद्रों को वस्त्र से ही ढ़कना चाहिए। वस्त्र स्वास्थ्य के संवाहक होते हैं। संस्कृति-सभ्यता के प्रेरक, प्रदर्शक होते हैं। इन्हें स्वरुचि और श्रेष्ठता के आधार पर धारण करना चाहिए। वस्त्र सोमतत्त्व और अग्नितत्त्व को सुरक्षित रख शरीर में परिपक्व करते हैं। तपस्वियों का वस्त्र उनके तप की रक्षा करता है। राजा का वस्त्र स्वर्ण-रजत से युक्त होता है। विद्यार्थियों के वस्त्र उनमें सारस्वतवैभव का संचार करते हैं। विवाह के वस्त्र दाम्पत्य में अनुराग उत्पन्न करते हैं। महिलाओं को पुरुष की अपेक्षा सुन्दर और सुकोमल वस्त्र पहनना चाहिए। महिलायें उत्तरीय (चुनरी, ओढ़नी, दुपट्टा) को सिर या कन्धे पर धारण करती हैं। भारत वर्ष में मखमल, रेशम, जरी, सूती, ऊनी सभी प्रकार के वस्त्रों को महिलायें धारण करती हैं। भारतीय साड़ी विश्व में पसन्द की जाती है। वस्त्र धारण बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार को करना चाहिए। मंगलवार को लाल वस्त्र तथा शनिवार को काला वस्त्र पहना जाता है। वस्त्र शील, स्वभाव, सद्‌गुण, शुभत्व प्रदान करते हैं। श्रेष्ठ वस्त्र और श्रेष्ठ रत्न जीवन में अवश्य धारण करना चाहिए।

पादुका-छत्र-दण्ड

इस धरती पर पहली बार महर्षि जमदग्नि और रेणुका माँ को सूर्य भगवान् ने दिव्य पादुका और छाता प्रदान किया था। लकड़ी से निर्मित चरण पादुका प्रतिदिन पूजन, भोजन से पूर्व अवश्य धारण करना चाहिए। इसको पहनने से रक्तचाप ठीक रहता है। पैरों के रोग शान्त होते हैं। आँखें ठीक रहती हैं। इससे आयु बढ़ती है। पैरों की उँगली के मध्यभाग दबने से आँख, हृदय और पाचन तंत्र ठीक रहता है-

पादुकाधारणं कुर्यात् पूर्वं भोजनतः परम्।
पादरोगहरं वृष्यं चाक्षुष्य चायुषो हितम्।।

बिना खड़ाऊँ, जूता, चप्पल के घूमने से रोग, विष तथा अल्पायु होने का भय बना रहता है। शरीर में कृमियों का प्रवेश होता है। शरीर के ऊर्ध्व भाग की रक्षा के लिए पगड़ी, छाता धारण करना चाहिए। शरीर के अधः भाग की रक्षा के लिए जूता, चप्पल, खड़ाऊँ पहनना चाहिए।

दण्ड-दण्डिका-यष्टिका धारण-

प्राचीन काल में छड़ी, छाता लेकर चला जाता था। इससे जानवर, कुत्ता, सर्प, कीड़े-मकोड़े, शत्रु से रक्षा होती है। आजकल लोग आग्नेयास्त्र (रीवाल्वर, रायफल, बन्दूक, पेस्टल) तथा मोबाइल लेकर चलते हैं। इनसे भी रक्षा और सम्पर्क का क्रम बना रहता है।

शिखा का महत्त्व-

चोटियों को पर्वतशिखा कहते हैं। लपटों को अग्निशिखा कहते हैं। सहस्रार के पीछे भाग में, सिर पर स्थित केशराशि को नृशिखा कहते हैं। मनुष्य की शिखा उसकी तेजस्विता का प्रतीक है। शिखा में ऊर्ध्व तेज का निवास होता है। यह बढ़ने वाली तेजराशि को धारण करती है। इसमें युद्ध की देवी चामुण्डा का निवास होता है। मनुष्य के सर्वोच्च अंग में होने से यह सर्वोच्च धारणीय होती है। यह रुद्र देवता का शृङ्गार है। ऊर्ध्वयात्रा में यह तप को अपने मूलभाग में धारण करती है और ध्यान के समय देवीरूपा होती है।

शिखामुक्ति और शिखा बन्धन-

प्रातः कालिक स्नान से पूर्व शिखा को बन्धन मुक्त किया जाता है। शिखा को स्वच्छ तथा मलरहित करते हैं। ऐसा करने से वह जटा में नहीं बदलती है। शिखामुक्ति का मंत्र इस प्रकार है-

ब्रह्मपाशसहस्रेण रुद्रशूलशतेन च।
विष्णुचक्रसहस्रेण शिखामुक्तिं करोम्यहम्।।

इस मंत्र को बोलते हुए शिखा को खोलते हैं और स्नानादि के बाद आसन पर बैठ कर इसे मंत्र बोलते हुए बाँधते हैं।

प्रातःकाल सो कर उठने पर प्रायशः शिखा खुल जाती है। प्रातःकालिक शौचादि कृत्य के समय भी शिखा खुल जाती है। ऐसे में उसे मंत्र बोलते हुए बाँध कर ही पूजन आरम्भ करते हैं। शिखा बाँधने का पौराणिक मंत्र निम्नवत् है-

ऊर्ध्वकेशी विरूपाक्षि मांसशोणितभोजने।
तिष्ठ देवि शिखामध्ये चामुण्डे चापराजिते।।

शिखा को मोड़ कर तीन बार वृत्ताकार लपेटते हुए बाँधा जाता है। इसमें खींचने से खुलने वाली गांठ लगायी जाती है। ऐसी गाँठ न लगायें जिससे शिखा को काटना या नोचना पड़े। शिखा बाँधने की वैदिक विधि निंम्नवत् है-

विनियोगः- मानस्तोके शिखाबन्धनमंत्रस्य कुत्स ऋषिः जगती छन्दः रुद्रो देवता शिखा बन्धने विनियोगः। (पृथ्वी पर आचमन से जल छोड़ें।)

ॐ मानस्तोके तनये मानऽआयुषि मानो गोषु मा नो अश्वेषुरीरिषः।
मानो वीरान् रुद्रभामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्वाहवामहे।।

इस मंत्र को बोलते हुए शिखा को बाँधते हैं। ●

अध्याय-७

तिलक-आभरण

स्नान, वस्त्र धारण, केश प्रसाधन के पश्चात् तिलक एवं आभूषण आदि से स्वयं को अलंकृत कर देवपूजा तथा समाज में शुभ दिखने लायक अपने को बनाया जाता हैं। अपनी-अपनी परम्पराओं के अनुसार तिलक धारण एवं आभरण करने की प्रक्रिया होती है। इस कार्य में पुरुषों की अपेक्षा महिलायें ज्यादा सचेत एवं सक्रिय होती हैं।

दोनों आँखों के मध्य में तीसरा नेत्र होता है। इसे आज्ञाचक्र भी कहते हैं। योगीजन इसी में ध्यान केन्द्रित करते हैं। यह गुप्त नेत्र अत्यन्त दाहक तथा ऊर्जा युक्त होता है। अत: इस पर शीतलता दायक चन्दन, मिट्टी, केसर, अष्टगन्ध या हरिद्रा आदि से तिलक करने की विधि का वर्णन है। ललाट के ऊपर चन्दन तथा भस्म लगाने की विधि का भी वर्णन शास्त्रों में प्राप्त होता है। मस्तिष्क का ऊपर वाला भाग प्रमस्तिष्क कहलाता है। यह भाग सूचनाओं एवं संवेगों को ग्रहण एवं संप्रेषित करता है। यहीं पर **पिट्यूटरी ग्रन्थि** होती है, जो अंत:स्रावी होती है। यह हारमोन्स उत्पन्न करती है। अत: तिलक लगाने से आज्ञाचक्र एवं प्रमस्तिष्क शरीर के ये दोनों अवयव सक्रिय एवं शुभ रहते हैं।

सफेद तिलक लगाने से देव कार्य में सफलता मिलती है। पीला तिलक लगानें से धन की वृद्धि होती है। श्याम तिलक लगाने से उपद्रव की शांति होती है तथा लाल तिलक लगाने से अन्य जनों का वशीकरण होता है-

श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं भवेत्।
श्रीकरं पीतमित्याहुः वैष्णवं श्वेतमुच्यते।।

वीरमित्रोदयः।।

चिकित्साविज्ञान की दृष्टि से विचार करने पर तिलक और आभरण का महत्त्व अपूर्व लाभकारी सिद्ध होता है। गर्मी के दिनों में गर्मी से होने वाले सिर दर्द और आँख दर्द को चन्दन का लेप तत्काल शाँत कर देता है। आज्ञाचक्र हमेशा सक्रिय रहने से वहाँ पर चन्दन का तिलक करना शरीर के लिए आरोग्यकारक होता है। बीमारी के कालखण्ड में स्नान वर्जित होता है। उस समय चन्दन, अष्टगंध और सुगंधित वनस्पतियों का लेप स्वीकार्य होता है। अनुलेपन के अनेक लाभ

मनुष्य को मिलते हैं; जैसे- सौभाग्य, सौन्दर्य, वर्ण में निखार, अंगों में चमक, मानसिक उल्लास, दुर्गन्धनाश, सामाजिक प्रीति और ओज की वृद्धि। इसे चिकित्सा शास्त्र में भी चिह्नित किया गया है-

स्वेददौर्गन्ध्यवैवर्ण्यश्रमघ्नमनुलेपनम् ।
स्नानं येषां निषिद्धन्तु तेषामप्यनुलेपनम्।।
सुश्रुतचिकित्सा २४।।

सुगन्धि, इत्र, पुष्प रस, माला से व्यक्ति के व्यक्तित्व में निखार आता है, आयु की वृद्धि होती है, बल-पुष्टि की वृद्धि होती है तथा रोग, दरिद्रता का नाश होता है-

रक्षोघ्नं चौजस्य सौभाग्यकरमुत्तमम्।
सुमनोऽम्बररत्नानां धारणं प्रीतिवर्धनम्।।
सुश्रुतचिकित्सा २४।।

ऋग्वेदोक्त श्रीसूक्त में गन्ध चिकित्सा का वर्णन मिलता है। अपने शरीर से ही जब दुर्गन्ध निकलने लगे और वह स्वयं तथा दूसरे को असह्य हो जाये तो सुगन्धचिकित्सा से उसे ठीक किया जाता है-

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणिम्।

सुगन्ध से आयु और पुष्टि की वृद्धि होती है। अत: अम्लान (ताजा) माला को देर तक गले में पहना जाता है। माला कमर के नीचे न लटके इसका ध्यान रखना चाहिए। बासी, अति लम्बी, पुरानी माला, सड़ी-गली माला को नहीं पहनना चाहिए। नेता लोगों की तरह माला को तुरंत गले से निकालकर बाहर नहीं रखना चाहिए। अत्यन्त प्राचीन काल से ही पुष्प, पत्तियाँ, चन्दन आदि को भारतीय महिलायें अपने जूड़े में, ऋतु के अनुसार गूँथा करती थीं-

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरबकं चारुकर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्।।
मेघदूतम् उ. २।।

(जहाँ कुलवधूयें हाथ में लीला कमल सजातीं, बालों की चोटियों में खिली नई कुमुदनी गूंथती, मुखमण्डल को लोध्र के पराग से गौर वर्ण प्रदान करतीं, जूड़े में कुरबक के फूल सजातीं, कानों पर शिरीष के फूल खोंसती तथा कदम्ब के फूलों से मांग को सजाती थीं।)

तिलक लगाते समय नखों को शरीर में नहीं सटने देना चाहिए। अंगूठा से तिलक लगाने पर पुष्टि की प्राप्ति होती है। मध्यमा से आयु बढ़ती है तथा अनामिका से तिलक लगाने पर स्मृद्धि बढ़ती है। तर्जनी से तिलक लगाने पर मुक्ति मिलती है। तर्जनी से तिलक तथा गन्ध का प्रयोग पितरों के लिये किया जाता है-

अङ्गुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तो मध्यमाऽऽयुष्करी भवेत्।
अनामिकाऽन्नदा नित्यं मुक्तिदा च प्रदेशिनी।
एतैरङ्गुलिभेदैस्तु कारयेन्न नखं स्पृशेत्।।

वीरमित्रोदयः।।

महिलायें तिलक के बदले माथे पर बिंदिया, टिकुली या अन्य प्रकार के आभरणों का प्रयोग करती हैं। पुरुष भी विविध आकृतियों वाले तिलकों का प्रयोग शरीर पर करते रहे हैं। प्राचीन काल में पूरे माथे पर दश अंगुल चौड़ा तिलक करने का विधान होता था। ज्यादातर लोग चन्दन का तिलक करते थे। चन्दन के तिलक से सिर दर्द, आँख का रोग तथा उच्च रक्तचाप का रोग शान्त रहता है। गर्मी के दिनों में ललाट पर केवल चन्दन लेप मात्र से शरीर में फोड़े तथा घमौरियों का नामोनिशान नहीं होता है। दशाङ्गुल तिलक सर्वश्रेष्ठ होता है। इसे उत्तमोत्तम कहा जाता है- **दशाङ्गुलप्रमाणं तु उत्तमोत्तममुच्यते**। नवाङ्गुल उत्तम (श्रेष्ठ) कहलाता है। ५, ६, ७, ८ अङ्गुल का तिलक मध्यम में आता है। ४, ३; २ अङ्गुल का तिलक कनिष्ठ में आता है-

नवाङ्गुलं मध्यमं स्यादष्टाङ्गुलमतः परम्।
सप्तषट्पञ्चभिः पुण्ड्रं मध्यमं त्रिविधं स्मृतम्।।
चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलैः पुण्ड्रं कनिष्ठं त्रिविधं स्मृतम्।।

ललाट पर, भुजाओं पर, दोनों कानों के अधःकोरकों पर, हृदय पर, पेट पर तथा दोनों कंधों के नीचले हिस्से पर तिलक रचा जाता है। मूर्धा (सिर के उच्च भाग पर) में वासुदेव का नाम लेकर तिलक धारण करना चाहिए।

तिलक धारण मंत्र-

ललाटे केशवं विद्यान् नारायणमथोदरे।
माधवं हृदि. विन्यस्थ गोविन्द कण्ठकूपके।।

उदरे दक्षिणे पार्श्वे विष्णुरित्यमिधीयते।
तत्पार्श्वे बाहुमध्ये तु मधुसूदन-मनुस्मरेत्।।

त्रिविक्रमं कण्ठदेशे वामे कुक्षौ तु वामनम्।
श्रीधरं बाहुके वामे हृषीकेशस्तु कर्णके।।

पृष्ठे तु पद्मनाभं तु ककुदे दामोदरं स्मरेत्।
द्वादशैतानि नामानि वासुदेवेति मूर्धनि।।

ललाट में केशव, उदर में नारायण, हृदय में माधव, कण्ठघटी में गोविन्द, दक्षिण उदर में विष्णु, वाम उदर में मधुसूदन का स्मरण करना चाहिए। कंठ देश में त्रिविक्रम, बायें पेट में वामन, दोनों भुजाओं में श्रीधर, दोनों कानों में हृषीकेश, पीठ में पद्मनाभ, कुकुद (डील) में दामोदर तथा मूर्धा पर वासुदेव का स्मरण कर तिलक करना चाहिए।

तिलक के तीन भेद-

ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड तथा तिलक भेद से तीन प्रकार का तिलक होता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र में तीन लकीरें ऊपर की ओर जाती हैं। त्रिपुण्ड में भस्म से तीन चौड़ी लकीरें रची जाती हैं। चन्दन का तिलक किसी भी तरह से किया जा सकता है। लालवर्ण का गोल तिलक देवी के उपासक लगाते हैं।

गंगा मिट्टी से अपने ललाट पर जो ऊर्ध्व पुण्ड्र बनाता है वह सूर्य स्वरूप होता है और तम को विनष्ट कर देता है-

जाह्ववीतीरसम्भूतां मृदं मूर्ध्नाविभर्ति यः।
विभर्ति रूपं सोऽर्कस्य तमोनाशाय केवलम्।।

ब्राह्मण को ऊर्ध्व पुण्ड्र, क्षत्रिय को त्रिपुण्ड्र, वैश्य को अर्धचन्द्राकार तथा शूद्र को वर्त्तुल पुड्र (गोल तिलक) धारण करना चाहिए।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विजः कुर्यात् क्षत्रियस्तु त्रिपुण्ड्रकम्।
अर्द्धचन्द्रं तु वैश्यस्य वर्त्तुलं शूद्रजातिषु।।

अपने हाथ से लिखा हुआ स्तोत्र पढ़ने से, अपने लिए चन्दन घिसने से (चन्दन देवता के लिए घिसते हैं), स्वयं के पहनने के लिए स्वयं द्वारा माला गूथने पर इन्द्र की भी लक्ष्मी नष्ट हो जाती हैं। पुनः सामान्य मनुष्यों की बात कौन करे?

स्वहस्तलिखितं स्तोत्रं स्वयं घृष्टं च चन्दनम्।
स्वयं च ग्रथिता माला शक्रस्यापि श्रियं हरेत्।।

वीरमित्रोदयः।।

अतः प्रतिदिन स्नान करने के बाद रोली, अष्टगंध, चन्दन, मिट्टी, हवनभस्म आदि से तिलक लगाना चाहिए।

●

देवो भूत्वा देवं यजेत्

('मैं देवता हूँ' ऐसी भावना करते हुए देवों का यजन (जप-हवन) करना चाहिए।)

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये।। गीता ६/१२

(पवित्र आसन पर बैठ कर, मन को एकाग्र कर, इन्द्रियों को प्रशाँत रख कर अन्त: करण की शुद्धि के लिए योग (ध्यान) करना चाहिए। ॐ या प्राणायाम मंत्र का ध्यान करना चाहिए।)

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्।। गीता ७/२१

(चाहे जिस देव-देवी की पूजा की जाए अंतत: वह उस परमात्मा, अविनाशी, निर्गुण ईश्वर तक पहुँच जाती है; क्योंकि सभी देवों के लिए विधि का निर्माण वही गूढ प्रकाशवान् परमात्मा करता है।)

असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समाचरेत्।

यह शरीर मृत्यु को प्राप्त करने वाला है। यह पृथ्वी मृत्युलोक है। आराधना, ध्यान, योग, यज्ञ, पूजन के माध्यम से हम उस परम सत्य तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। यह प्रयत्न अनवरत करते रहना चाहिए।

अध्याय-८

संध्योपासना-आराधना

नित्य क्रिया करने के बाद स्नान करके मनुष्य शुद्ध वस्त्र धारण कर प्रतिदिन पूजन अवश्य करे-

ततो गृहार्चनं कुर्यादभीष्टसुरपूजनम्।
जलाभिषेकैः पुष्पैश्च धूपाद्यैश्च निवेदनम्।।
अपूर्वमग्निहोत्रं च कुर्यात् प्राग्ब्रह्मणे-नृप।।

विष्णुपुराणम्, ३/११/४१-४२

(गृहदेवता और इष्टदेवता की पूजा प्रतिदिन करनी चाहिए। शिव का जलाभिषेक तथा अन्य देवताओं को पुष्पांजलि, धूप-दीप-भोग का निवेदन कर प्रतिदिन अपूर्व अग्निहोत्र करना चाहिए। ब्रह्मा को आहुति देनी चाहिए।)

सूर्योदय से पूर्व स्नान करके प्राणायाम और गायत्री का जप करने वाला व्यक्ति इस सृष्टि में कभी विपत्ति ग्रस्त नहीं होता है। उसे पाप स्पर्श भी नहीं कर पाता है। गायत्री मंत्र का जप प्रतिदिन न्यूनतम दस बार अथवा एक माला (एक सौ आठ बार) अथवा एक हजार किया जाता है। एक हजार से अधिक भी कर सकते हैं। सहस्त्रजप श्रेष्ठ होता है। एक सौ आठ मध्यम जप होता है तथा दस बार जप अधम होता है। गायत्री जापक के पास भूत-प्रेत-पिशाच-राक्षस-सर्प-विषधर-व्याघ्र-दावानल-विस्फोट आदि नहीं फटकते। वेद जननी गायत्री माँ अपूर्व तेज प्रदान कर अपने जापक की रक्षा करती हैं।

राक्षसाश्च पिशाचाश्च महासर्पाश्च भीषणाः।
जपितान्नोपसर्पन्ति दूरादेव प्रयान्ति ते।।

जपेदहरहर्ज्ञात्वा गायत्रीं मनसा द्विजः।
सहस्त्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्।।
गायत्रीं यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते।।

लघुहारीतस्मृतिः, ४/४६-४९।।

दीर्घायु की प्राप्ति-

ऋषियों ने बहुत देर तक संध्या (गायत्रीजप) करने से दीर्घायु प्राप्त की। प्रतिदिन त्रिकाल संध्या करने से दीर्घायु, प्रज्ञा, यश, कीर्ति और ब्रह्मवर्चस्व की प्राप्ति होती है-

ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिञ्च ब्रह्मवर्चसमेव च।।

मनुस्मृतिः, ४/९४।।

प्रातः काल की संध्या करने से रात्रि का पाप और सायं संध्या करने से दिन का पाप भस्म हो जाता है और व्यक्ति निष्पाप होकर दीर्घायु आदि को प्राप्त करता है-

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठन् नैशमेनो व्यपोहति।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम्।।

मनु २/१०२।।

गायत्री जप करने का अधिकारी वही होता हैं जिसने यज्ञोपवीत धारण कर रखा हो। बिना यज्ञोपवीत के गायत्री मंत्र जप का कोई फल नहीं होता है। यज्ञोपवीत को मनु महाराज ने यज्ञ सूत्र कहा है। अतः इसे अवश्य धारण करना चाहिए।

भस्म-तिलक धारण-

आसन पर बैठ कर आत्मशुद्धि करने के पश्चात् तिलक या भस्म अवश्य धारण करना चाहिए। श्राद्ध में, यज्ञ में, जप में, हवन में, देवता पूजन में तिलक या भस्म अवश्य धारण करना चाहिए-

श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने।
धृतत्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः।।

कात्यायनः।।

त्रिपुण्ड्र, तिलक धारण के अनेक मंत्र प्रचलित हैं। **'ॐ त्र्यम्बकं यजामहे'**, **'ॐ त्र्यांयुषं जमदग्नेः'**, **'ॐ बृहस्पति अतियदर्यो'**, **'ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्** अथवा **ॐ कस्तूरीतिलकं ललाटपटले'** आदि मंत्रों में से किसी भी मंत्र से त्रिपुण्ड्र या तिलक धारण करते हैं। भस्म, रोली, अक्षत, चन्दन, अष्टगंध, केसर, गंगा मिट्टी आदि से भी तिलक रचते हैं।

यज्ञोपवीत-

यज्ञोपवीत को ब्रह्मसूत्र, यज्ञ सूत्र, जनेऊ प्रभृति नाम से जाना जाता है। इस सूत्र को धारण करने के बाद ही द्विजत्व की प्राप्ति होती है। ब्रह्मविद्या की साधना में प्रवेश, दिव्यास्त्रों की साधना की पात्रता इसके बिना संभव नहीं है। यह यज्ञ और ब्रह्म के निकट ले जाने वाला सूत्र होता है। इसलिए इसे 'यज्ञोपवीत' कहते हैं। यह 'मूंज' (लम्बा घास जो पवित्र माना जाता है) का कर्पास से तकली द्वारा बनाया जाता है। इसे पवित्र कर्मा व्यक्ति ही बनाता है। यह ९६ अंगुल का बनता है।

यज्ञोपवीत का गणित-

- **मनुष्य का शरीर अपने हाथ से साढ़े तीन हाथ का होता है।**
- **एक हाथ में २४ अंगुल होते हैं।**
- अत: २४ × ३½ = ८४ अंगुल = साढ़े तीन हाथ।
- **देवता का शरीर अपने हाथ से ४ हाथ का होता है।**
- अत: २४ × ४ = ९६ अंगुल।

  सम्पूर्णत: ९६ अंगुल का लम्बा सूत्र तीन भाग में मोड़कर तीन ग्रन्थियों से ग्रथित कर बनाया जाता है; जिसे व्यक्ति धारण करता है।
- **इस यज्ञोपवीत को धारण कर 'अघमर्षण' एवं 'द्रुपदादिव मुमुचानः' मंत्र के द्वारा व्यक्ति अपने को प्रतिदिन निष्पाप करता है।**
- **वह प्रार्थना करता है- मैं ८४ अंगुल वाला मनुष्य इस दिव्य ब्रह्मसूत्र को धारण कर ९६ अंगुल वाला देवता बन जाऊँ।**
- **मानव से देवता बनने की प्रक्रिया का अङ्ग है यज्ञोपवीत।**
- **मनुष्यत्व से देवत्व में प्रवेश दिलाने का मंत्र है- गायत्री और तंत्र है- प्राणायाम और इसकी आवश्यक योग्यता है- ब्रह्मसूत्र।**

पूजन की दिशा-

पूजन हमेशा पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके करना चाहिए- **प्राङ् मुखो उदङ् मुखो वा अर्चयेद्।** दिशा अज्ञान या रात्रि की स्थिति में पूर्व दिशा की कल्पना कर पूजन करना चाहिए। पूर्व मुख पूजन करने से सिद्धि प्राप्ति तथा ब्रह्मतत्त्व की प्राप्ति होती है। उत्तरमुख होकर पूजन करने से लक्ष्मी तथा आरोग्य की प्राप्ति होती है। अत: पूर्व या उत्तर मुख ही पूजन करते हैं। केवल सायंसंध्या पश्चिम मुख होकर करते हैं।

संध्या का महत्त्व-

यदि इस सृष्टि में कोई ब्रह्मा-विष्णु-महेश की तरह तेजस्वी बनना चाहता है, यदि कोई इस पृथ्वी पर अपराजेय बनना चाहता है, यदि कोई इस सृष्टि में अमर बनना चाहता है, यदि कोई इस धरती पर अप्रतिहतगति बनना चाहता है तो उसे त्रिकालसंध्या करनी चाहिए। यदि सृष्टि का रहस्यवेत्ता बनने की आकाँक्षा हो; यदि भूत-भविष्य-वर्तमान का स्पष्ट ज्ञान चाहते हैं तो तीन वर्षों तक त्रिकालसंध्या क़रके अपने भीतर हो रहे परिवर्तन का परीक्षण करना चाहिए। मात्र तीन वर्ष की त्रिकाल संध्या से ही जीवन निष्पाप, निर्मल, कामादि दोष रहित और अपराजेय हो जायेगा। संध्या त्रिकाल में करने से ही व्यक्ति ऋषित्व की प्राप्ति कर लेता है। त्रिकाल संध्या करने वाला जो कुछ कहता है वह घटित होता है। शाप और वरदान की क्षमता त्रिकाल संध्या से आती है। द्विकाल संध्या करने से व्यक्ति निष्पाप हो अपूर्व तेज को प्राप्त कर लेता है। प्रातः संध्या मात्र करने से व्यक्ति इस धरती पर समृद्धि और दीर्घायु को प्राप्त कर यशस्वी होता है। उसके सामने सामान्यजन नहीं टिक पाता है। संध्या और हवन प्रतिदिन करने से जीवन में इतना कुछ अप्रत्याशित मिलता है जिसे देख कर बाहरी जगत् का व्यक्ति आश्चर्यचकित रह जाता है। सूर्योदय से एक घंटा पूर्व और सूर्यास्त से एक घंटा पूर्व जो भी पवित्र होकर आसन पर बैठ कर संध्या-वंदन कर ह़वन कर लेगा उसकी प्रत्यक्ष मदद देवता करते हैं। यह अनुभूत सत्य है। अतः यहाँ जीवन पद्धति का अनिवार्य अंग संध्या उपास़ना कर्म दिया जा ऱहा है-

प्रातः/मध्याह्न/सायं/संध्या

ज्ञात-अज्ञात प्रतिदिवसीय पाप की निवृत्ति के लिये किया जाने वाला कर्म 'संध्या' है। प्रातः स्नान करके आसन पर पूर्वमुख बैठ कर स्वयं के ऊपर जल कुशा या आचमनीय से छिड़कते हुये मंत्र बोलें-

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।

आसन-विनियोगः-

दायें हाथ में जल लेकर बोलें-

पृथ्वीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसने विनियोगः।

जल जमीन पर गिराकर कनिष्ठा ऊँगली से पृथ्वी का स्पर्श कर मंत्र बोलें-

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्।।

प्रातःसंध्या संकल्पः-

हाथ में जलाक्षत-पुष्प लेकर बोलें-

हरिः ॐ तत्सद् अद्य एतस्य श्री ब्रह्मणोऽहनि द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे...पुण्यक्षेत्रे कलियुगे कलिप्रथमचरणे....संवत्सरे... मासे....पक्षे.....तिथौ......वासरे.....गोत्रोत्पन्नः......शर्मा/वर्मा/ गुप्त नामाहं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं मम दुरितक्षयपूर्वकं निष्पापत्वं संम्प्राप्तये प्रातः/मध्याह्न/सायं/संध्योपासनं कर्म करिष्ये।

पुष्प, जलाक्षत पृथ्वी पर या किसी पात्र में छोड़ें।

(प्रातः/मध्याह्न/सायं में से किसी एक ही शब्द का प्रयोग करें। जिस काल में संध्या कर रहे हों उसी का उल्लेख करें।)

अघमर्षणविनियोगः-

अस्याघमर्षणसूक्तस्य अघमर्षणऋषिः अनुष्टुप् छन्दो भाववृतो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः। (पृथ्वी पर जल छोड़ें।)

मन्त्रः- ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः।। एक आचमनीय जल पियें।

आत्मरक्षार्थ गायत्री मंत्र पढ़ कर अपने चारों ओर जल छिड़कें।

प्राणायामविनियोगः-

हाथ में जल लेकर बोलें-

ॐ कारस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्रीछन्दः परमात्मादेवता सप्तव्याहृतीनां विश्वामित्र-जमदग्नि-भरद्वाज-गौतम-अत्रि-वसिष्ठ-कश्यपा ऋषयः, गायत्री-उष्णिग्-अनुष्टुप्-बृहती-पंक्ति-त्रिष्टुप्-जगत्यः छन्दांसि, अग्नि-वायु-आदित्य-बृहस्पति-वरुण-इन्द्र-विश्वेदेवादेवताः,

तत्सवितुरिति विश्वामित्र ऋषिः, गायत्री छन्दः, सविता देवता, शिरसः प्रजापतिर्ऋषिः, त्रिपदा गायत्री छन्दः, ब्रह्माऽग्निवायुसूर्या देवताः प्राणायामे विनियोगः।। (पृथ्वी पर जल छोड़ें।)

प्रत्येक मनुष्य को कम से कम तीन प्राणायाम प्रतिदिन करना चाहिए। सोलह प्राणायाम को करने वाला व्यक्ति एक वर्ष के भीतर ही ब्रह्मतेज को प्राप्त कर लेता है। इसी से समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

प्राणायाममंत्रः-

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।।

पद्मासन या सिद्धासन लगा कर दायें अंगूठे से दायीं नासिका को बंद करते हैं। श्वास को भीतर खींच कर रोकते हैं। तीन बार ऊपरलिखित मंत्र को मन में जपते हैं। पुनः श्वास को दायीं नासिका से बाहर निकालते हैं। बाहरी श्वास को पुनः दायीं नासिका से अंदर लाकर रोकते हैं और पुनश्च प्राणायाम मंत्र को तीन बार तेजी से जपते हैं और पुनः बायीं नासिका से श्वास को बाहर करते हैं। यह एक प्राणायाम होता है। इस प्रकार कुल तीन या सोलह प्राणायाम प्रतिदिन करना चाहिए।

त्रिर्जपेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते।।

कात्यायनस्मृतिः, ११/८।।

अपामुपस्पर्शनविनियोगः-

सूर्यश्चमेति नारायण ऋषिः प्रकृतिश्छन्दः सूर्यो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।। (पृथ्वी पर जल छोड़ें।)

ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा।।

(मंत्र बोल कर एक आचमन करें।)

●

मध्याह्नसंध्या

[मध्याह्नसंध्या में ऊपर के मंत्र का प्रयोग नहीं करते हैं। इसके लिए विनियोग और विशिष्ट मंत्र निम्नवत् हैं-

अपामुपस्पर्शनविनियोगः- आपः पुनन्त्विति विष्णुर्ऋषिः अनुष्टुप्छन्द आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः। (पृथ्वी पर जल छोडें।) नीचे का मंत्र पढ़कर एक बार आचमन करें-

मंत्र- **ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रह ॐ स्वाहा।]**

सायंसंध्या

[सायंसंध्या में विनियोग और विशिष्टमंत्र का प्रयोग निम्नवत् होता है-

अपामुपस्पर्शनविनियोगः- अग्निश्च मेति रुद्र ऋषिः, प्रकृतिश्छन्दः, अग्निर्देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः। (पृथ्वी पर जल छोड़ें।) नीचे का मंत्र पढ़ कर एक बार आचमन करें।

मंत्र- **ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यदह्ना पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा।।]**

(आगे का मंत्र प्रयोग सभी संध्याओं में समान रूप से प्रयुक्त होता है।)

●

मार्जनविनियोगः-

आपो हिष्ठेत्यादि ऋचस्य सिन्धुद्वीप ऋषिर्गायत्रीछन्दः आपोदेवता मार्जने विनियोगः।

ॐ आपो हि ष्ठा मयो भुवः ॐ ता न ऊर्जे दधातन
ॐ महे रणाय चक्षसे ॐ यो वः शिवतमो रसः
ॐ तस्य भाजयतेह नः ॐ उशतीरिव मातरः
ॐ तस्मा अरं गमाम वः <u>ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ</u>
ॐ आपो जनयथा च नः

'यस्य क्षयाय जिन्वथ' बोलते समय सिर पर पानी नहीं पड़ने दिया जाता है।

शिरस्सेकविनियोगः-

ॐ अस्य द्रुपदादिवमंत्रस्य कोकिलोराजपुत्र ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः आपो देवता शिरस्सेके विनियोगः।। (पृथ्वी पर जल छोड़ें।)

बायीं हथेली पर पात्र में जल लेकर दायीं हथेली से ढ़क कर मंत्र बोलते हुए अभिमंत्रित कर अपने सिर पर छिड़कते हैं-

मंत्र-

ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव।
पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः।।

अघमर्षणविनियोगः-

अस्याघमर्षणमंत्रस्य अघमर्षणऋषि अनुष्टुप् छन्दो भाववृत्तो देवताऽघमर्षणे विनियोगः। (पृथ्वी पर जल छोड़ें।)

दाहिने हाथ में जल लेकर नासिका से लगाकर श्वास रोके हुए मंत्र को पढ़ कर यह भावना करें कि यह जल बायीं नासिका से हृदय में जाकर और तत्पश्चात् दायीं नासिका से पाप को निकाल रहा है। उस जल को बायीं ओर फेंक दें या पाप स्वरूप उस जल को शिला पर पटक मारें।

मंत्र-

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः।।

आचमनविनियोगः-

अन्तश्चरसीति तिरश्चीन ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः। (पृथ्वी पर जल छोड़ें।)

मंत्र बोलते हुए एक आचमनीय जल पियें-

ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारः आपो ज्योती रसोऽमृतम्।।

सूर्यार्घ्यदानम् -

पूर्वमुख एक पैर के चौवे (अधस्तल के अगले भाग) पर खड़ा होकर गायत्री मंत्र पढ़ते हुए तीन बार (अंजलि से या पात्र से) अर्घ्य दें-

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।।

प्रातः मध्याह्न संध्या का सूर्यार्घ्य जल स्थल दोनों में देते हैं पर सायं संध्या का अर्घ्य जल में नहीं देते हैं। सायं काल में बैठकर अर्घ्य देते हैं।

सूर्योपस्थानम्-

पूर्वमुख खड़ा होकर अंजलि बनाकर सूर्य की ओर देखते हुए विनियोग पूर्वक मंत्र बोलते हुए प्रणाम करें।

१. प्रथमविनियोगः-

उद्वयमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिरनुष्टुप् छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः। (पृथ्वी पर जल छोड़ें।)

मंत्र-

ॐ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।।

२. द्वितीयविनियोगः-

उद्वयमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिर्गायत्रीछन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः। (पृथ्वी पर जल छोड़ें।)

मंत्र-

ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्।।

३. तृतीयविनियोगः-

चित्रमित्यस्य कौत्स ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः। (पृथ्वी पर जल छोड़ें।)

मंत्र-

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ७ं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।।

४. चतुर्थविनियोगः-

तच्चक्षुरिति दध्यङ्ङथर्वणऋषिः पुरउष्णिक्छन्दः सूर्योदेवता सूर्योपस्थाने विनियोगः। (पृथ्वी पर जल छोड़ें।)

मंत्र-

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।

न्यासः-

ॐ हृदयाय नमः-	हृदय का स्पर्श करें।
ॐ भूः शिरसे स्वाहा-	शिर का स्पर्श करें।
ॐ भुवः शिखायै वषट्-	शिखा का स्पर्श करें।
ॐ स्वः कवचाय हुम्-	दोनों कंधों का स्पर्श करें।
ॐ भूर्भुवः नेत्राभ्यां वौषट्-	दोनों नेत्रों का स्पर्श करें।
ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट्-	बायीं हथेली पर मध्यमा-तर्जनी से थाप देकर सिर के चारों ओर घुमाकर चुटकी बजायें।

(ऊपर के चारों विनियोगों को एक साथ पढ़ कर भी किया जाता है और चारों सूर्योपस्थान मंत्रों को एक साथ बोलने की भी परम्परा है।)

गायत्रीमंत्रविनियोगः-

ॐ कारस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्री छन्दः, त्रिव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिः गायत्री-उष्णिग्-अनुष्टुप्-छन्दांसि, अग्नि-वायु-आदित्या देवताः, तत्सवितुरिति विश्वामित्रऋषिः गायत्रीछन्दः सविता देवता जपे विनियोगः। (पृथ्वी पर जल छोड़ें।)

ध्यानम्-

**ॐ श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेयवसना तथा।
श्वेतैर्विलेपनैः पुष्पैरलंकारैश्च भूषिता।
आदित्यमण्डलस्था च ब्रह्मलोकगताऽथवा।
अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा।।**

गायत्र्यावाहनम्-

ॐ तेजोऽसीति देवा ऋषयो गायत्री छन्दः शुक्रो देवता गायत्र्यावाहने विनियोगः। (पृथ्वी पर जल छोड़ें।)

मंत्र- ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामाऽसि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि।

गायत्र्युपस्थानम्- अस्य तुरीयपदस्य विमल ऋषिः परमात्मा देवता गायत्री छन्दः गायत्र्युपस्थाने विनियोगः। (पृथ्वी पर जल छोड़ें। खड़ा होकर गायत्री माँ को अंजलि बांधकर प्रणाम करते हैं।)

ॐ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि। न हि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापत्।।

गायत्रीशापविमोचनम्-

बहुरूपिणि गायत्रि दिव्ये संध्ये सरस्वति।
अजरे अमरे देवि ब्रह्मयोनि नमोऽस्तु ते।।

भो गायत्री मातः ब्रह्म-विश्वामित्र-वसिष्ठ शापाद् विमुक्ता भव। (पृथ्वी पर जल छोड़ें।)

गायत्री मंत्र- ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

गायत्री मंत्र का न्यूनतम दस मंत्र, एक माला (१०८ बार) अथवा एक हजार या इससे अधिक प्रतिदिन जप करना चाहिए। ऐसा करने वाला व्यक्ति इस पृथ्वी पर सब कुछ प्राप्त कर लेता है और वह अपने जीवन में ही ऋषित्व को प्राप्त कर लेता है।

प्रदक्षिणा मंत्र- नीचे लिखे मंत्र को बोलते हुए प्रदक्षिणा करें-

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिणा पदे पदे।।

ॐ गायत्रै नमः। इदं न मम। बोलते हुए पृथ्वी पर जल छोड़ते हैं। इस प्रकार से संध्या कर्म सम्पूर्ण होता है।

●

मनुस्मृति, संवर्त्त स्मृति, कात्यायन स्मृति आदि में प्रातः कालिक गायत्री जप को उदित होते सूर्य के सम्मुख खड़ा होकर करने को कहा गया है। सूर्योदय से पूर्व तारा के रहते श्रेष्ठ संध्या, तारा लुप्त होने पर मध्यम संध्या, सूर्योदय काल में कनिष्ठ संध्या होती है-

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
कनिष्ठा सूर्यसहिता प्रातःसंध्या त्रिधा स्मृता।।

●

मध्याह्न संध्या दोपहर में की जाती है।

●

सायं संध्या सूर्य के रहते उत्तम, सूर्य के अस्त होने पर मध्यम और तारा निकल जाने पर कनिष्ठ फल देने वाली होती है-

उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा।
कनिष्ठा तारकोपेता सायंसंध्या त्रिधा स्मृता।।

गायत्री जप करने के बाद प्रतिदिन प्रातः काल हवन का विधान है। जो व्यक्ति, इतना कार्य प्रतिदिन करता है वह दीर्घायु, श्रीमान् और अपूर्व कीर्तिलब्ध होता है।

नदी, तड़ाग, तीर्थ जल में भीतर खड़ा होकर मार्जन करना चाहिए। प्राणायाम जल के भीतर और बाहर दोनों जगहों में किया जाता है। उपस्थान (सूर्य नमस्कार) जल स्थल दोनों में हो सकता है। गायत्री जप जल में नहीं करना चाहिए-

मार्जनं जलमध्ये तु प्राणायामो यतस्ततः।
उपस्थानं ततः पश्चात्सावित्री जप उच्यते।।

बृहन्नारदीयः।।

गोभिलस्मृति में रहस्वोद्घाटन करते हुए कहा गया है- गायत्री विद्या अग्निमुखी है। अतः इसका जप स्थल पर खड़ा होकर करना चाहिए-

कदाचिदपि नो विद्वान् गायत्रीमुदके जपेत्।
गायत्र्यग्निमुखी यस्मात् तस्मादुत्थाय ताञ्जपेत्।।

वृद्धमनु ने कहा है- यदि गीला कपड़ा हो (अर्थात् शुष्क वस्त्र पहनने को न हो) तो जल में ही जप करें, क्योंकि गीला कपड़ा स्थल में वर्जित है। यह निर्देश सिद्ध करता है कि गायत्री का जप करना आवश्यक है। यह वस्त्राभाव और विवशता में विकल्प है-

यदि स्यात् क्लिन्नवासा वै गायत्रीमुदके जपेत्।
अन्यथा तु शुचौ भूम्यां कुशोपरिसमाहितः।।

प्रातःकाल में सूर्योदय के बाद तक हवन करने का विधान है। एक हाथ आकाश में जब सूर्य ऊपर उठ जाता है तो प्रातःकालीन हवन समाप्त कर दिया जाता है-

हस्तादूर्ध्वं रविर्यावत् गिरिं हित्वा न गच्छति।
तावद् होमविधिः पुण्यो नात्येत्युदितहोमिनाम्।।

कात्यायनस्मृतिः, ९/२।।

हवनीय पदार्थों में यव प्रमुख होता है। उसके बाद अक्षत प्रमुख होता है। तिल सृष्टि का प्रथम अन्न है। भगवान् विष्णु ही तिलरूप में पृथ्वी पर प्रकट हुए थे- **'अन्नं प्राह स्वयं विष्णुः'**। अतः तिल, तिलार्द्ध यव, यवार्द्ध अक्षत मिश्रित कर हवनीय सामग्री बनायी जाती है।

हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु व्रीहयः स्मृताः।

कात्यायनस्मृतिः, ९/१०।।

प्रज्वलित अग्नि में ही हवन करना चाहिए। प्रतिदिवसीय हवन से आरोग्य, आयु और श्री की प्राप्ति होती है-

तस्मात् समिद्धे होतव्ये नासमिद्धे कदाचन।
आरोग्यमिच्छितायुश्च श्रियमात्यन्तिकीं पराम्।।

कात्यायनस्मृतिः, ९/१३।।

पूजन-जप-हवन जितना कष्ट साध्य होता है उतना ही उसका प्रतिफल प्राप्त होता है। जो दिव्य पूजन-जप-हवन करेगा वह दिव्य प्रतिफल को प्राप्त करेगा- **कृच्छ्रात् श्रेयो ह्यवाप्यते।**

जप-पूजन-हवन शाँत तथा निरुपद्रव स्थान पर करना चाहिए। प्रयासपूर्वक एक स्थान पर किया हुआ जप-हवन उस स्थान में सिद्धि को उत्पन्न करता है। यदि कभी कहीं अन्यत्र प्रवास करना पड़े तो भी अपनी दिनचर्या और पूजा पद्धति का परित्याग नहीं करना चाहिए। पूजन-जप-तप-हवन तथा ध्यान तपस्या का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। अतः भगवान् श्री कृष्ण ने इसे संन्यासियों, मनीषियों द्वारा भी त्याज्य नहीं कहा है। केवल निष्काम भाव द्वारा करने को कहा है-

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।

श्रीमद्भगवद्गीता, १८/५।।

सामान्य से सामान्य मनुष्य को भी प्रतिदिन थोड़ा सा जप-तप अवश्य करना चाहिए। यह स्वल्प (थोड़ा) धर्म (जप-पूजन-हवन-तप) भी बड़ी से बड़ी विपत्तियों से बचाता है- **स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।**

पूजा स्थान-

पुण्य क्षेत्र, नदी का तीर, गुफा, पर्वत, तीर्थ क्षेत्र, संगम तट तथा मंदिर पूजन के लिए श्रेष्ठ होता है। बेल वृक्ष के नीचे, तुलसी के पास, गोशाला में, शिवालय में, पीपल-आंवला के मूल में, जल के भीतर जप करने का अपूर्व लाभ होता है। शिव, सूर्य, अग्नि, दीप और गुरु के सन्निकट किया हुआ जप प्रशस्त होता है। घर में किया जप सामान्य, गोशाला में किया जप शतगुणित, नदी में किया जप कोटि गुणित तथा शिवमंदिर में किया जप अनन्त फल को देता है-

शिवस्य सन्निधाने च सूर्याग्न्योर्वा गुरोरपि।
दीपस्य ज्वलितस्यापि जपकर्मप्रशस्यते।।

गृहे जपं समं विद्याद् गोष्ठे शतगुणं भवेत्।
नद्यां शतसहस्रं स्यादनन्तं शिवसन्निधौ।।

समुद्रतीरे च ह्रदे गिरौ देवालयेषु च।
पुण्याश्रमेषु सर्वेषु जपं कोटिगुणं भवेत्।।

पुरश्चरणदीपिका।

आंसन-

कुश का आसन पवित्रतम माना जाता है। कम्बल, अजिन (मृगचर्म), पट्ट (कपड़ा), रुई का आसन शुभ होता है। सुखपूर्वक देर तक बैठने में सहायक आसन होना चाहिए। वंश आसन, पत्थर आसन, धरती आसन, घास-फूस का आसन, पत्ते का आसन कभी प्रयोग में नहीं लाना चाहिए। (पुरश्चरणचन्द्रिका)।

माला-

'सर्वकर्मसमृद्ध्यर्थं जपेद्रुद्राक्षमालया' के अनुसार सभी प्रकार के जप के लिए रुद्राक्ष की माला श्रेष्ठ होती है। स्फटिक माला, मोती माला, कमलगट्टा माला, चन्दन माला, मूँगा माला से भी जप करना श्रेयस्कर होता है। वैष्णव जन तुलसी की माला, गणेश के भक्त हाथी दाँत की माला तथा भगवती पीताम्बरा बगला के भक्त हरिद्रा की माला का प्रयोग करते हैं। माला में १०८ संख्या मनकों की होती है। एक मनका मेरु होता है। इसका उल्लंघन नहीं करते हैं। मेरु सृष्टि

का केन्द्र है। माला में मेरु केन्द्र होता है। यही जप का साक्षी होता है। अतः जपमाला में 'मेरु' अवश्य देना चाहिए। मेरु रहित माला से जप नहीं करते हैं।

माला को हमेशा ढक कर जप करना चाहिए अन्यथा जप से उत्पन्न शक्ति विलीन हो जाती है। यदि माला न मिले तो 'कर माला' उंगली पर जप किया जाता है। अनामिका मध्य पर्व, उसके नीचे, कनिष्ठा नीचे से ऊपर, अनामिका ऊर्ध्व पर्व, मध्यमा ऊर्ध्व पर्व और तर्जनी का ऊपर से नीचे तक का तीन पर्व कुल मिला कर १० संख्या होती है। मध्यमा का मध्य और नीचे का पर्व 'मेरु' संज्ञक होता है। कुल १० बार जप करने से १ माला जप माना जाता है।

मौन मानसिक जप-

जप हमेशा मौन होकर मानसिक करना चाहिए- **उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्त्रो मानसःस्मृतः।। याज्ञवल्क्यः।**

माला के बीच में लॉकेट, जीवत्पुत्रिकादेवी या अन्य धार्मिक वस्तुओं को नहीं गूंथते हैं- **नान्यमध्ये प्रोक्तव्यं पुत्रजीवारिकं च यत्।**

हरेक मनके (दाने) के बीच में ब्रह्मग्रन्थी (दाहिने से घुमाकर दी गांठ) दी जाती है। बिना ब्रह्मग्रन्थी के भी मजबूत धागे की बनी माला से जप किया जाता है- **अथवा ग्रन्थिरहितं दृढरज्ज्वासमन्वितम्।** जप से पहले निरीक्षण कर लेना चाहिए कि यह माला टूटेगी तो नहीं? दृढ़ सूत्र वाली माला से ही जप करें- **दृढसूत्रं नियुंजीत जप्ये त्रुट्यति नो यथा।।** यदि जप करते समय माला टूट जाए तो १ माला महामृत्युंजय या रुद्राभिषेक करना चाहिए। जपमध्य माला का टूटना अशुभ का सूचक होता है।

माला की प्रार्थना-

जप आरम्भ करने से पहले माला को प्रणाम करते हुए इस मंत्र को बोला जाता है-

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव।।

(हे सर्वशक्तिस्वरूपिणि! महामाये! माले! अम्बे! धर्मार्थकाममोक्ष तुझमें ही निहित हैं। अतः मुझे सिद्धि दें।)

जप की संख्या-

जिस किसी मंत्र का जप करें उसकी संख्या स्वयं को ज्ञात होनी चाहिए। बिना संख्या गिने किया हुआ जप निष्फल हो जाता है-

यथाशक्तिः जपं कुर्यात् संख्ययैव प्रयत्नतः।
असंख्यातं च यज्जप्यं यस्मात् तन्निष्फलं भवेत्।।

अंगुली के अग्रभाग से न जपें-

अंगुली के अग्रभाग से गिनने पर, मेरु के लंघन करने पर तथा बिना संख्या गिने जपने पर किया जप निष्फल हो जाता है-

अङ्गुल्यग्रे तु यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलङ्घने।
असंख्यातं च यज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्।।

जप श्रेष्ठ तप है-

'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' गीता में कहकर भगवान् श्रीकृष्ण ने जप यज्ञ को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। तंत्र ग्रंथों में भी कहा गया है- **'जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्वरानने'** हे देवि! जप से ही सिद्धि होती है, जप से ही सिद्धि होती है, जप से ही सिद्धि होती है।

क्या करें?

गायत्री मंत्र का जप यज्ञोपवीत धारण कर ही किया जाता है। यदि कोई यज्ञोपवीत नहीं पहना है तो उसे अन्य मंत्रो की साधना करनी चाहिए।

१. **'ॐ'** इस मंत्र का प्रातः सायं जप करें। इसे प्रणव कहा जाता है।

२. **ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**
३. **ॐ नारायणाय नमः**
४. **ॐ विष्णवे नमः**
— ये तीनों मंत्र विष्णु भगवान् के हैं। इनके जप से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है। इनसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

५. **ॐ नमः शिवाय** भगवान् शिव का पंचाक्षर मंत्र है। इसके जप से शीघ्र ही सिद्धि मिलती है।

६. **ह्रीं ॐ नमः शिवाय ह्रीं** - भगवान् शिव का अष्टाक्षर मंत्र है।

७. **ॐ जूँ सः** - यह त्र्यक्षर मृत्युंजय मंत्र है।

८. **ॐ ब्रह्मणे नमः** - यह ब्रह्मा जी का मंत्र है।

९. **ॐ घृणिः सूर्य आदित्यः** - यह सूर्य भगवान् का मंत्र है।

१०. **ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे**-यह दुर्गा देवी का नवार्ण मंत्र है।

११. **ॐ गं गणपतये नमः** - यह श्री गणेश जी का मूल मंत्र है।

१२. **ॐ हं हनुमते नमः** - यह श्री हनुमान जी का मूल मंत्र है।

१३. **ॐ नमो भगवते आंजनेयाय महाबलाय स्वाहा-** ,, ,,

१४. **ह्रीं** - यह श्री महालक्ष्मी का मंत्र है।

१५. **श्रीं** - यह श्री महासरस्वती का मंत्र है।

१६. **क्रीं** - यह श्री महाकाली का एकाक्षर मंत्र है।

१७. **राम** - यह विष्णु भगवान् का सिद्ध मंत्र है।

१८. **ॐ ध्वं फट्** - यह चण्डेश्वर मंत्र है।

१९. **ह्रीं बटुकाय आपदुद्धारणाय कुरु कुरु बटुकाय ह्रीं**
- यह बटुकभैरव मंत्र है।

२०. **ॐ ह्रीं हुं दुर्गायै नमः** - यह अष्टाक्षर दुर्गामंत्र है।

२१. **ॐ ह्रीं श्रीं शीतलायै नमः**- यह शीतलादेवी का मंत्र है।

२२. **ॐ नमो भगवत्यै धरिण्यै धरणि धरे धरे स्वाहा** - यह पृथ्वी मंत्र है।

२३. **ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्**
- यह गायत्री मंत्र है।

२४. **ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं लक्ष्मीवासुदेवाय नमः** - यह लक्ष्मी नारायण मंत्र है।

२५. **ॐ नमो विष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहा** - यह दधिवामन मंत्र है।

२६. **क्षिपः ॐ स्वाहा** - यह गरुड मंत्र है।

२७. **हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुँ फट्** - यह श्री हनुमान् जी का मंत्र है।

२८. **क्रींक्रींक्रीं ह्रींह्रीं हूँहूँ दक्षिणेकालिके क्रींक्रींक्रीं ह्रींह्रीं हूँहूँ स्वाहा** -
यह दक्षिणाकाली का मंत्र है।

२९. **ॐ हौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः**

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिवबन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।
भूर्भुवः स्वरों जूँ सः हौं ॐ

यह महामृत्युञ्जय मंत्र है। इसके प्रतिदिवसीय जप से अकालमृत्यु का हरण और दीर्घायु की प्राप्ति होती है। महामृत्युंजय मंत्र के अनेक भेद हैं।

३०. **मृतसंजीवनी विद्या-**

ॐ ह्रीं ह्रीं वं वं ऐं ऐं मृतसंजीवनि विद्ये मृतमुत्थापयोत्थापय क्रीं ह्रीं ह्रीं वं स्वाहा।।

यह विद्या अकालमृत्युहरण करने वाली, मारकेश दोष, मारक दोष नाशक और जीवन दायिका है। महामृत्युंजय मंत्र और इसका एक साथ जप करने

या कराने से अल्पायु दोष का नाश और दीर्घायु की प्राप्ति होती है। इन दोनों मंत्रों द्वारा एक साथ प्रयोग करके अनेक परिणाम प्राप्त किये जा चुके हैं। ये दोनों सम्मिलित प्रयोग अकाल मरण को अवश्यमेव रोक देते हैं।

३१. **आकर्षण मंत्र-**

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवि भगवति हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।।

घर से बाहर क्रोध, अपमान, हीनता, मतिभ्रम के कारण निकले व्यक्ति को बुलाने के लिए इस मंत्र का प्रयोग किया जाता है। पचीस हजार, एक्यावन हजार या सवा लाख जप का अनुष्ठान परिणामदायक होता है।

३२. **कात्यायनी मंत्र-**

ॐ क्लीं कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः।। क्लीं ॐ

इस मंत्र का जप सवा लाख या एक्यावन हजार करने अथवा कराने से कन्याओं का विवाह निर्विघ्न सम्पन्न होता है। पीला आसन, पीला भोग प्रसाद, मीठा पान खाते हुए इस जप को करते हैं।

३३. **ॐ उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।**
नृसिंह भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्।।

- यह नरसिंह मंत्र है।

३४. **ऐं ओं ह्रीं क्रीं हूँ फट्** - यह श्री भगवती तारा देवी का मंत्र है। इसे घर से बाहर एकान्त में जपते हैं। गुरु आज्ञा के बिना जप न करें।

३५. **श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वज्रवैरोचनीये हूँ हूँ फट् स्वाहा-** यह मंत्र भगवती छिन्नमस्ता देवी का है। इसे समर्थ गुरु की आज्ञा के बिना नहीं जपा जाता है।

३६. **धूँ धूँ धूमावती ठः ठः** - यह मंत्र भगवती धूमावती देवी का है। यह मंत्र असाध्य और घोर है। इसे महाश्मशान में ही जपा जाता है।

३७. **ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय।**
जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा।।

यह मंत्र भगवती बगलामुखी माँ का है। यह शत्रुसंहारक मंत्र है। इसमें ह र ल ईम् संयुक्त बीज है। देवीतत्त्व, अग्नितत्त्व और पृथ्वीतत्त्व का इसमें समावेश है।

३८. **ॐ ह्रीं क्लीं हूँ मातङ्ग्यै फट् स्वाहा-** यह मंत्र भगवती मातंगी देवी का है। इसे समर्थ गुरु की आज्ञा से करना चाहिए।

३९. **ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्सौः जगत्प्रसूत्यै नमः**- यह मंत्र भगवती कमला (लक्ष्मी) देवी का है। इसका जप हवन समृद्धि देता है।

४०. **ह्रीं क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं** - इसे षोडशीविद्या मंत्र कहते हैं। यही महात्रिपुरसुन्दरी विद्या भी है।

४१. **क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं** - यह श्री विद्या मंत्र है। इसे 'कादि' विद्या कहते हैं। इसके आरम्भ में यदि ह्रीं जोड़ दिया जाये तो यह 'हादि' विद्या हो जाती है।

४२. **उच्छिष्टगणपति मंत्र-**
ॐ ह्रीं गं हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहा।
यह श्रीगणपति का अत्यन्त उग्र एवं प्रभावकारी मंत्र है। इसका एक लाख जप क़रके दशांश हवन करना चाहिए।

४३. **कुबेर मंत्र-**
ॐ वैश्रवणाय स्वाहा
इसका प्रतिदिन १ माला जप और १० बार हवन करने से स्थिर, प्रचुर धन की प्राप्ति होती है।

४४. **कार्तवीर्यार्जुन मंत्र-**
फ्रों ब्रीं क्लीं भ्रूं आं ह्रीं क्रीं श्रीं हुँ फट् कार्तवीर्यार्जुनाय नमः।
इस मंत्र का १ लाख जप कर सांप की केंचुली, धतूरा, पीली सरसों तथा नमक से हवन करने पर चोर, डकैतों का सर्वनाश हो जाता है। लाजा से होम करने पर भूमि मिलती है।

४५. **शिवरक्षा मंत्र-**
'देव! देव! महादेव! शम्भो! शिव-शिव! धूर्जटे! नीलकण्ठेश! पिनाकिन्! शशिशेखर! त्रिशूलपाणे! विश्वेश! रक्ष-रक्ष'
इस मंत्र का शिवमंदिर में जप करने वाला सभी प्रकार के भय से मुक्त हो शिव द्वारा रक्षित हो जाता है। काशीखण्ड ३/९०-९१।।

४६. **शारदा मंत्र-**

ॐ शारदे वरदे शुभ्रे ललितादिभिरन्विते।
वीणापुस्तकहस्ताब्जे जिह्वाग्रे मम तिष्ठतु।।

(वीणा, पुस्तक को करकमलों में धारण करने वाली, ललिता आदि देवियों से युक्त गौरवर्णा, वरदायिनी शारदा (सरस्वती) देवी मेरी जिह्वा के अग्रभाग पर निवास करें।)

विद्यार्थियों को इस मंत्र को पढ़ाई आरम्भ करते समय बोलते हुए भगवती सरस्वती जी को प्रणाम करना चाहिए। परीक्षा से पूर्व इसका स्मरण करना चाहिए। इससे विस्मृति दोष, स्तब्धता दोष, जड़ता दोष धीरे-धीरे दूर हो जाता है।

४७. **रक्षा मंत्र-**

ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते।।

(सभी स्वरूप में विद्यमान, सभी की अधिपति, सभी शक्तियों से युक्त, हे दुर्गे देवि! हमारी रक्षा करें। आपको प्रणाम है।)

इस मंत्र का सोते-जागते, चलते-फिरते स्मरण करने से व्यक्ति सभी भयों से मुक्त हो जाता है। भगवती दुर्गा देवी आपकी रक्षा करती हैं।

४८. **विपरीतप्रत्यङ्गिराप्रयोग-** यदि कभी बीमारी बहुत कष्ट दे, औषध का प्रभाव रोग पर न हो, दवाओं की उल्टी प्रतिक्रिया हो अथवा शत्रु द्वारा अभिचार आदि क्रिया की गयी हो तो इस प्रयोग के द्वारा अपूर्व लाभ प्राप्त होता है। अभिचार क्रिया को लौटाने वाला यह अमोघ प्रयोग है।

४९. रामरक्षास्तोत्र, आदित्यहृदयस्तोत्र के पाठ से जीवन में अपूर्व उपलब्धि होती है।

५०. देवी कवच, शिव कवच, नारायण कवच में से किसी एक कवच का पाठ प्रतिदिन स्नान करके करना चाहिए। इससे शरीर की रक्षा होती है और दुर्घटना से बचाव होता है। कवच से हवन नहीं करते हैं।

५१. भूत-प्रेत-पिशाच-ब्रह्मराक्षस- पूर्वजन्मकृत पापबाधा- भयावह रोगों से बचाव के लिए **'शताक्षरागायत्री'** का मंत्र जप कराकर गोघृत से हवन कराना चाहिए। यह प्रचण्ड प्रयोग है जिससे प्रत्यक्ष तत्काल लाभ होता है। कैंसर, एड्स, कीडनी, लीवर, प्रभृति रोगों में, उन्माद, मूर्छा, सफेद दाग, मांस विकृति, वीर्य क्षय आदि रोगों को यह प्रयोग तत्काल शाँत कर देता है। मंत्र इस प्रकार से है-

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।।

ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वानावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः।।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्व्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् स्वाहा।।

यह तीन प्रणव (ॐ) से युक्त ब्रह्मं विद्या है। यह 'स्वाहा' अन्त वाली विद्या है। यह विद्या हवन प्रधान है। इसमें देशी गोघृत से हवन किया जाता है। इसमें सौ अक्षर होने से यह शताक्षरा गायत्री कहलाती है।

५२. श्रीदुर्गासप्तशती का पाठ सामान्य या संपुट जो व्यक्ति शारदीय नवरात्रि और वासन्तिक नवरात्रि में करता या कराता है उसके घर विपत्ति का प्रवेश नहीं होता है। साथ ही वंशवृद्धि और राज्यत्व की प्राप्ति होती है।

५३. प्रतिवर्ष श्रावणमास में भगवान् शिव का रुद्राभिषेक कराने वाला चल और अचल सम्पत्ति को प्राप्त कर लेता है।

५४. जो व्यक्ति प्रतिवर्ष कार्तिक, माघ, मार्गशीर्ष आदि मासों में से किसी भी मास में 'नवग्रह पुरश्चरण कराता है। उसका दुर्भाग्य दूर होता है और ग्रह बाधा दूर होती है।

५५. प्रतिवर्ष कार्तिक मास के कृष्णपक्ष में जो व्यक्ति १२०० पाठ श्रीसूक्त का कराकर बेल, खीर, कमलगट्टा, पंचमेवा, गोघृत आदि से हवन कराता है उसके यहाँ चल-अचल सम्पत्ति का निवास हमेशा बना रहता है। कल-कारखाने वाले बड़े व्यापारियों को इस प्रयोग को अवश्य कराना चाहिए।

५६. नारायण कवच का १२०० पाठ जो गर्भिणी गर्भधारण के ढ़ाई मास के भीतर सुनती है उसके गर्भशिशु को किसी भी प्रकार की आनुवंशिक बीमारी नहीं होती है। कालसर्प आदि दोष नहीं स्पर्श करता है।

५७. यदि नेत्र की ज्योति समाप्त हो रही हो तो उसकी रक्षा के लिए 'चाक्षुषोपनिषद्' का १२०० पाठ आठ ब्राह्मणों से कराना चाहिए।

५८. जीवन में प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी देवता को अपना इष्ट बना कर उनकी आराधना अवश्य करनी चाहिए। हनुमान जी, गणेश जी, शिव जी, देवी जी तथा सूर्य देवता की आराधना कोई भी व्यक्ति कर सकता है।

५९. उत्तम जीविका (सर्विस) की प्राप्ति के लिए रात्रि में सोने से पूर्व जो भी स्त्री-पुरुष, छात्रा-छात्र देवी सूक्त का पाठ करता है वह एक वर्ष के भीतर उत्तम जीविका को प्राप्त कर लेता है। पाठ संकल्प पूर्वक करें।

६०. कन्या विवाह में आने वाली बाधाओं को दूर करने हेतु भगवती मंगलागौरी और भगवती कात्यायनी देवी का पुरश्चरण कराया जाता है अथवा कन्या स्वयं प्रतिदिन पाठ और जप करती है।

६१. वारव्रत करने से स्वास्थ्य, विद्या, यश, धन, स्थिर सम्पत्ति, रोगनिवृत्ति, प्रबलता आदि की प्राप्ति होती है। रविवार व्रत से सिर, आँख, त्वचा, हृदय, मस्तिष्क ठीक रहता है। सोमवार व्रत से पुत्र, विद्या, धन की प्राप्ति होती है। मंगलवार व्रत से दुर्घटना, करेंट, आपरेशन से बचाव होता है। विवाह में मंगल जनित बाधा दूर होती है। बुधवार व्रत से बुद्धि तीक्ष्ण होती है। बौधिक कलह शाँत होता है। गुरुवार व्रत से पुत्र प्राप्ति, विष्णु भगवान् की कृपा, तेजस्विता वृद्धि और पूज्यत्व वृद्धि होती है। शुक्रवार व्रत से वीर्य शुद्धि, प्रमेह नाश, मोटापा से बचाव, श्रीवृद्धि, शिव जी की कृपा, स्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति तथा राज्यत्व की प्राप्ति होती है। शनिवार व्रत से शनि दोष शमन, दरिद्रता निवारण, कलह से बचाव तथा स्वधन की प्राप्ति होती है।

वारव्रत में गोधूलि वेला या प्रदोष काल में अभीष्ट देवता की पूजा करके भोजन ग्रहण किया जाता है।

६२. मौन, योगासन, ध्यान, प्राणायाम, ॐ का जप, अक्रोध और शाँत चित्तता से जीवन में असंभव और अचिन्त्य का लाभ होता है। गो-कुत्ता-श्वान-चिड़ियों को जिनके घर में भोजन मिलता है उनके वंश में कभी अन्न की कमी नहीं होती है।

६३. श्राद्ध अवश्य कराना चाहिए। इससे वंश नाश नहीं होता है। प्रसन्न होकर पितृगण ऐश्वर्य और यशस्वी संतान देते हैं।

६४. प्रत्येक व्यक्ति को प्रयास करके अपने जीवन में रत्न अवश्य पहनना चाहिए। 'चरकसंहिता' में महर्षि चरक ने लिखा है- **न अरत्नपाणिः**। व्यक्ति को रत्न रहित उँगली नहीं होना चाहिए। जीवन में प्रयत्नपूर्वक स्वर्ण अवश्य पहनना चाहिए। स्वर्ण अनेक रोगों और उपद्रवों को शाँत करता है। स्वर्ण अग्नि से उत्पन्न तत्त्व है। विष्णु भगवान् से यह पृथ्वी उत्पन्न है। सूर्य भगवान् से गायें उत्पन्न हुई हैं। अतः प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में स्वर्ण धारण करना चाहिए। पृथ्वी की पूजा करनी चाहिए और गायों का पालन करना चाहिए। इन तीनों का दान करने वाला त्रैलोक्य विजय कर लेता है-

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं
भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः।
लोकास्त्रयस्तेन भवन्ति दत्ता
यः काञ्चनं गाञ्च महीञ्च दद्यात्।।

संवर्तस्मृतिः ७८, बृहस्पतिस्मृतिः, ३०।

तप की दो विधियाँ-

ऋषियों ने तपस्या की दो विधियों का वर्णन किया है। ऋषि या तो 'प्राणायाम परायण:' होते थे या 'प्रातर्हुतहुताशन:' होते थे या दोनों होते थे।

१. प्राणायाम करना, गायत्री का जप करना और परब्रह्म स्वरूप 'ॐ' का जप-ध्यान करना ऋषियों को अत्यन्त प्रिय था।

२. प्रतिदिन जप किये मंत्र से गोघृत (आज्य) द्वारा हवन करना ऋषियों को अत्यन्त प्रिय था। प्रतिदिवसीय हवन से समृद्धि और आयु की प्राप्ति होती है। किया हुआ जप-ध्यान पराकाष्ठा को प्राप्त करता है। प्रतिदिवसीय हवन में ब्रह्मसूक्त, रुद्रसूक्त, पुरुषसूक्त, श्रीसूक्त, देवीसूक्त, अग्निसूक्त, सूर्यसूक्त प्रभृति अनेक सूक्तों से हवन करने का विधान है।

किसकी पूजा करें?

मंत्र चयन में, इष्ट देवता चयन में, पूजन प्रक्रिया के चयन में जटिलता आती ही है। सामान्य व्यक्ति को यह समझ में नहीं आता कि वह क्या करे? फलत: उसे जो कुछ बतला दिया जाता है वह वही करता है। हिन्दी भाषा में श्री रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, हनुमान चालींसा, बजरंगबाण, देव-देवी चालीसा एवं आरतियों के माध्यम से सामान्य व्यक्ति अपना काम चलाता है।

अपनी कुण्डली में पंचमेश के द्वारा या पंचम भाव में बैठे ग्रह के द्वारा इष्टदेवता और इष्टमंत्र का चयन करना चाहिए।

गीता, गोविन्द, गायत्री, गौ और गंगा इस पृथ्वी पर मानव के लिए सर्वश्रेष्ठ वरेण्य श्रेय और प्रेय तत्त्व हैं। जो व्यक्ति प्रात: काल शय्या पर ही पवित्र स्थिति में 'गजेन्द्रमोक्ष' का पाठ करता है वह विश्व का असाध्य कार्य भी कर लेता है। जो लोग संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें प्रतिदिन रामचरितमानस, हनुमानचालीसा आदि का पाठ करना चाहिए।

मंत्र या ब्रह्मविद्या का प्रयोग दृढ ज्ञान प्राप्त कर ही करना चाहिए। प्रमाद रहित हो वेदाध्ययन करना चाहिए। मंत्र संदिग्ध हो तो उसका जप नहीं करना चाहिए। व्यग्र चित्त किया जप विनष्ट हो जाता है। अत: शाँतचित्त ही जप करना चाहिए-

अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम्।
संदिग्धो हि हतो मंत्रो व्यग्रचित्तो हतो जप:।।

श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये ५/७३

पवित्र जीवन से महान् कार्य होते हैं।

•

अध्याय-९

तर्पण

(देवर्षिपितृतर्पण)

संसाधन- कुशा, जल, तिल, यव तर्पण के मुख्य संसाधन हैं।

तर्पण- कुशा द्वारा जल, तिल, प्रदान कर देवता, ऋषि, पितरों को संतृप्त करना तर्पण कहलाता है।

तर्पणभेद- तर्पण दो प्रकार का होता है- १. नित्य तर्पण और २. अङ्ग (पितृपक्ष आदि) रूप तर्पण।

तर्पण से लाभ- प्रतिदिवसीय तर्पण करने से देवता, ऋषि और पितृगण प्रसन्न होकर दीर्घायु, स्वास्थ्य, समृद्धि और आध्यात्मिक उत्कर्ष देते हैं।

तर्पण न करने से हानि- तर्पण न करने से पितृगण तृषा से आतुर होकर स्नान के बाद टपकते हुए जल को पीते हैं और व्यक्ति को शाप देत हैं-

पिवन्ति देहनिःस्रावं पितरो वै जलार्थिनः।

स्नानाङ्ग है तर्पण- नित्य, नैमित्तिक और काम्यस्नान का अङ्ग है तर्पण।

तर्पण की दो विधियाँ- १. जल में खड़ा होकर तर्पण करते हैं (मंत्र और क्रम स्वयं याद हो या कोई कराये।)

२. पवित्र भूमि, तट या एकान्त में तर्पण करते हैं। दोनों विधियों को एक में न मिलायें; अर्थात् जल में करें या स्थल पर करें। तर्पण जल-स्थल दोनों में न करें।

भूमि पर ही जल दें- तर्पण न जल में, न पात्र में, न क्रुद्ध होकर, न एक हाथ से करें। भूमि पर ही जल देना चाहिए-

नोदकेषु न पात्रेषु न क्रुद्धो नैकपाणिना।
नोपतिष्ठति तत्तोयं यद् भूम्यां न प्रदीयते।।

देवों को यव या अक्षत से, पितरों को तिल से तर्पण करना चाहिए-

यवाद्भिस्तर्पयेद् देवान् तिलाद्भिश्च पितृनपि।

पात्र- तर्पण में सोना, चाँदी, ताम्बा, कांसा का पात्र प्रयोग में लाया जाता है। मिट्टी का पात्र वर्जित है। जो लोग प्रभूत जल में तर्पण करते हैं उन्हें पात्र की आवश्यकता नहीं होती है।

जीवितपितृक- जिसके पिता जीवित हैं वह काली तिल से तर्पण न करे।

हथेली में तीर्थ- हथेली द्वारा कैसे किस ओर जल गिराना चाहिए इसका निर्देश है। तर्पण के तीन तीर्थ होते हैं। ये हथेली में होते हैं- १. देवतीर्थ, २. कायतीर्थ और ३. पितृतीर्थ। **देवतीर्थ-** अंगुलियों का अग्रभाग, **काय (मनुष्य) तीर्थ-** कनिष्ठा का नीचला भाग और **पितृतीर्थ-** तर्जनी अंगुष्ठ के बीच का भाग।

तर्पण काल- सूर्योदय के एक प्रहर तक तर्पण जल अमृत होता है। डेढ़ प्रहर तक दूध और साढ़ेतीन प्रहर तक जल के रूप में पितरों को प्राप्त होता है।

देवतर्पण

पूर्वमुख बैठ कर तीन कुशा लेकर यव या अक्षत के साथ देवतीर्थ से जल देते हैं। यज्ञोपवीत बायें कंधे पर (सव्य भाग में) रहता है।

देवर्षिपितृतर्पण का हाथ में जलाक्षत-पुष्प लेकर संकल्प बोलें-

हरिः ॐ तत्सद् अद्य एतस्य श्री ब्रह्मणोऽहनि द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे...पुण्यक्षेत्रे कलियुगे कलिप्रथमचरणे... संवत्सरे..... मासे......पक्षे......तिथौ.......वासरे......गोत्रोत्पन्नः......शर्मा/ वर्मा/गुप्त नामाहं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं देवर्षि-मनुष्यपितृतर्पणं कर्म करिष्ये।

पुष्प, जलाक्षत पृथ्वी पर या किसी पात्र में छोड़ें।

देवता आवाहन-

विश्वेदेवाः शृणुतेम ᳪ हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यविष्ठ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् वर्हिषि मादयद्ध्वम्।।

शुक्लयजुर्वेदः, ३३/५३.

आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः।
ये तर्पणेऽत्र विहिताः सावधाना भवन्तु ते।।

हाथ में सफेद पुष्प, तुलसी, अक्षत, जल लेकर मंत्र बोलते हुए भूमि पर छोड़ें।

देवों को एक अंजलि जल उँगली के अग्रभाग (देवतीर्थ) से दें-

१. ॐ ब्रह्मा तृप्यताम् **२. ॐ विष्णुस्तृप्यताम्**
३. ॐ रुद्रस्तृप्यताम् **४. ॐ प्रजापतिस्तृप्यताम्**
५. ॐ देवास्तृप्यन्ताम् **६. ॐ छन्दांसि तृप्यन्ताम्**
७. ॐ वेदास्तृप्यन्ताम् **८. ॐ ऋषयस्तृप्यन्ताम्**
९. ॐ पुराणाचार्यास्तृप्यन्ताम् **१०. ॐ गन्धर्वास्तृप्यन्ताम्**
११. ॐ इतराचार्यास्तृप्यन्ताम् **१२. ॐ संवत्सरः सावयवस्तृप्यताम्**
१३. ॐ देव्यस्तृप्यन्ताम् **१४. ॐ अप्सरसस्तृप्यन्ताम्**
१५. ॐ देवानुगास्तृप्यन्ताम् **१६. ॐ नागास्तृप्यन्ताम्**
१७. ॐ सागरास्तृप्यन्ताम् **१८. ॐ पर्वतास्तृप्यन्ताम्**
१९. ॐ सरितस्तृप्यन्ताम् **२०. ॐ मनुष्यास्तृप्यन्ताम्**
२१. ॐ यक्षास्तृप्यन्ताम् **२२. ॐ रक्षांसि तृप्यन्ताम्**
२३. ॐ पिशाचास्तृप्यन्ताम् **२४. ॐ सुपर्णास्तृप्यन्ताम्**
२५. ॐ भूतानि तृप्यन्ताम् **२६. ॐ पशवस्तृप्यन्ताम्**
२७. ॐ वनस्पतयस्तृप्यन्ताम् **२८. ॐ औषधयस्तृप्यन्ताम्**
२९. ॐ भूतग्रामश्चतुर्दशविधंस्तृप्यताम्

दिव्यमनुष्यतर्पण-

'निवीती' अर्थात् माला के समान यज्ञोपवीत और अंगोछे को धारण कर कायतीर्थ से उत्तरमुख बैठकर त्रिकुशा और यव से दो दो अंजली जल प्रत्येक को देना चाहिए-

१. ॐ सनकस्तृप्यताम् **२. ॐ सनन्दनस्तृप्यताम्**
३. ॐ सनातनस्तृप्यताम् **४. ॐ कपिलस्तृप्यताम्**
५. ॐ वासुकिस्तृप्यताम् **६. ॐ वोढुस्तृप्यताम्**
७. ॐ पञ्चशिखस्तृप्यताम्

ऋषितर्पण-

पूर्वाभिमुख होकर यज्ञोपवीत को सव्य करके देवतीर्थ से एक एक अंजलि जल अक्षत सहित दें-

१. ॐ मरीचिस्तृप्यताम्
२. ॐ अत्रिस्तृप्यताम्
३. ॐ अङ्गिरास्तृप्यताम्
४. ॐ पुलस्त्यस्तृप्यताम्
५. ॐ पुलहस्तृप्यताम्
६. ॐ क्रतुस्तृप्यताम्
७. ॐ वसिष्ठस्तृप्यताम्
८. ॐ प्रचेतास्तृप्यताम्
९. ॐ भृगुस्तृप्यताम्
१०. ॐ नारदस्तृप्यताम्

दिव्यपितृतर्पण-

दक्षिण मुख होकर कुशा को मोड़ कर (जल और अग्रभाग एक साथ करलें) यज्ञोपवीत को दक्षिण (अपसव्य) कंधे पर करके बायां घुटना टेक कर तिल के साथ प्रत्येक को तीन-तीन अंजलि जल दें-

१. ॐ कव्यवाडनलस्तृप्यताम्- इदं जलं तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा तस्मै स्वधा।
२. ॐ सोमस्तृप्यताम्- इदं जलं तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा।
३. ॐ यमस्तृप्यताम्- इदं जलं तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा।
४. ॐ अर्यमा तृप्यताम्- इदं जलं तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा।
५. ॐ अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्- इदं जलं तेभ्यः स्वधा, तेभ्यः स्वधा, तेभ्यःस्वधा।
६. ॐ सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम्- इदं जलं तेभ्यः स्वधा, तेभ्यः स्वधा, तेभ्यःस्वधा।
७. ॐ बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम्- इदं जलं तेभ्यः स्वधा, तेभ्यः स्वधा, तेभ्यःस्वधा।

यमतर्पण-

इसी प्रकार (पूर्वोक्तविधि) से तीन-तीन अंजलि जल इन १४ यमों को दें। ('स्वधा' का प्रयोग नहीं होगा।)

१. ॐ यमाय नमः
२. ॐ धर्मराजाय नमः
३. ॐ मृत्यवे नमः
४. ॐ अन्तकाय नमः
५. ॐ वैवस्वताय नमः
६. ॐ कालाय नमः
७. ॐ सर्वभूतक्षयाय नमः
८. ॐ औदुम्बराय नमः
९. ॐ दध्नाय नमः
१०. ॐ नीलाय नमः
११. ॐ परमेष्ठिने नमः
१२. ॐ वृकोदराय नमः
१३. ॐ चित्राय नमः
१४. ॐ चित्रगुप्ताय नमः

मनुष्यपितृतर्पण-

तीन कुशा को सीधा कर मोटक बना लें। तिल सहित तीन-तीन अंजली जल दें। (ब्राह्मण शर्मा, क्षत्रिय वर्मा और वैश्य गुप्त बोलते हैं)-

१. (पिता)- ॐ वसुरूपः अमुकगोत्रः अस्मत्पिता (अमुक शर्मा) तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा।

२. (पितामह)- ॐ रुद्ररूपः अमुकगोत्रः अस्मत्पितामहः (अमुक शर्मा) तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा।

३. (प्रपितामह)- ॐ आदित्यरूपः अमुकगोत्रः अस्मत्प्रपितामह (अमुक शर्मा) तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा।

१. (माता)- ॐ गायत्रीरूपा अमुकगोत्रा अस्मन्माता अमुकीदेवी तृप्यतां इदं जलं तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा।

२. (पितामही)- ॐ सावित्रीरूपा अमुकगोत्रा अस्मत्पितामही अमुकीदेवी तृप्यतां इदं जलं तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा।

३. (प्रपितामही)- ॐ सरस्वतीरूपा अमुकगोत्रा अस्मत्प्रपितामही अमुकीदेवी तृप्यतां इदं जलं तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा।

यदि सौतेली माँ मृत हों तो उन्हें जल दें-

१. ॐ अमुक गोत्रा अस्मत् सापत्नमाता अमुकीदेवी वसुरूपा तृप्यतां इदं जलं तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा।

मातृवंश (नाना वंश) तर्पण-

१. (मातामहः, नाना)- अमुकगोत्रः अस्मन्मातामहः अमुकशर्मा सपत्नीकस्तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा।

२. (प्रमातामहः, परनाना)- अमुकगोत्रः अस्मत्प्रमातामहः अमुकशर्मा सपत्नीकस्तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा।

३. (वृद्धप्रमातामहः, वृद्धपरनाना)- अमुकगोत्रः अस्मद्वृद्धप्रमातामहः अमुकशर्मा सपत्नीकस्तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा।

यदि पत्नी मर चुकी हों तो उन्हें जल दें-

१. अमुकगोत्रा अस्मत्पत्नी अमुकी देवी तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा- ३।

चाचा, भाई, मामा, बेटा, बेटी को जल दें-

१. अमुकगोत्रः अस्मत्पितृव्यः (चाचा) अमुकशर्मा तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा- ३।

२. अमुकगोत्रः अस्मद्भ्राता अमुकशर्मा तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा- ३।

३. अमुकगोत्रः अस्मन्मातुलः अमुकशर्मा तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा- ३।

४. अमुकगोत्रः अस्मत् सुतः अमुकशर्मा तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा- ३।

५. अमुकगोत्रा अस्मत् सुता अमुकी देवी तृप्यताम् इदं जलं तस्यै स्वधा- ३।

पितृभगिनी (बूआ), मातृभगिनी (मौसी), आत्मभगिनी (बहन), सापत्लभ्राता-सापत्लभगिनी (सौतेला भाई-बहन) को जल तीन अंजलि देना चाहिए।

१. अमुकगोत्रः अस्मत् श्वसुरः (अपने श्वसुर) (सपत्नीकः) अमुक शर्मा तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा।

२. अमुकगोत्रः अस्मद् गुरुः (सपत्नीकः) अमुक शर्मा तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा।

३. अमुकगोत्रः अस्मद् आचार्यः (सपत्नीकः) अमुकशर्मा तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा, तस्मै स्वधा।

४. अमुकगोत्रः अस्मत् सखा अमुकशर्मा तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा- ३।

प्रार्थनापूर्वक अंजलि से जल देते रहें-

ॐ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः।।
अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम्।
आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम्।।
येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते तृप्तिमखिला यान्तु यश्चास्मत्तोऽभिवाञ्छति।।

वस्त्रनिष्पीडन-

दक्षिणमुख अपसव्य हो सफेद अंगोछा के खूँट को चार बार मोड़ कर जल से गीला कर धरती पर निचोड़ें और मंत्र बोलें-

ये चास्माकं कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः।
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम्।।

भीष्मतर्पण-

दक्षिणमुख अपसव्य होकर तीन अंजलि जल (कुशा के साथ) भीष्म पितामह को मन्त्र बोलते हुए दें-

वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च।
अपुत्राय ददाम्येतत् जलं भीष्मायवर्मणे।।

आचमन कर पूर्वमुख सव्य होकर प्राणायाम करें। ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ विष्णवे नमः, ॐ रुद्राय नमः, ॐ सवित्रे नमः, ॐ मित्राय नमः, ॐ वरुणाय नमः, बोलते हुए इन देवों को प्रणाम करें। सूर्योपस्थान करके सूर्य देव को अर्घ्य दें। (सूर्योपस्थान मंत्र संध्या प्रकरण में आ चुका है।)

दश दिक्पाल नमस्कार-

१. ॐ इन्द्राय नमः (पूर्व) **२. ॐ अग्नये नमः (अग्निकोण)**
३. ॐ यमाय नमः (दक्षिण) **४. ॐ निर्ऋतये नमः (नैर्ऋत्यकोण)**
५. ॐ वरुणाय नमः (पश्चिम) **६. ॐ वायवे नमः (वायव्यकोण)**
७. ॐ कुबेराय नमः (उत्तर) **८. ॐ ईशानाय नमः (ईशानकोण)**
९. ॐ ब्रह्मणे नमः (ऊपर) **१०. ॐ अनन्ताय नमः (नीचे)**

इसके बाद शुद्ध जल से मुख धो लें।

विसर्जन करें-

ॐ देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित।
मनसस्पत इमं देव यज्ञं स्वाहा वाते धः।।

अनेन देवर्षिमनुष्यपितृतर्पणाख्यकर्मणा श्रीपरमेश्वरः प्रीयतां न मम।

बोल कर जल छोड़ें।

●

अध्याय-१०

बलिवैश्वदेव

हिन्दू जीवन पद्धति में बलिवैश्वदेव का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य केवल अपने लिए नहीं जीवित रहता है। वह अन्यप्राणियों के जीवन की भी रक्षा करता है। इस पृथ्वी पर के सभी प्राणि सुखी रहें- **'लोका समस्ता सुखिनो भवन्तु'** ऐसी कामना करता है और अपने बने भोजन में से प्रतिदिन अन्य जीवों को हिस्सा निकाल कर देता है। पके भोजन द्वारा हिन्दू सभी देवों को भोजन देता है। यह **देवयज्ञ** कहलाता है। कुत्ता, कौआ, गाय, चींटी, चतुर्दशभूतों को भोजन देता है। यह भूतबलि या **भूतयज्ञ** कहलाता है। 'स्वधा' शब्द का प्रयोग कर जो अन्न पूर्वजों को अर्पित किया जाता है वह **पितृयज्ञ** कहलाता है। स्वाध्याय (वेदाध्ययन) करने को **ब्रह्मयज्ञ** कहा जाता है। भोजन काल में आये हुए अतिथि को सत्कारपूर्वक जो भोजन कराया जाता है वह **नृयज्ञ** कहलाता है। **यहाँ भूत बलि का अर्थ प्राणियों को भोजन प्रदान करना है।**

धन्य है हिन्दू जो प्रतिदिन पाँच प्रकार का यज्ञ अपने जीवन में करता है और पशु-पंछी-कीट-पतंग आदि को भोजन प्रदान करता है।

पृथ्वी पर अन्य मनुष्यगण सब कुछ अपने लिए एकत्र करते हैं, अकेले भोजन करते हैं; पर हिन्दू अपने; अपने परिवार के लिए बने भोजन में से पशुओं, चीटियों, कौओं आदि को उनका हिस्सा देता है। केवल मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी-क्षुद्र जीव भी हमारे अपने हैं यह भावना 'ब्रह्मभावना' है। यही भावना हिन्दू प्रजाति को अन्यों से अलग कर ब्रह्मवेत्ता बनाती है।

हिन्दू अपने आदि पुरुष कश्यप ऋषि को भी चौथे क्रम में भोजन (आहुति) देता है। यह अपने पूर्व प्रथम पुरुष का पवित्र स्मरण है।

हिन्दू परिवारों में बाद के दिनों में जब पुरुष बहुत व्यस्त होकर अन्य कार्यों को प्रधानता देने लगे तब घर की महिलायें इस कार्य को करने लगीं। नमक रहित पाँच ग्रास भोजन अग्नि में डाल कर वे देवयज्ञ सम्पन्न करने लगीं। आज के इस व्यस्ततम युग में भी यह भावना बनी रहनी चाहिए कि **मैं केवल अकेला भोक्ता नहीं हूँ। मेरे निकट रहने वाले जीव-जंतु मेरे**

संरक्ष्य हैं। भारत विश्व को परिवार मानता है- वसुधैव कुटुम्बकम्। अन्य देश विश्व को बाजार मानते हैं।

बलिवैश्वदेव करने में दो भावनायें काम करती रही हैं। प्रथम- ऋषियों ने ब्रह्मयज्ञ का अंगभूत मान कर अन्य चार यज्ञों को किया। दूसरी- मेरे द्वारा चूल्हा, चक्की, झाड़ू, उखल तथा जल स्थान पर जीवों के मरने की संभावना होती है। अत: इन जीवों की मृत्यु से उत्पन्न दोष की निवृत्ति के लिए मुझे भूतयज्ञ करना चाहिए। आज के दिन; आधुनिक समस्याओं और नयी जटिलताओं के बीच हो सके तो पाँच आहुति अग्निकुण्ड में दें अथवा पाँच आहुति पक्वान्न का अग्नि (चूल्हे) में दें अथवा पाँच कौर अन्न पाँच जीवों के निमित्त बाहर अवश्य डाल या डलवा दें। ये पाँच जीव हैं- गाय, श्वान (कुत्ता), काक (कौआ), पिपीलिका (चींटी), कीटपतंग।

प्रयोगविधिः

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।

इस मंत्र को बोलते हुये अपने ऊपर जल छोड़ें।

संकल्पः

हरिः ॐ तत्सद् श्री ब्रह्मणोऽहनि द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे...पुण्यक्षेत्रे कलियुगे कलिप्रथमचरणे...संवत्सरे..... मासे......पक्षे......तिथौ......वासरे......गोत्रोत्पन्नः.....शर्मा/ वर्मा/गुप्त नामाहं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं नित्यकर्माङ्गभूतं बलिवैश्वदेवाख्यं कर्म करिष्ये। (पृथ्वी पर जल छोड़ें।)

कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित करें। यदि प्रवास आदि में हों और हवन की व्यवस्था न हो तो पात्र में जल भरकर उसी में आहुति दें।

अग्नि आवाहन-

ॐ अग्निदूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे।
देवान् आसादयादिह।

भो अग्नि देवता इहागच्छ, इहातिष्ठ, वरदो भव। (पुष्प अक्षत गंध छोड़ें।)

साफ सुथरी भूमि पर जल को पंचपात्र या चुल्लु से गिराते हुए बलिवैश्वदेव की आकृति बनाकर मंत्र क्रम से अन्न (भोजन) दें। जिस दिन घर में भोजन न पका हो उस दिन कच्चे अन्न से इसे करना चाहिए।

अग्निकुण्ड में पक्वान्न डालें। बिना नमक का पक्वान्न अग्नि में डालना चाहिए। यदि पक्वान्न न हो तो कच्चे अन्न से आहुति दें। दाहिने घुटने को भूमि से स्पर्श करके आहुति दें। यज्ञोपवीत सव्य (बायें कंधे पर) रखें-

अग्निकुण्ड पूर्व जलपात्र

१ २ ३ ४ ५ ७

२ ३ १

२० १३

१० १७ १५ १२ ८

उत्तर ११ १८ दक्षिण

६ १६ १४ ४

९

१९ ५

पश्चिम

१. देवयज्ञ

१. ॐ ब्रह्मणे स्वाहा- इदं ब्रह्मणे न मम

२. ॐ प्रजापतये स्वांहा- इदं प्रजापतये न मम

३. ॐ गृह्याभ्यः स्वाहा- इदं गृह्याभ्यो न मम

४. ॐ कश्यपाय स्वाहा- इदं कश्यपाय न मम

५. ॐ अनुमतये स्वाहा- इदं अनुमतये न मम

स्वाहा बोलकर आहुति दें तथा 'इदं न मम' बोलकर पृथ्वी पर जल छोडें।

२. भूतयज्ञ

इसके बाद २० ग्रास (कौर) भोजन जलचक्र के भीतर क्रम के अनुसार प्रदान करें।

१. ओ३म् धात्रे नमः — इदं धात्रे न मम
२. ओ३म् विधात्रे नमः — इदं विधात्रे न मम
३. ओ३म् वायवे नमः — इदं वायवे न मम
४. ओ३म् वायवे नमः — इदं वायवे न मम
५. ओ३म् वायवे नमः — इदं वायवे न मम
६. ओ३म् वायवे नमः — इदं वायवे न मम
७. ओ३म् प्राच्यै नमः — इदं प्राच्यै न मम
८. ओ३म् अवाच्यै नमः — इदमवाच्यै न मम
९. ओ३म् प्रतीच्यै नमः — इदं प्रतीच्यै न मम
१०. ओ३म् उदीच्यै नमः — इदमुदीच्यै न मम
११. ओ३म् ब्रह्मणे नमः — इदं ब्रह्मणे न मम
१२. ओ३म् अन्तरिक्षाय नमः — इदमन्तरिक्षाय न मम
१३. ओ३म् सूर्याय नमः — इदं सूर्याय न मम
१४. ओ३म् विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः — इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यो न मम
१५. ओ३म् विश्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः — इदं विश्वेभ्यो भूतेभ्यो न मम
१६. ओ३म् उषसे नमः — इदं उषसे न मम
१७. ओ३म् भूतानां पतये नमः — इदं भूतानांपतये न मम

३. पितृयज्ञ

दाहिने कन्धे पर यज्ञोपवीत रख कर दक्षिण मुख होकर पितरों को बलि दें तथा यज्ञोपवीत को पुनः बायें कन्धे पर रख कर यक्ष्मा को बलि दें-

१. ओ३म् पितृभ्यः स्वधा — इदं पितृभ्यः न मम
२. ओ३म् यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनं नमः — इदं यक्ष्मणे न मम

४. मनुष्ययज्ञ

१. ॐ हन्त ते सनकादिसप्तमनुष्येभ्यो नमः

इदं सनकादिमनुष्येभ्यो न मम

५. ब्रह्मयज्ञ

स्वाध्याय अर्थात् वेदपाठ को ब्रह्मयज्ञ कहते हैं। स्वाध्याय का आधारभूत गायत्री मंत्र है। अतः न्यूनतम तीन बार गायत्रीं मंत्र का जप करें।

पञ्चबलि

१. गोबलि-

मंत्र बोलते हुए गाय को पक्वात्र या अन्न खिलाना चाहिए।

ॐ सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः।।
ॐ गोभ्यो नमः इदं गोभ्यो न मम

२. श्वानबलि-

यज्ञोपवीत माला की तरह पहन कर मंत्र बोलते हुये श्वान को भोजन दें-

ॐ द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ।
ताभ्यामन्नं प्रदास्यामि स्यातामेतावहिंसकौ।।
ॐ श्वभ्यो नमः इदं श्वभ्यो न मम

३. काकबलि-

यज्ञोपवीत को दायें कन्धे पर रखकर मंत्र पढ़ते हुये काक को भोजन दें-

ॐ ऐन्द्रवारुणवायव्या याम्या वै नैर्ऋतास्तथा।
वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं मयोज्झितम्।।
ॐ काकादिभ्यो नमः इदं वायसेभ्यो न मम

४. देवादिबलि-

नीचे लिखे हुए मंत्र को बोलते हुए भोजन को एक स्थान पर रख देना चाहिए-

देवामनुष्याः पशवो वयांसि सिद्धाः सयक्षोरगदैत्यसंघाः।
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ताः ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम्।।
ॐ देवादिभ्यो नमः इदं देवादिभ्यो न मम

५. पिपीलिकादिबलि-

निम्नलिखित मंत्र को बोलते हुए चीटियों को भोजन देना चाहिए-

पिपीलिकाः कीटपतंगाद्या बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः।
तेषां हि तृप्त्यर्थमिदं मयान्नं तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु।।
ॐ पिपीलिकादिभ्यो नमः, इदमन्नं पिपीलिकादिभ्यो न मम

प्रार्थना-

पूर्वमुख खड़ा होकर यज्ञोपवीत को सव्य रख कर पवित्रभूमि पर (उपवन, नदी तट, प्रशस्त गृहभूमि, निवास के पास की भूमि) अन्न तथा दिया, कसोरा या पुरवा में जल रख कर हाथ जोड़कर मंत्र पढ़ें-

भूतानि सर्वाणि तथान्नमेतदहं च विष्णुर्न ततोऽन्यदस्ति।
तस्मादहं भूतनिकाय भूतमन्नं प्रयच्छामि भवाय तेषाम्।।
चतुर्दशो भूतगणो य एष तत्रस्थिता येऽखिलभूतसंघाः।
तृप्त्यर्थमन्नं हि मया विसृष्टं तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु।।

अनेन बलिवैश्वदेवकर्मणा श्री परमेश्वरः प्रीयतां न मम

बोलकर अंगुलियों के अग्रभाग (देवतीर्थ) से पृथ्वी पर जल छोड़ें।

●

अध्याय-११

अतिथि सत्कार

अतिथि देवो भव

'अतिथि देवता' होता है। अतः उसे खाली हाथ या खाली पेट नहीं लौटाना चाहिए। माता, पिता और आचार्य के बाद पूज्यत्व अतिथि का होता है। तैत्तिरीयोपनिषत् की शिक्षावल्ली में अतिथि को देवता मानकर व्यवहार करने का आदेश और अनुशासन किया गया है- **अतिथि देवो भव, एष आदेशः, एष उपदेशः, एतद् अनुशासनम्।**

प्राचीन भारत में हिन्दू समाज में घर का मुखिया भोजन करने से पहले घर के दरवाजे पर आकर इस बात की प्रतीक्षा करता था कि कोई अतिथि उसके यहाँ आया है या नहीं। शास्त्रों में ऐसा विधान भी दिया हुआ है कि भोजन करने से पहले अतिथि के संदर्भ में ज्ञात हो लेना चाहिए। भोजन से पूर्व कम से कम छः मिनट अतिथि की प्रतीक्षा होनी चाहिए। यदि घर के दरवाजे पर कोई अतिथि न प्राप्त हो तभी भोजन करने जाना चाहिए-

आचम्य च ततः कुर्यात् प्राज्ञो द्वारावलोकनम्।
मुहूर्त्तस्याष्टमं भागमुदीक्ष्यो ह्यतिथिर्भवेत्।।

मार्कण्डेयपुराणः।।

(४८ मिनट का १ मुहूर्त्त होता है। इसका अष्टमांश ६ मिनट होता है।) भोजन करने से पहले भिक्षु को भिक्षा दें तथा अतिथि को भोजन करायें। विद्या और तप से समृद्ध ब्रह्मचारी और विप्र को भिक्षा या भोजन अवश्य देना चाहिए। इससे व्यक्ति की विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं-

विद्यातपः-समृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु।
निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्विषात्।।

भिक्षा में एक ग्रास (कौर) के तुल्य अन्न अवश्य देना चाहिए। चार ग्रास अन्न को पुष्कल भिक्षा कहते हैं। प्रायशः एक मुट्ठी अन्न को एक ग्रास मानते हैं। पुष्कल से चार गुणित अधिक को 'हन्तकार' भिक्षा कहते हैं-

ग्रासमात्रा भवेद् भिक्षा पुष्कलं च चतुर्गुणम्।
पुष्कलानि च चत्वारि हन्तकारं विदुर्बुधाः।।

शातातपः।।

भिक्षु को अन्न दान करने के साथ-साथ पानी पीने हेतु अवश्य पूछना चाहिए, बल्कि आते 'जाते दोनों समय पानी हेतु पूछना चाहिए-

भिक्षोः पुनः आद्यन्तयोरुदकदानं कार्यम्।

महिलाओं द्वारा याचक को प्रत्यक्ष भिक्षा दान करने से बचना चाहिए।

तपस्वी अभ्यागत का कभी भी अनादर नहीं करना चाहिए, न तो उसे खाली हाथ लौटने देना चाहिए।

परिव्राट्, वानप्रस्थी, ब्रह्मचारी, तपस्वी, संन्यासी, भिक्षुक को भोजन और अन्न देना इस पृथ्वी पर गृहस्थों का अत्यन्त पवित्र कर्म है। बलिवैश्वदेव करते समय यदि अतिथि या याचक उपस्थित हो जाए तो उसे अन्न दान कर के वैश्वदेव कर्म उस दिन विसर्जित कर देना चाहिए। वैश्वदेव न करने से उत्पन्न दोष को भिक्षु सह लेता है पर भिक्षु को बिना कुछ, दिये वैश्वदेव करते रहने पर जो दोष उत्पंनन होता है उसे वैश्वदेव नहीं दूर कर पाता है-

अकृते वैश्वदेवे तु भिक्षुके गृहमागते।
उद्धृत्य वैश्वदेवान्नं भिक्षां दत्वा विसर्जयेत्।।

वैश्वदेवकृतं दोषं शक्तो भिक्षु-र्व्यपोहितम्।
न तु भिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवो व्यपोहति।।

पात्रपूरणी भिक्षा-

यति, संन्यासी जिस पात्र (वर्तन) को लेकर भिक्षा मांगने आता है उसको जो व्यक्ति अन्न से भर देता है वह जीवन में दुर्गति नहीं प्राप्त करता है-

यः पात्रपूरणीं भिक्षां यतिभ्यः संप्रयच्छति।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो नासौ दुर्गतिमाप्नुयात्।।

पद्मपुराणम्।।

पाखण्डी भिक्षु-

बहुत बार अनेक प्रकार से वेशधारी, पाखण्डी, धूर्त, निन्दक, मार्ग में बैठे, विकर्मी, दुष्ट आदि भिक्षा मांगते हैं। इन्हें चारों उँगलियों पर अटनें भर अन्न

दान करना चाहिए- **नमोऽस्तु धर्माय**। वस्तुतः यह संसार दुःख से व्याकुल है। अतः सभी के हृदय में विष्णुभगवान् का वास है ऐसा विचार करके पाखंडियों को भी घर से बाहर भिक्षा देने का विधान है-

दुःखाकुलं जगदेतद्विचार्य नमोऽस्तु धर्माय इति ब्रुवंश्च।
दद्यादन्नं सर्वगतं च विष्णुं प्रणम्य वै द्वादशपर्वमात्रम्।।

ब्रह्मपुराणम्।।

पीडितभिक्षु-

जो भूख और प्यास से व्याकुल हो, रोगी हो, श्रम से थका हो उसे अन्न देने से यज्ञ करने का फल मिलता है-

क्षुत्पिपासाश्रमार्त्ताय देशकालागताय च।
सत्कृत्यान्नं प्रदातव्यं यज्ञस्य फलमिच्छता।।

अतिथि सत्कार-

भूमि, आसन, जल और मीठी वाणी की कमी दरिद्र के पास भी नहीं होती है। अतः अतिथि को बैठा कर उससे स्निग्ध बातें करके समाचार पूछ कर जल पिला कर सत्कार आसानी से किया जा सकता है। अतः दरिद्र व्यक्ति को भी इन वस्तुओं से अतिथि का सत्कार अवश्य करना चाहिए-

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन।।

अतिथि का स्वागत करना चाहिए। उसे आसन प्रदान करके पैरों को धोना चाहिए। प्राचीन भारत में कठौता या पीतल के परात में अतिथि का पैर धोया जाता था। राजा श्रीकृष्ण भगवान् ने भी वेदज्ञ दरिद्र सुदामा का अतिथि सत्कार अतिशय प्रेम और श्रद्धा के साथ कठौता में पैर धोकर किया था।

यम स्मृति में लिखा है- अतिथि को आँखों से स्नेह देना चाहिए। मनोयोग से बातें करनी चाहिए। शुभ वाणी से संतुष्ट करना चाहिए। आसन देना चाहिए। निष्कपट, स्नेह युक्त, प्रिय व्यवहार करना चाहिए-

चक्षुर्दद्यान् मनो दद्याद् वाचं दद्याच्च सूनृताम्।
उत्थाय चासनं दद्यात् स धर्मः पञ्चलक्षणम्।।

पराशर ऋषि द्वारा प्रदत्त अतिथि सत्कार विधान परिपूर्ण है-

अतिथिं तत्र संप्राप्तं पूजयेत् स्वागतादिना।
तथाऽऽसनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च।।
श्रद्धया चान्नप्रदानेन प्रियप्रश्नोत्तरेण च।
गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिमुत्पादयेद् गृही।।

वेदज्ञ, धर्मज्ञ अतिथि की पूजा से शाँति, स्वर्ग और पुष्टि की प्राप्ति होती हैं।

अतिथि को रस पिलाना चाहिए। पीठ पर आसन देकर बैठाना चाहिए। उसे भोजन देकर ही स्वयं भोजन करना चाहिए। अतिथि आहवनीय अग्नि कहलाता है।

अतिथि सत्कार का फल-

वलिवैश्वदेव कर्म करते समय अन्न की आहुति दी जाती हैं। उस आहुति से उत्पन्न पुण्य के तुल्य या उससे अधिक पुण्य कारक होता है अतिथि को भोजन कराना-

अन्नं हुत्वा विधानेन यत्पुण्यफलमश्नुते।
तेन तुल्यं विशिष्टं वा ब्राह्मणे तर्पिते फलम्।।

राजा अतिथि सत्कार-

राजा 'ऐन्द्र' पद पर बैठे होने के कारण सभी द्वारा सत्कार योग्य होता है। वह कुलीन हो या दुष्कुलीन, श्रेष्ठ हो या अश्रेष्ठ उसकी पूजा होनी चाहिए। राजा में विष्णु का अंश होता है-

यद्यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽश-सम्भवम्।।

गीता।।

अत: तपस्वी, संत, यति, ब्रह्मचारी द्वारा भी राजा सत्कारार्ह होता है।

अनेक अतिथि होने पर-

यदि एक साथ अनेक अतिथि आ जायें तो बिना भेद क्रिये समभाव से उनका सत्कार करना चाहिए। एक पंक्ति में बैठा कर उत्तम, मध्यम और हीन भोजन अलग-अलग नहीं परोसना चाहिए। भोजनान्त में दिया जाने वाला सम्मान धन भी तुल्य होना चाहिए-

यद्येकपंक्तौ विषमं ददाति स्नेहाद् भयाद् वा यदि वाऽर्थहितोः।
वेदेषु दृष्टामृषिभिश्च गीतां तां ब्रह्महत्यां मुनयो वदन्ति।।

वसिष्ठः।।

किसी भी जाति, वंश या धर्म के सम्प्राप्त अतिथि को भोजन-जल देकर संतुष्ट करना अतिथि धर्म के अन्दर आता है।

कुमारी कन्यायें, किशोर, बालक, रोगी और गर्भिणी को अतिथि से पहले भोजन दिया जाता है-.

स्ववासिनीः कुमारांश्च रोगिणो गर्भिणीस्तथा।
अतिथिभ्योऽग्र एवैतान् भोजयेदविचारयन्।।

मनुस्मृतिः।।

अकेले रहने पर भी भोजन बनाकर देवता को भोग अवश्य लगाना चाहिए। अपने खाने के लिए पशुबध नहीं करना चाहिए। यदि करे तो देवसमर्पण पहले कर लें-

नात्मार्थं पाचयेदन्नं नात्मार्थं घातयेत् पशून।
देवार्थे ब्राह्मणार्थे च पचमानो न लिप्यते।।

गोग्रास-

अतिथि पूजन की ही तरह पुण्य फलदायी होता है गाय को अन्न या घास देना। दूसरों की गाय को जो रोटी, भोजन या घास डालता है वह स्वर्गलोक को प्राप्त करता है-

घासमुष्टिं परगवे सान्नं दद्यस्तु यः सदा।
अकृत्वा स्वयमाहारं स्वर्गलोकं स गच्छति।।

गाय को घास या ग्रास (अन्न) डाल कर निम्नलिखित प्रार्थना करनी चाहिए-

सौरभेयः सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः।
प्रतिगृह्णन्तु मे घासं गावस्त्रैलोक्यमातरः।।

पञ्चभूते शिवे पुण्ये पवित्रे सूर्यसंभवे।
प्रतीच्छेदं मया दत्तं सौरभेयि नमोऽस्तु ते।।

●

अध्याय-१२

भोजन

'आहारसंभवं वस्तु रोगाश्चाहार संभवाः'

चरकसूत्र २८/४५

मनुष्य का शरीर आहार से संभव है और रोग आहार से संभव है। अतः आहार का सम्यक् विचार करके इसे ग्रहण करना चाहिए।

मानव स्वास्थ्य और दीर्घायु तीन स्तम्भों पर आश्रित है- आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य। चरकसूत्र ११/१३॥

शुभ आहार में निम्नलिखित गुण होते हैं- वर्णप्रसाद, सौन्दर्य, जीवन, प्रतिभा, सुख, तुष्टि, पुष्टि, बल (वीर्य) तथा मेधा-

वर्णः प्रसादः सौन्दर्यं जीवितं प्रतिभा सुखम्।
तुष्टिः पुष्टिर्बलं मेधा सर्वमन्नेप्रतिष्ठितम्।।

चरकसूत्र २७।।

महर्षि सुश्रुत के अनुसार आंहार शरीरधारियों के बल, आयु, तेज, उत्साह, स्मृति, ओज और शरीर अग्नि को बढ़ाता है-

आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद् देहधारकः।
आयुस्तेजः समुत्साहस्मृत्योजोग्निविवर्धनः।।

सुश्रुतचिकित्सा २४/६८

संविभाग विधि-

स्नान, पूजन-हवन, बलिवैश्वदेव, तर्पण, योगासन तथा अतिथि सत्कार के पश्चात् आचमन करके भोजन हेतु तैयार होना चाहिए। बलिवैश्वदेव कर्म में भोजन का हिस्सा प्राणियों को देना संविभाग है। भोजन से पूर्व इन विभागों को अवश्य प्रतिदिन करना चाहिए। मानसिक आलस्य को छोड़ कर इन कार्यों को अनिवार्यतः करना चाहिए। यदि संयुक्त परिवार में अनेक लोग हों तो मुखिया द्वारा बलिवैश्वदेव और आतिथ्य करना पर्याप्त होता है। शेष कर्म (स्नान-पूजन आदि) सभी को करना चाहिए।

चन्दनादि तिलक लगाकर, सुवासित माला पहन कर तथा पवित्रतम होकर किया हुआ भोजन अमृत की तरह फलदायी होता है-

स्नात्वा प्रक्षाल्य पादौ च स्त्रग्गन्धालंकृतः शुचिः।
पञ्चयज्ञावशिष्टं तु भुंक्ते यः सोऽमृताशनः।।

देवलः।।

आचमन-

प्राचीनकाल में आचमन करने की प्रथा अत्यन्त प्रचलित थी। आचमन के द्वारा ही मुख, हृदय, चेतना और मन की शुद्धि होती है। आचमन करने से आयु बढ़ती है। अतः दिन में अनेक बार आचमन किया जाता है। अतः भोजन से पूर्व आचमन करना आवश्यक कृत्य था। अंगूठे को मोड़कर एक आचमनीय जल हथेली में लेकर मंत्र बोलते हुये पीते हैं। अंगूठा मध्यमा के मूल के नीचे मोड़कर लाते हैं। इससे हथेली में पानी ठहरता है। आचमन का जल कंठ या हृदय तक पहुँचना आवश्यक होता है। आचमन से भोजन नली गीली हो जाती है जिससे ग्रास फँसता नहीं है, न तो हिचकी आती है। भोजन के बाद आचमन करना चाहिए तथा छः छिद्रों को जल से स्पर्श करना चाहिए। ये छः छिद्र- नाक, आँख, कान होते हैं। ऐसा विधान मनु महाराज ने किया है। मनुस्मृतिः, २/५३।

ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः बोल कर तीन बार जल पीना चाहिए तथा **ॐ गोविन्दाय नमः** कह कर हाथ धोना चाहिए। पितृतीर्थ से आचमन कभी नहीं करना चाहिए। तत्पश्चात् पवित्र स्थान में आसन पर बैठ कर काम-क्रोध-मद-लोभ को किनारे करके पाँचों अंगुलियों से, दाहिने हाथ से भोजन करना चाहिए। बायें हाथ से भोजन करना सर्वथा वर्जित है।। अत्रिस्मृति, ५/६-७।। जीवन में भोजन का यह विधान पाश्चात्य संस्कृति में नहीं पाया जाता है। वहाँ दोनों हाथों से खाते हैं तथा भोजन पूर्व पैर, हाथ, मुख धोना अनिवार्य कर्म नहीं हैं।

शरीर को वस्त्रों से ढंक कर भोजन नहीं करना चाहिए। भोजन पात्र को अतिदूर न रखें न तो शरीर पर स्थापित करके भोजन करें। पात्र में स्थित भोजन को दूध, घी को हमेशा ढ़क कर रखना चाहिए- **भक्ष्यमासीदनावृत्तम्**। स्वस्थ, प्रसन्नचित्त होकर आसन पर बैठकर अभीष्ट देवों का स्मरण करने के बाद भोजन करना चाहिए-

स्वस्थः प्रसन्नचित्तस्तु कृतासनपरिग्रहः।
अभीष्टदेवतानां तु कुर्वीत स्मरणं नरः।।

विष्णुपुराणम्, ३/११/९१।।

देवताओं को समर्पित किये बिना भोजन नहीं करना चाहिए। देव समर्पण के पश्चात् भोजन आयुष्य और आरोग्य को बढ़ाता है।

भोजन संख्या-

अहोरात्र (दिन-रात) में मात्र दो बार ही भोजन करना चाहिए- **द्वौ भोजनकालौ सायं प्रातश्च। ततोऽन्यस्मिन्काले न भुञ्जीत।। (मेधातिथिः)।**

दिन-रात्रि में मात्र दो बार भोजन करने वाला उपवास करने का पुण्य प्राप्त करता है- **नान्तरा भोजनं दृष्टमुपवासविधिर्हि सः। महा.अनु. १६२/४०।** चौबीस घण्टे में दो बार भोजन करना नियन्त्रित जीवनचर्या का महत्त्वपूर्ण अंग है। यहाँ सायं का अर्थ है प्रदोष काल के बाद। सूर्योदय और सूर्यास्त काल में भोजन का निषेध है। यदि बीच में ही भोजन छोड़कर उठना पड़े तो भी उसी भोजन को बाद में ग्रहण नहीं किया जाता है। प्राचीन काल में भोजन के मध्य में उठने के बाद दुबारा भोजन नहीं किया जाता था। अत्यधिक भोजन और बार-बार भोजन करने से आयु की हानि होती है। भूख से कम खाने वाला दीर्घजीवी होता है- **अल्पाहारी स जीवति।** दिन में पूर्वाह्ण के बाद तथा मध्याह्न से पूर्व भोजन करना चाहिए। दिन का भोजन भूख के अनुसार करना चाहिए, जबकि रात्रि भोजन भूख से थोड़ा कम करना चाहिए, क्योंकि रात्रि में भोजन करने के पश्चात् शयन किया जाता है। इससे शारीरिक श्रम न होने के कारण रात्रि भोजन को पचाने में पाचन तंत्र को अत्यधिक श्रम करना पड़ता है। साथ ही रात्रि में उठ कर बार-बार पानी पीना पड़ता है। यदि एक बार खाने के पश्चात् दुबारा भूख लगे तो स्वल्पाहार, रस या लेह्य-चोष्य पदार्थ लेना चाहिए। ब्रह्मचर्यावस्था में शरीर का विकास होता रहता है। अतः पचीस वर्ष के भीतर के लोगों को ज्यादा भोजन की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिये शास्त्र में ब्रह्मचारी को इच्छा भोजन करने का निर्देश है। जब शरीर और उसके अवयव वर्धनशील हों तब शरीर को ज्यादा भोजन और पुष्टिवर्धक तत्त्वों की आवश्यकता पड़ती है। अति भोजन कभी भी नहीं करना चाहिए। प्रायशः स्वाद के लोभ के कारण व्यक्ति अत्यधिक भोजन करता है। इस लोभ पर नियन्त्रण रख कर अतिभोजन से बचना चाहिए। अतिभोजन से स्वास्थ्य की हानि, आयु की हानि, पुण्य की हानि तथा लोक निंदा होती है। अतः प्रयत्नपूर्वक जिह्वा तथा मन पर नियन्त्रण रखते हुये अतिभोजन का परित्याग करना चाहिए-

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्।।

मनुस्मृतिः, २/५७।।

चौबीस घण्टे में एक बार भोजर करने पर देवता प्रसन्न होते हैं। दो बार भोजन करना मानवी प्रवृत्ति होती है। तीसरी बार जो भोजन किया जाता है वह भूत-प्रेतादि को प्राप्त होता है। चौथी बार का भोजन राक्षसों को प्राप्त होता है-

देवानामेकभुक्तं तु द्विभुक्तं स्यान्नरस्य च।
त्रिभुक्तं प्रेतदैत्यस्य चतुर्थं कौणपस्य च।।

पद्मपुराणम्, ५१/१२९।।

मौन भोजन-

भोजन करते समय अत्यन्त शाँत और मौन रहना चाहिए। शीत्कार, हूँ, खांसने का शब्द नहीं करना चाहिए। **मौनेनान्नं तु भोजयेत्**- ब्रह्मपुराण। स्नान करते समय मौन रहना चाहिए। हवन करते समय मौन रहना चाहिए। भोजन करते समय मौन रहना चाहिए। स्नान के समय बोलने से शक्ति का ह्रास होता है। हवन के समय बोलने से शोभा (कान्ति) का ह्रास होता है और भोजन करते समय बोलने से आयु का ह्रास होता है-

स्नास्यते वरुणः शक्तिं जुह्वतोऽग्निर्हरेत् श्रियम्।
भुञ्जतो मृत्युरायुष्यं तस्मान्मौनव्रतं चरेत्।।

व्यासः।।

पूर्वमुख भोजन-

अपनी जानकारी में हमेशा पूर्वमुख बैठकर भोजन करने का प्रयास करना चाहिए। पूर्व दिशा देव दिशा होती है-

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत शुचिः पीठमधिष्ठितः।।

देवलः।।

ब्रह्मपुराण में निर्देश है कि आसन पर बैठ कर हाथ नहीं धोना चाहिए। पैर-हाथ धोकर आसन पर बैठना चाहिए। पैर-हाथ धोने के बाद तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिए जब तक अङ्ग शुष्क न हो जाये अथवा शुद्ध कपड़े से पोंछना चाहिए। न अधिक कपड़ा पहन कर, न एक वस्त्र होकर भोजन करना चाहिए। अधः वस्त्र और उत्तरीय धारण कर भोजन करना चाहिए-

नैकवस्त्रधरो नार्द्रपाणिपादो नरेश्वर।
विशुद्धवदनः प्रीतो भुञ्जीत न विदिङ्मुखः।।

विष्णुपुराणम्, ३/११/७९।।

इस सन्दर्भ में अधिकतम ऋषियों-मुनियों का मत है कि आर्द्रपाद (गीला पैर) भोजन करना चाहिए और सूखे पैर सोना चाहिए। ऐसा करने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है-

आर्दपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत्।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात्।।

मनुस्मृतिः, ४/७६, अत्रिस्मृतिः, ५/२५-२६।।

शारीरिक ऊर्जा के संचय के लिए यह विधि अत्यन्त वैज्ञानिकी है।

यमस्मृति में लिखा है कि गीला पैर भोजन करना चाहिए तथा सूखा पैर सोना चाहिए- **भुञ्जीत आर्द्रपादस्तु नार्द्रपादः स्वपेन्निशि।।**

पश्चिम और दक्षिण मुख करके भोजन नहीं करना चाहिए-

भुञ्जीत नैवेह च दक्षिणमुखो न च प्रतीचीमभिभोजनीयः।।

वामनपुराणम्।।

पूर्वमुख या उत्तरमुख होकर भोजन करना चाहिए-

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि न चैवान्यमना नरः।।

विष्णुपुराणम्, ३/११/८०।।

दक्षिण की ओर मुख करके भोजन करने से माता की आयु क्षरित होती है। पश्चिम मुख भोजन करने से रोग बढ़ता है।

वर्जित आसन-

खाट, पलंग, मिट्टी की वेदी, बांस आसन, गोबर की ढेरी, पीपल आसन, पलाश आसन पर बैठ कर भोजन नहीं करना चाहिए-

नाधिशयने नासने वाऽश्नीयात्
कार्ष्णायसे न मृत्पात्रे न भिन्नावकीर्णे इति।।

हारीतः।।

रत्नपाणि भोजन-

अंगुलियों में प्रशस्त रत्नों को पहन कर भोजन करना चाहिए। इससे आयु वृद्धि होती है और स्वास्थ्य ठीक रहता है-

प्रशस्तरत्नपाणिस्तु भुञ्जीत प्रयतो गृही।।

विष्णुपुराणम्।।

भोजन पात्र-

स्वर्ण पात्र, रजत (चाँदी) पात्र, ताम्रपात्र, कमल पत्र तथा पलाश पत्र पर भोजन करना चाहिए-

सौवर्णे राजते ताम्रे पद्मपत्रपलाशयोः।
भाजने भोजनं चैव त्रिरात्रफलमश्नुते।।

पैठीनसिः।।

गृहस्थ को ताम्रपात्र में भोजन नहीं करना चाहिए। ताम्रपात्र में दूध, दही, तक्र (मट्ठा) शीघ्र खराब होता है- **ताम्रपात्रं गृहिव्यतिरिक्तविषयम्। गृहस्थस्य तन्निषेधात्।**

मनु महाराज ने ताम्रपात्र, गंदे तथा फटे कांस्य पात्र तथा पलाश पत्र में भोजन का निषेध किया है-

ताम्रपात्रे न भुञ्जीत भिन्नकांस्य-मलाविके।
पलाशपद्मपात्रेषु गृही भुक्त्वैन्दवं चरेत्।।

इसी तरह से केला के पत्ते पर प्रतिदिवसीय भोजन का निषेध किया गया है-

कदली गर्भपत्रे च पद्मपत्रे जलास्पृशि।
वल्लीपलाशपत्रे च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।।

कांस्यपात्र में भोजन करने से 'काम' शक्ति की वृद्धि होती है। अतः यति, ब्रह्मचारी, विधवा, साधक, तपस्वी को कांस्य में भोजन नहीं करना चाहिए। कांस्य पात्र में हमेशा अकेले भोजन करना चाहिए; अन्यथा यह पात्र एक का दोष दूसरे में शीघ्र प्रेषित करता है।

स्वर्ण, चाँदी, ताम्बा का पात्र, शुक्ति (सितुआ), शंख, संगमरमर, पत्थर, स्फटिक आदि का पात्र यदि चटक जाये, फूट जाये या उसमें दरार पड़ जाये तो उसका दोष नहीं होता है-

सौवर्णं राजतं ताम्रं पात्रं शुक्तिजशंखजे।
अश्मजं स्फाटिकं चैव न भेदाद् दोषमर्हति।।

व्यासः।।

जलपात्र-

भोजन करते समय जल पात्र को दाहिनी ओर रखना चाहिए। बायीं ओर जल पात्र रखने पर अशुद्धि होती है। साथ ही पीने के लिए पानी उठाते समय अन्न का लंघन होता है जो हानिकारक होता है-

दक्षिणं यः परित्यज्य वामे नीरं निधापयेत्।
अभोज्यं तद्भवेदन्नं पानीयं सुरया समम्।।

वाम हाथ से जल नहीं पीना चाहिए। वस्तुतः वाम हाथ का प्रयोग नाभि के नीचे करने हेतु विधान है।

भोजन निंदा की वर्जना

समय पर जो भोजन उपलब्ध हो उसे संतुष्ट चित्त होकर खाना चाहिए। अन्न (भोजन) की कभी भी निंदा नहीं करनी चाहिए-

अनिन्दन् भक्षयेन्नित्यं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्।

निंदा करके खाया हुआ अन्न कभी भी वल और आरोग्य नहीं देता है। भोजन करने से पूर्व समंत्रक शिखा मुक्ति की जाती है।

पञ्चग्रास-

भोजन करते समय पाँच ग्रास (कौर) महामौन होकर लेना चाहिए। इसके बाद थोड़ा सा जल पीना चाहिए-

पञ्चग्रासं महामौनं प्राणाद्याप्यायनं हि तत्।।

विष्णुपुराणम्, ३/११/८९।।

अन्न आमन्त्रण-

अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपोज्योती रसोऽमृतम्।।

इस मंत्र से अन्न को प्रणाम करने से उसमें विद्यमान दोष दूर हो जाता है। अन्न से प्राण की प्राप्ति होती है। अतः उसे प्रणाम कर, पूजन कर ग्रहण करना चाहिए। आदित्यपुराण के अनुसार- **अन्नं विष्णु स्वयं प्राहः** अर्थात् विष्णु भगवान् ने स्वयं को अन्न रूप में पृथ्वी पर प्रकट किया। अतः अन्न देवता कहते हैं कि- मेरा ध्यान करके, मेरी पूजा करके, आनन्द भाव़ से मुझे देखकर प्रसन्न होते हुए, प्रीति पूर्वक भोजन करना चाहिए-

प्राणार्थं मां सदा ध्यायेत्स मां सम्पूजयेत्सदा।
अनिन्दंश्चैतदद्यात्तु दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च।।

थाली में स्थित भोजन को हाथ जोड़कर कहना चाहिए- **अस्माकं नित्यमस्त्वेतदिति** (यह अन्न मुझे नित्य प्राप्त हो)।

भोग निवेदन-

परिवार में या जहाँ कहीं भी भोजन बनकर तैयार हो वहाँ पर उसे थाली में या किसी अन्य पात्र में निकाल कर देवता को भोग लगाया जाता है। प्राय: सामूहिक भोजन के अवसर पर भी रसोइया बने हुये भोजन का स्वल्प अंश अग्नि में अवश्य डालता है। साथ ही वह प्रार्थना करता है कि उसके द्वारा बनाया हुआ भोजन पुष्टिकारक हो। परिवार में आज भी भोग लगाने की प्रथा चली आ रही है। व्यक्तिगत रूप से प्रायश: संस्कारी व्यक्ति आज भी अन्न को प्रणाम करके मन्त्र बोलते हुये अथवा मौन प्रणाम पूर्वक भक्षण करता है। भोग प्रसाद लगाने का वैदिक मन्त्र-

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णोद्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ऽअकल्पयन्।।

•

ॐ ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।

गीता ४/ २४।।

•

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

इन मंत्रों को अथवा किसी एक मंत्र को बोल कर भोजन पात्र के चारों ओर जल घुमाकर गिराते हुये बोलें- **ॐ प्राणाय स्वाहा। ॐ अपानाय स्वाहा। ॐ समानाय स्वाहा। ॐ उदानाय स्वाहा। ॐ व्यानाय स्वाहा।**

अन्न प्रार्थना-

प्राचीन काल में व्यक्ति भोजन करने के बाद भोजनान्न से प्रार्थना करता था कि- वायु से प्रज्ज्वलित जठराग्नि उदर (पेट) के भीतर अन्न को पचाये तथा

मेरे शरीर के धातुओं को पुष्ट करे। यह अन्न मेरे शरीर में पृथ्वी, जल,. अग्नि और वायु बल बढ़ाने वाला हो। यह अन्न मेरे प्राण को सुख दे। मेरे द्वारा खाये हुये अन्न को अगस्ति अग्नि और बडवानल पचायें। मेरे शरीर को आरोग्य रखें। देह और इन्द्रियों के अधिष्ठाता विष्णु भगवान् मुझे इस अन्न के द्वारा आरोग्यता प्रदान करें। भोक्ता, भोज्य और परिपाक विष्णु ही हैं। अतः यह अन्न पचकर पुष्टि प्रदान करे। **ऐसी प्रार्थना करके उदर (पेट) पर हाथ फेरा जाता है।** भोजन करने के तत्काल बाद अत्यधिक श्रम करना या दौड़ना या पैदल चलना वर्जित है। कम से कम मुहूर्त भर (४८ मिनट) विश्राम करने के बाद या सामान्य रह कर ही अन्य आवश्यक प्रतिदिवसीय कार्य या अपनी जीविका में संलग्न होना चाहिए अथवा मृदु कार्य करना चाहिए। यहाँ विष्णुपुराण से उपरोक्त भावों के प्रतिपादक मंत्रों को दिया जा रहा है-

अग्निराप्याययेद्धातुं पार्थिवं पवनेरितः।
दत्तावकाशं नभसा जरयत्वस्तु मे सुखम्।।

अन्नं बलाय मे भूमेरपामग्न्यनिलस्य च।
भवत्येतत्परिणतं ममास्त्वव्याहतं सुखम्।।

प्राणापानसमानानामुदानव्यानयोस्तथा ।
अन्नं पुष्टिकरं चास्तु ममाप्यव्याहतं सुखम्।।

अगस्तिरग्निर्बडवानलश्च भुक्तं मयान्नं जरयत्वशेषम्।
सुखं च मे तत्परिणामसम्भवं यच्छन्त्वरोगो मम चास्तु देहे।।

विष्णुस्समस्तेन्द्रियदेहदेही प्रधानभूतो भगवान् यथैकः।
सत्येन तेनात्तमशेषमन्नमारोग्यदं मे परिणाममेतु।।

विष्णुरत्ता तथैवान्नं परिणामश्च वै तथा।
सत्येन तेन मद्भुक्तं जीर्यत्वन्नमिदं तथा।।

इच्युच्चार्य स्वहस्तेन परिमृज्य तथोदरम्।
अनायासप्रदायीनि कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रितः।।

विष्णुपुराणम्, ३/११/९२-९८

अथवा

अगस्त्यं वैनतेयं च शनिं च वडवानलम्।
आहारपरिपाकार्थं स्मरेद् भीमं च पञ्चमम्।।
आतापी मारितो येन वातापी च निपातितः।
समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यःप्रसीदतु।।

आहार के छः घटक-

मात्रा, काल, क्रिया, भूमि, देह, दोष इन छः घटकों को सुप्रयुक्त करने से ही आहार पथ्य (सुपाच्य) रहता है।

आहार सेवन विधि-

अष्टविध आहार सेवन का उल्लेख आयुर्वेद में प्राप्त होता है। ये आठ प्रकार निम्नलिखित हैं- प्रकृति, करण (भोजननिर्माण), संयोग, राशि, देश, काल, उपयोग और उपयोक्ता।

आहार ग्रहण-

आहार (भोजन) ग्रहण करते समय आयुर्वेद की दृष्टि से निम्नलिखित प्रमुख बातों पर ध्यान देना चाहिए-

१. उष्णमश्नीयात्- गरम गरम खायें, २. स्निग्धमश्नीयात्- चिकना पदार्थ खायें, ३. मात्रावदश्नीयात्- सही मात्रा (माप-तौल) में खायें, ४. जीर्णेश्नीयात्- भूख लगने पर खायें, ५. वीर्याविरुद्धमश्नीयात्- सत्ववर्धक आहार लें, ६. इष्टे देशे, इष्टैः सवोपकरणैः चाश्नीयात्- ग्राह्य स्थान पर, ग्राह्य पात्रों में भोजन करें, ७. नातिद्रुतमश्नीयात्- अत्यधिक तेजी से भोजन न करें, ८. नातिविलम्बितमश्नीयात्- अत्यन्त धीमीगति से न खायें, ९. अजल्पन्, अहसन्, तन्मना भुञ्जीत- मौन, बिना हंसे, एकाग्र होकर भोजन करें, १०. आत्मानमभि समीक्ष्य भुञ्जीत- आत्मानुरूप (स्वरुचिकर) समीक्षापूर्वक भोजन करें। च.वि. १।।

आहार वर्ग-

चरक संहिता में आहार को बारह वर्गों में विभाजित किया गया है। ये द्वादश वर्ग निम्नवत् हैं-

१. धान्य (Corns), २. द्विदल (Pulses), ३. मांस (Meat), ४. शाक (Vegitables), ५. फल (Fruits), ६. हरित (Greens), ७. मद्य (Wines),

८. अम्बु (Water), ९. दुग्ध (Milk & Milk Products), १०. इक्षु (Suger Cans & Products), ११. कृतान्न (Cooked Foods), १२. आहारयोनि (Food Adjuvants)।

धर्मशास्त्र और आयुर्वेद में मांस विचार-

धर्मशास्त्र और योग दृष्टि सम्पन्न विधि में मांस भक्षण से मांस वृद्धि के सिद्धान्त को अमान्य किया गया है; परन्तु आयुर्वेद में भाव से भाव की वृद्धि होती है अर्थात् मांस से मांस की वृद्धि होती है स्वीकार किया गया है- च.सू. १।। वस्तुत: बीमारी आदि की स्थिति में या विशेष स्थिति में मांसाहार उपयुक्त हो सकता है पर मनुष्य का शरीर, उसकी आँतें, उसकी जिह्वा, उसके दाँत मांसाहारी पशुओं की संरचना के विरुद्ध हैं। शेर की आँत की लम्बाई और मनुष्य के आँत की लम्बाई में बहुत अन्तर है। मांसाहारियों की जिह्वा कठोर, लार टपकाने वाली और श्वसन प्रणाली हांफने वाली होती है। मांसाहारी जीव जिह्वा से पानी का कर्षण मनुष्य की तरह नहीं कर पाते हैं।

दुग्ध आहार-

मानव के लिए दुग्ध आहार सर्वश्रेष्ठ और परिपूर्ण आहार (Complete Food) है। अन्न के बाद सर्वाधिक ग्राह्य आहार दुग्ध है। यह शक्तिवर्धक और सूर्यकिरणों का आकर्षक है। फलत: शरीर में यह सभी तत्त्वों की आपूर्ति करता है। दुग्ध में अमिनो एसिड, कर्बोज, वसा, विटामिन्स तथा जल तत्त्व सही अनुपात में उपलब्ध रहते हैं। विटामिन 'ए' तथा 'डी' और लौह तत्त्व दुग्ध में नहीं होते हैं।

भोजन में वर्जित कर्म-

- दक्षिण मुख भोजन न करें- **न दक्षिणाभिमुखं भुंजीत।**
- हथेली में भोजन न करें- **न तु पाणितले भुंक्ते।**
- फूत्कार पूर्वक भोजन न करें- **न तु फूत्कारसंयुतम्।**
- उंगली फैला कर भोजन न करें- **न च प्रसृताङ्गुलिभिः।**
- अपच में भोजन न करें- **नाजीर्णे भोजनं कुर्यात्।**
- अतिबुभुक्षित होने पर अन्न न खायें (रस लें)- **स्याच्चनातिबुभुक्षितः।**
- हाथी-घोड़ा-रथ-सवारी-ऊँट-महल के छत पर चढ़कर भोजन न करें-

  हस्त्यश्वरथयानोष्ट्रप्रासादस्थो न भक्षयेत्।

- श्मशान में भोजन न करें- श्मशानाभ्यन्तरगतो।
- देवालय में भोजन न करें- देवालयगतोऽपि वा।
- नौका में बैठ कर भोजन न करें- न नावि भुञ्जीत।
- शयन करते (सोते) हुए भोजन न करें- शयनस्थो न भुञ्जीत।
- हथेली में, पूजन के आसन पर, शयनीय आसन पर बैठ कर भोजन न करें- न पाणिस्थं न चासने।
- प्रातः सान्ध्यवेला-मध्याह्नवेला (१२ बजे दिन)- रात्र्यर्धवेला (१२ बजे रात) में भोजन न करें- न सन्ध्ययोर्न मध्याह्ने नार्धरात्रे कदाचन।
- गीला कपड़ा पहन कर भोजन न करें- नार्द्रवासा।
- गीला सिर भोजन न करें- नार्द्रशिरा।
- यज्ञोपवीत रहित होकर भोजन न करें- नचायज्ञोपवीतवान्।
- पैर फैलाकर भोजन न करें- न प्रसारितपादस्तु।
- पैरों पर हाथ रख कर भोजन न करें- पादारोपितपाणिमान्।
- अन्न के ऊपर बैठ कर भोजन न करें- नावसिक्त संस्थश्च।
- पलंग पर बैठ कर भोजन न करें- न पर्यंकिकास्थितः।
- सिर ढ़ंक कर, पगड़ी बाँधकर भोजन न करें- न वेष्टितशिराश्चापि।
- उत्संग (गोद) में रखकर भोजन न करें- नोत्संगकृतभाजनः।
- एक वस्त्र पहन कर भोजन न करें- नैक वस्त्रो।
- दुष्टों के बीच भोजन न करें- न दुष्टमध्ये।
- जूता-चप्पल पहन कर भोजन न करें- न सोपानत्कः।
- खड़ाऊँ पहन कर भोजन न करें- न सपादुकः।
- चर्म आसन पर बैठ कर भोजन न करें- न चर्मोपरिसंस्थश्च।
- पलई, कमर में चमड़ा (बेल्ट) बाँधकर भोजन न करें-चर्मवेष्टितपार्श्ववान्।
- बाल और कीड़ी से युक्त भोजन न करें- न केशकीटावपन्नम्।
- अन्न की निंदा न करें- नान्नस्य जन्मकालुष्यम्।
- भोजन पंक्ति की निंदा न करें- न पंक्तिं च विकुत्सयेत्।
- ग्रास (कौर) से बचा अन्न न खायें- ग्रासशेषं नाश्नीयात् वै।

- अंजलि से जल नहीं पीना चाहिए-
जलं पिबेनाञ्जलिना, याज्ञवल्क्यः, न वार्यञ्जलिना पिबेत्, मनुस्मृतिः।
- खड़ा हो कर जल नहीं पीना चाहिए-
न जलं चोत्थितः पिबेत्- स्कन्दपुराणम्, ब्रह्मपुराणम्।
- बायें हाथ से जल नहीं पीना चाहिए। यह सुरापान की तरह माना गया है-
उत्थाय वामहस्तेन यत्तोयं पिबति द्विजः।
सुरापी च स विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः।। ब्रह्मवै. २७/२४।।
- पानी पीते समय यदि मुंह से निकल कर भोजन थाल में गिर जाय तो उस भोजन को नहीं खाना चाहिए-
पिवतः पतिते तोये भोजनं मुखनिःसृते।
अभोज्यं तद् विजानीयाद् भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।।महाभारत।।
- बछड़ों के हिस्से का दूध थन से पूरी तरह निकाल कर जो पीता है उसके वंश का नाश हो जाता है-
क्षीरं तुं बालवत्सानां ये पिवन्तीह मानवाः।
न तेषां क्षीरपाः केचिद् जायन्ते कुलवर्धनाः।।
महाभारत, अनुशासनपर्व, १२५/६६।।
- साधक, योगी, ब्रह्मचारी को भैंस का दूध नहीं पीना चाहिए-
अभक्ष्यं महिषीणां च दुग्धं दधि घृतं तथा।
- मुख से निकले शेष जल को न पियें। थोड़ा जल लें और उसे पूरा पियें-
पीतशेषं पिबेन् न च।
- बासी (रात्रि का शेष) भोजन न करें- **न पर्युषितम्।** शीतलाष्टमी का बासी भोजन करना धर्मकृत्य है- **पर्युषितान्नपानादिकमत्र विहितम्।**
- फल-शाक-मूल-ईख को भोजन करते समय दाँत से न काटें; बल्कि चाकू आदि से इसे काट कर खायें-
शाकमूलफलेक्ष्वादि दन्तच्छेदैर्न भक्षयेत्।
- अनेक लोगों के साथ भोजन करते समय तेजी से न खायें-
बहूनामश्नतां मध्ये न चाश्नीयात् त्वरान्वितः।
- रजस्वला द्वारा बनाया हुआ या छुआ हुआ भोजन नहीं करना चाहिए। कौआ द्वारा जूठा किया हुआ तथा पैर से ठुकराया हुआ अन्न नहीं खाना चाहिए-
रजस्वलाकृष्णशकुनिपदोपहतम्।। गौतमस्मृतिः १७/२।।

- प्रसूता गाय का दूध दस दिनों के बाद पेय होता है। कहीं कहीं इक्कीस दिन या सवा माह के बाद दूध उपयोग में लेते हैं। यही स्थिति महिषी (भैंस) के साथ भी होती है।। गौतमस्मृतिः।। पेयूष (फेनुस) अर्थात् सद्यः प्रसूता गौ के खौलाये हुए दूध से बना पदार्थ खाना वर्जित है।
- भेंड़, ऊँटनी, गर्दभी का दूध कभी भी नहीं पीना चाहिए।
- मृतवत्सा और गर्भिणी गाय-भैंस का दूध नहीं पीना चाहिए।
- जिसके थन से दूध टपकता हो ऐसी गाय का दूध नहीं पीना चाहिए।
- सारहीन और निचोड़े पदार्थ को न खायें- **भुञ्जीतोद्धृतासाराणि न कदापि नरेश्वर। विष्णुपुराणम्, ३/११/८५।**
- अन्न को व्यर्थ न फैलायें- **वृथा न विकिरेदन्नम्।**
- जूठा मुंह कहीं न जायें- **नोच्छिष्टः कुत्रचिद्व्रजेत्।**
- खाते समय सिर न खुजायें- **न स्पृशेत् स्वशिरो विप्रः।**
- आधा खाकर आधा न छोड़ें जैसे रोटी, पूआ, सत्तु आदि- **न त्यजेदर्धजग्धानि।**
- तन्मय होकर भोजन करें। पहले मीठा रस खायें। नमकीन और अम्ल बीच में खायें। अन्त में कटु-तिक्त रस खायें-

  अश्नीयात् तन्मना भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम्।
  लवणाम्लौ तथा मध्ये कटुतिक्तादिकास्ततः।। वि.पु. ३/११/८७

- आरम्भ में द्रव (तरल) पदार्थ खायें, मध्य में कठिन पदार्थ (चबाने वाला) खायें तथा अन्त में पुनः द्रव (तरल) लें-

  प्राग्द्रवं पुरुषोऽश्नीयात् मध्ये तु कठिनाशनः।
  अन्ते पुनर्द्रवाशी च बलारोग्ये न मुञ्चति।।वि.पु. ३/११/८८

- भोजन करते समय हाथ न झटकें- **नावधूयेत् करं क्वचित्।**
- भोजन के अन्त में दधि (दही) न पियें- **न च पश्चात् पिवेद् दधि।**
- आधा पेट भोजन करें, एक चौथाई जल पियें और एक चौथाई वायुसंचरण के लिये पेट को खाली रखें-

जठरं पूरयेदर्धमन्नैर्भागं जलेन च।
वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्।।

ब्रह्मपुराणम्।।

- गृहस्थ गोघृत के बिना भोजन न करे। गोघृत में आयुवर्धक तत्त्व होते हैं। गोघृत हृदय, पेट और भोजन नली के लिए अत्यन्त शुभ होता है-

न भुञ्जीताघृतं नित्यं गृहस्थो भोजने स्वयम्।
पवित्रमथ वृ‍ं च सर्पिराहुरघापहम्।।

देवलः।।

- बेंत के आसन पर पात्र (थाली) रख कर भोजन न करें-
  न चासन्दीस्थिते पात्रे।
- सूर्यग्रहण में चतुर्याम (१२ घंटा) पहले न खायें। मोक्ष स्नान करके खायें।
- चन्द्रग्रहण में त्रियाम (९ घंटा) पहले न खायें। मोक्ष स्नान करके खायें। बाल, वृद्ध, रोगी, प्रवास स्थित व्यक्ति पर यह नियम शिथिल है।
- भोजन करते समय क्रोध न करें- **न क्रुद्धः।**
- भोजन करते समय अतिभाषण न करें- **नातिभाषणः।**
- भोजन करते समय बच्चों को न डाटें- **न शिशून् भर्त्सयन्।**
- भोजन करते समय दूसरा व्यक्ति देख रहा हो तो उसे भी भोजन करायें या एकान्त में बैठकर भोजन करें- **नाप्रदाय प्रेक्षमाणेभ्यः।**
- भोजन को दृष्टि (नजर) दोष से बचायें। दृष्टिदोष से भोजन को बचाने का मंत्र निम्नलिखित है-

  अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुः भोक्ता देवो महेश्वरः।
  इति संचिन्त्य भुञ्जानं दृष्टिदोषो न बाधते।

  इस मंत्र को मन में स्मरण करते हुए भोजन करते हैं। इसे बोल नहीं जाता है। खाते समय बोलने की वर्जना है।
- पत्नी के साथ एक थाली में भोजन न करें। पत्नी को भोजन करते समय न देखें- **याज्ञवल्क्य।**
- अपनी पत्नी के साथ एक पात्र में यदा-कदा भोजन करने से दोष नहीं लगता है। यह वैकल्पिक व्यवस्था है सार्वकालिक नहीं-

  भार्यया सह योऽश्नीयात् उच्छिष्टं वा कदाचन।
  न तस्य दोषं मन्यन्ते नित्यमेव मनीषिणः।।

अंगिराः।।

(विवाह के दिन पति-पत्नी एक साथ एक पात्र में भोजन करते हैं। इससे अभेद की स्थिति उत्पन्न होती है। अत: पत्नी के साथ भोजन करना पाप कर्म नहीं है, पर यह नित्यकर्म भी नहीं है। यह रतिकर्म या अनुराग कर्म में गिना जाता है।)

- रात में तिल-दधि-सक्तू न खायें।
- घृत हमेशा पहले परोसा जाता है। उसे जूठे में नहीं डालते हैं।
- भोजन करते समय सूर्य-चन्द्र-तारागण को नहीं देखना चाहिए।
- मुनि जन आठ ग्रास (कौर) खाते हैं। सोलह ग्रास वानप्रस्थी खाते हैं। बत्तीस ग्रास गृहस्थ को खाना चाहिए। ब्रह्मचारी और युवक अपनी इच्छा भर खायें-

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्यं षोडशारण्यवासिनः।
द्वात्रिंशतं गृहस्थस्य ह्यमितं ब्रह्मचारिणः।।

आपस्तम्बः।।

- हाथ पर भोजन न लें। हाथ पर घी, तेल, नमक, चटनी, सब्जी, पञ्चामृत आदि न लें-

लवणं व्यञ्जनं चैव घृतं तैलं तथैव च।
लेह्यं पेयं च विविधं हस्तदत्तं न भक्षयेत्।।

पैठीनसिः।।

- पके हुए भोजन तथा सब्जी को दर्वी (कलछी) से परोसना चाहिए; पर जल और मालपूआ आदि को दर्वी से नहीं परोसना चाहिए-

दर्व्या देयं कृतान्नं तु समस्तं व्यञ्जनानि च।
उदकं यच्च पक्वान्नं न दातव्यं कदाचन।।

मनुस्मृतिः।।

- यदि भोजन करते समय दीप बुझ जाये और अन्धकार हो जाये तो सूर्य देवता का स्मरण करना चाहिए और थाली को हाथ में उठा लेना चाहिए। दीप प्रज्वलित कर बचे हुए अन्न को खाना चाहिए पर दुबारा थाली में और अन्न नहीं लेना चाहिए-

नृणां भोजन-काले तु यदा दीपो विनश्यति।
पाणिभ्यां पात्रमादाय भास्करं मनसा स्मरेत्।।

पुनश्च दीपिका कृत्वा तच्छेषं भोजयेन्नरः।
पुनरन्नं न भोक्तव्यं भुक्त्वा पापैर्विलिप्यते।।

कात्यायनः।।

- पंक्ति में भोजन करते समय यदि एक भी व्यक्ति उठ जाये तो शेष भोजन को नहीं खाना चाहिए-

एकपंक्त्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने।
यद्येकोऽपि त्यजेत् पात्रं नाश्नीयुरितरेऽप्यनु।।

- यदि भोजन करते समय मुर्गा, कुक्कुर (श्वान), चाण्डाल आदि तृषित दृष्टि से देखें तो भोजन नहीं करना चाहिए- **तदन्नं तु परित्यजेत्।**

- भोजन के अन्त में दाँत साफ कर, कुल्ला करना चाहिए। इसे लोक में खरिका-कुल्ला कहते हैं। भोजनान्त में सोलह बार कुल्ला करने का विधान है-

कुर्यात् द्वादशगण्डूषान् पुरीषोत्सर्जने द्विजः।
मूत्रोत्सर्गे तु चतुरो भोजनान्ते तु षोडश।।

आश्वलायनः।।

अन्न शुद्धि-

- अन्न की शुद्धि पर भोक्ता को विशेष ध्यान देना चाहिए। अन्न से ही शुक्र (वीर्य) की उत्पत्ति होती है- **अन्नाद्रेतः प्रवर्तते।** अतः अनावश्यक रूप से दूसरे का भोजन नहीं करना चाहिए। दूसरे का अन्न खाकर संतानं नहीं उत्पन्न करना चाहिए-

यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा न च स्वर्गार्हिको भवेत्।
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रं प्रवर्तते।।

वसिष्ठः।।

- अन्न की अशुद्धि से, दोष से तपस्वी के पाँच तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। ये तत्त्व हैं तीन अग्नि (दक्षिणाग्नि, आहवनीयाग्नि, गार्हपत्याग्नि), आत्मा और ब्रह्मज्ञान-

यश्चाहिताग्निर्विप्रस्तु शूद्रान्नान्न निवर्तते।
पञ्च तस्य प्रणश्यन्ति आत्मा ब्रह्म त्रयोऽग्नयः।।

- छः मास तक प्रदूषित अन्न, अपवित्र अन्न, हत्याजीवी का अन्न, गणिका का अन्न, सुरा विक्रेता का अन्न खाकर व्यक्ति अपना सब कुछ खो देता है-

षण्मासान् यो द्विजो भुंक्ते शूद्रस्यान्नं विगर्हितम्।
स च जीवन्भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चैव जायते।।

- बाहर से आये हुए अन्न को धोकर खाना चाहिए जैसे गेहूँ, दाल, चावल आदि। क्रय किया हुआ कच्चा अन्न दूषित नहीं होता है।
- अपने दास, नाई, ग्वाला, कुम्भकार, कृषक का अन्न पवित्रतम व्यक्ति भी खा सकता है।

दूध, सत्तु, तेल, पिण्याक शूद्र के घर का भी हो तो उसे खाया जा सकता है-

गोरसं चैव सक्तूंश्च तैलं पिण्याकमेव च।
अपूपान् भक्षयेत् शूद्राद् यच्चान्यत्पयसा कृतम्।।

विक्रेता के पात्र से अपने पात्र में आया हुआ दूध शूद्र (अपवित्र) से प्राप्त होने पर भी ग्राह्य होता है-

स्वपात्रे यत्तु विन्यस्तं दुग्धं यच्छति नित्यशः।
पात्रान्तरगतं ग्राह्यं शूद्रात्स्वगृहमागतम्।।

अङ्गिराः।।

बाहर भोजन कब लें?

विपत्ति में, प्रवास काल में और सादर निमन्त्रण प्राप्त होने पर विचार पूर्वक निर्णय लेकर ही बाहर भोजन करना चाहिए। अनावश्यक ही दुकान से, घूम कर बेचने वालों से खाद्य पदार्थ खरीद कर नहीं खाना चाहिए। परान्न (दूसरों का अन्न) खाने वाला अपना तप खाता है। निरंतर दूसरों के घर भोजन करने वाला उस घर के पाप कृत्यों का भागी बनता है। भगवान् श्रीकृष्ण को राजा दुर्योधन ने भोजन पर बुलाया, पर उन्होंने भोजन पर आने से मना कर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने दुर्योधन के घर भोजन न करने का जो कारण बतलाया वह इस प्रकार है-

संप्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद् भोज्यानि वा पुनः।
न च संप्रीयसे राजन्! न चैवापद् गता वयम्।।

उद्योगपर्व ९१/२५।।

किसी अन्य व्यक्ति के घर भोजन दो परिस्थितियों में किया जाता है, संप्रीति होने पर या विपत्ति में फंसे होने पर। हे राजन्! हमारी आपकी संप्रीति नहीं है न तो मैं किसी विपत्ति में हूँ।

निकृष्ट अन्न (भोजन)-

निम्नलिखित प्रकार के अन्न (भोजन) को तपस्वी नहीं ग्रहण करें। इससे तप भंग होता है। इन अन्नों (भोजनों) की सूची मनुस्मृति के चतुर्थ अध्याय के २०९वें श्लोक से २२०वें तक वर्णित है। यह सूची इस प्रकार से है-

- गाय के द्वारा सूँघा हुआ अन्न- **गवा चान्नमुपाघ्रातम्।**
- दूसरे के निमित्त निकाला हुआ अन्न- **घुष्टान्नम्।**
- शठ ब्राह्मण संघों का अन्न- **गणान्नम्।**
- वेश्या का अन्न- **गणिकान्नं च।**
- विद्वानों द्वारा निंदित अन्न- **विदुषा च जुगुप्सितम्।**
- चोर का अन्न- **स्तेनस्यान्नम्।**
- गायन कर्म करने वाले का अन्न- **गायनस्य च।**
- बढ़ई का अन्न- **तक्षकस्य च।**
- वार्धुषिक अर्थात् मुनाफाखोर या आत्मप्रशंसक का अन्न- **वार्धुषिकस्य च।**
- यज्ञ में दीक्षित व्यक्ति का अन्न- **दीक्षितस्य च।**
- कदर्य अर्थात् कृपण व्यक्ति का अन्न- **कदर्यस्य च।**
- वेणी में बंधे व्यक्ति का अन्न- **वद्धस्य निगडस्य च।**
- विख्यात महापातकी जो लोक में निंदित हो उसका अन्न- **अभिशस्तस्य च।**
- षण्ढ (नपुंसक) का अन्न- **षण्ढस्य च।**
- पुंश्चली (व्यभिचारिणी) का अन्न- **पुंश्चल्याः।**
- दाम्भिक (छद्म धार्मिक) का अन्न- **दाम्भिकस्य च।**
- शुक्त (स्वभाव से ही ज्यादा मीठा हो ऐसा) अन्न- **शुक्तम्।**
- पर्युषित (रात्रि का शेष बचा) भोजन- **पर्युषितं चैव।**
- शूद्र का जूठा अन्न- **शूद्रस्योच्छिष्टमेव च।**
- वैद्य का अन्न- **चिकित्सकस्य।**
- व्याध (शिकारी) का अन्न- **मृगयोः।**
- क्रूर व्यक्ति का अन्न- **क्रूरस्य।**
- जूठा खाने वाले का अन्न- **उच्छिष्टभोजिनः।**
- प्रसूतिका के लिए बना हुआ अन्न- **सूतिकान्नम्।**
- पंक्ति में शीघ्र आचमन करने (खाकर उठने) वाले का अन्न- **पर्यचान्तम्।**
- सूतक, छठी-बरही के भीतर बना अन्न- **अनिर्दशम्।**
- बिना सत्कार का दिया हुआ भोजन- **अनर्चितम्।**
- देवता को अर्पित न किया हुआ मांस भोजन- **वृथामांसम्।**

- अवीरा स्त्री (पति-पुत्र रहित-बांझ या विधवा) का अन्न- **अवीरायाः।**
- शत्रु का अन्न, नगरपति का अन्न-पतित का अन्न- **द्विषदन्नं नगर्यन्नम्।**
- जिस पर छींक का कण-वाष्प पड़ गया हो ऐसा अन्न- **अवक्षुतम्।**
- चूगलखोर (पिशुन) का अन्न- **पिशुनस्य च।**
- झूठा-मक्कार का अन्न- **अनृतवादिनः।**
- यज्ञ को बेचने वाले का अन्न- **क्रतुविक्रयिणः।**
- नट (शैलूष) का अन्न- **शैलूषान्नम्।**
- दर्जी, बुनकर (तन्तुवाय, जुलाहा) का अन्न- **तन्तुवायान्नम्।**
- कृतघ्न का अन्न- **कृतघ्नान्नम्।**
- लोहार का अन्न- **कर्मारस्य।**
- निषाद (मल्लाह) का अन्न- **निषादस्य।**
- रंगसाज (नाटक करने वाले) का अन्न- **रंगावतारकस्य।**
- स्वर्णकार का अन्न- **सुवर्णकर्तुः।**
- वेण (बाँस से जीविका चलाने वाले) का अन्न- **वेणस्य।**
- शस्त्र बेचने वाले का अन्न- **शस्त्रविक्रयिणः।**
- शिकारी कुत्ता पालने वाले का अन्न- **श्ववताम्।**
- शौण्डिक (शराब बेचने वाले) का अन्न- **शौण्डिकानाम्।**
- धोबी का अन्न- **रजकस्य च।**
- रंगरेज का अन्न- **रंजकस्य च।**
- नृशंस (निर्दय) का अन्न- **नृशंसस्य।**
- जिस घर में उपपति रहता हो- **यस्य चोपपतिर्गृहे।**
- उपपति को सहने वाले पति का अन्न- **मृष्यन्ति ये चोपपतिम्।**
- स्त्री के वशवर्ती का अन्न- **स्त्रीजितानाम्।**
- सूतक के भीतर का प्रेतान्न- **प्रेतान्नम्।**
- अतुष्टिकर अन्न- **अतुष्टिकरमेव च।**
- विवाहिता पुत्री के घर भोजन नहीं करना चाहिए-

  ब्रह्मदेये न वै कन्यां दत्वाऽश्नीयात् कदाचन।
- पुत्री को संतान प्राप्ति के बाद उसके घर भोजन किया जा सकता है-

  अप्रजायां तु कन्यायां नाश्नीयात् तस्य वै गृहे।

- राजा का अन्न तेजस्विता को खा जाता है। शूद्र का अन्न ब्रह्मवर्चस्व को खा जाता है। सुवर्णकार का अन्न आयु को खा जाता है, चर्मकार (चमड़ा व्यवसायी) का अन्न यश को खा जाता है। तपस्वी को दीर्घकाल तक इनके अन्न को नहीं खाना चाहिए। न तो इनके द्वारा जीविका ग्रहण करनी चाहिए-

राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम्।
आयुः स्वर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्तिनः।।

मनुस्मृतिः, ४/२१८।।

बढ़ई या शिल्पी का अन्न संतान को नष्ट करत। है। रंगरेज का अन्न बल को नष्ट करता है। शठों के समूह का अन्न तथा वेश्या का अन्न स्वर्ग एवं पुण्य का नाश करता है-

कारुकान्नं प्रजां हन्ति बलं निर्णेजकस्य च।
गणान्नं गणिकान्नं च लोकेभ्यः परिकृन्तति।।

मनुस्मृतिः, ४/२१९।।

बढ़ई, नट (शैलूष), दर्जी, बुनकर, लोहार, निषाद (मल्लाह), रंगसाज, स्वर्णकार, वेण, धोबी, रंगरेज, चर्मकार प्रभृति जाति के बारे में मनु महाराज का कथन कालवाह्य, अनुपयुक्त, अस्वीकृत तथा लोकविद्वेषकारक है। अन्न दोष जाति से नहीं बल्कि कुकर्म से माना गया है। वर्तमान में कर्म आधारित जातिव्यवस्था नहीं रह गयी है। सभी जातियाँ सभी कर्मों को कर रही हैं।

श्रद्धापूर्वक दिया भोजन लेना चाहिए-

श्रद्धापूर्वक दिया हुआ अन्न खाना चाहिए- चाहे वह चोर का ही अन्न क्यों न हो- **श्रद्दधानस्य भोक्तव्यं चौरस्यापि विशेषतः।। वीरमित्रोदयः।।**

अपने गुरु और पूज्य भी यदि सत्कार रहित, उपेक्षाभाव से भोजन करायें तो नहीं करना चाहिए- **गुरोरपि न भोक्तव्यमन्नं सत्कारवर्जितम्।। वीरमित्रोदयः।।**

अश्रद्धापूर्वक दिया हुआ और हवन किया हुआ तपस्वी विप्रों द्वारा त्याज्य होता है- **अश्रद्धया हुतं दत्तमभोज्यं तद् द्विजातिभिः।। वीरमित्रोदयः।।**

अश्रद्धावान् व्यक्ति का अन्न खाने से या बेइज्जतीपूर्वक निर्लज्ज होकर अन्न खाने से मनुष्य को भ्रूण हत्या का पाप लगता है-

अन्नमश्रद्दधानस्य यो भुंक्ते भ्रूणहा भवेत्।। वीरमित्रोदयः।।

व्यक्ति जिस प्रवृत्ति का होता है उसका अन्न वैसा ही फल देता है। अतः सोच विचार कर दूसरों के घर का भोजन करना चाहिए-

दुष्कृतं हि मनुष्यस्य अन्नमाश्रित्य तिष्ठति।
यो यस्यान्नमिहाश्नाति स तस्याश्नाति किल्विषम्।।

वीरमित्रोदयः।।

स्वभोजन का त्याग न करें-

यदि अपने घर में भोजन बन कर तैयार हो और बाहर का कोई व्यक्ति आकर निमन्त्रण दे या भोजन करने का दबाव बनाये तो भी स्वपाक का परित्याग नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति स्वपाक का त्याग करके परपाक का ग्रहण करता है वह अश्व, शूकर या कुत्ते की योनि में उत्पन्न होता है-

स्वपाके वर्तमाने यः परपाकं निषेवते।
सोऽश्वत्वं शूकरत्वं च गर्दभत्वं च गच्छति।।

दूसरे के घर का सामान्यतः भोजन नहीं करना चाहिए। व्रत रखकर कभी भी दूसरे के घर पारण नहीं करना चाहिए; अन्यथा व्रत का पुण्य अन्नदाता को प्राप्त हो जाता है।

प्रतनक (प्रोटीन) और जीवनीय (विटामिन्स) तत्त्व-

शरीर को संचालित करने में प्रोटीन और जीवनीय (विटामिन्स) तत्त्व की निरंतर आवश्यकता होती है। शाकाहारी व्यक्ति दूध और दाल से प्रोटीन को प्राप्त करता है; जबकि मांसाहारी व्यक्ति मांस, मछली, अण्डा से इसे प्राप्त करता है।

विटामिन्स वसा और जल के रूप में विभाजित है। विटामिन 'ए' शरीर विकास, विषाणुहरण तथा नेत्रज्योति के लिए अनिवार्य तत्त्व है। यह शाकाहारी व्यक्ति को दूध, मक्खन, गोघृत से प्राप्त होता है तथा मांसाहारी को मछली, काडलिवर, मांस, अण्डे से प्राप्त होता है। **विटामिन 'डी'** सूर्य किरणों से शरीर में स्वयं बनता है। गोघृत में यह प्रचुर मात्रा में मिलता है। अण्डा, वसा, काडलीवर के माध्यम से मांसाहारी इसे प्राप्त करते हैं। **विटामिन 'इ'** प्रजनन प्रक्रिया हेतु उत्तम है। हरी सब्जी तथा अंकुरित अनाजों में यह सर्वाधिक मात्रा में उपलब्ध है। **विटामिन 'के'** रक्त जमने के लिए आवश्यक होता है। यह पत्तावाली सब्जी, गोभी, सोयाबीन में पाया जाता है। **विटामिन 'बी'** हृदय के लिए आवश्यक होता है। चावल, दाल, दूध, हरीसब्जी के माध्यम से शाकाहारी तथा अण्डे, मांस, मछली से मांसाहारी इसे प्राप्त करते हैं। **विटामिन 'सी'** यह रक्त कोशिकाओं तथा रक्तकणों के लिए अनिवार्य तत्त्व है। इसे शाकाहारी व्यक्ति संतरा, नींबू, टमाटर, हरी सब्ज़ी, आँवला, अमरूद से प्राप्त करता है। यह मांस में भी उपलब्ध होता है। इसके बिना दन्त रोग, रक्ताल्पता, दुर्बलता, घाव भरने में विलम्ब होता है।

छत्राक (कुकुरमुत्ता) भोजन का निषेध-

कवक (कवाछ), छत्राक (कुकुरमुत्ता) की सब्जी को अत्यन्त गर्हित माना गया है। विष्णु भगवान् ने जब मधुकैटभ का वध किया तो उन दोनों के शरीर से कट कर गिरा हुआ माँस जहाँ-जहाँ पड़ा वहाँ-वहाँ छत्राक और कवक उत्पन्न हुआ। अत: इन दोनों को खाने से तपस्या का भंग सुनिश्चित है। भूख लगने पर सर्प को मार कर खा जाना उचित है, लेकिन छत्राक का खाना नहीं। छत्राक खाने से शरीर के भीतर दिव्य तेज की उत्पत्ति नहीं हो पाती है-

विष्णुना हन्यमानानां यन्मेदः पतितं भुवि।।
पिण्डोपमं तु कुंखुण्डं कवकं चैत्यसन्निभम्।
छत्राकं छत्रसदृशं दैत्यदेहसमुद्भवम्।।

वरं स्वयं विशस्यापि सर्वमांसानि भक्षयेत्।
नैव छत्राकमश्नीयाद् द्विजात्यपसदोऽपि सन्।।

वीरमित्रोदयः।।

छः अभक्ष्य पदार्थ-

छत्राक (कुकुरमुत्ता), विड्वराह (ग्राम सूअर), लशुन (लहसून), ग्रामकुक्कुट (ग्राम्य मुर्गा), पलाण्डु (प्याज) तथा गृञ्जन (लालमूली, सलगम, गाजर) इन छः को जानबूझ कर नहीं खाना चाहिए-

छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम्।
पलाण्डुं गृञ्जनं चैव मत्या जग्ध्वा पतेद् द्विजः।।

मनुस्मृतिः, ५/१९।। याज्ञवल्क्यस्मृतिः, १/१७६।।

तिथिभेद से वर्जित शाक-सब्जी-

- प्रतिपदा को कूष्माण्ड (सीताफल या कोंहड़ा) न खायें। **धन नाशक है।**
- द्वितीया को बृहती (बैंगन या कटेहरी) न खायें। **भक्तिनाशक है।**
- तृतीया को पटोल (परवल) न खायें। **शत्रवर्धक है।**
- चतुर्थी को मूली नहीं खाना चाहिए। **धन नाशक है।**
- पंचमी को बेल नहीं खाना चाहिए। **कलंक कारक है।**
- षष्ठी को नीम (कड़ी या मिट्ठी पत्ती वाली) नहीं खायें। **जीवन नाशक है।**
- सप्तमी को ताल (महातृण या तरकुल) का फल न लें। **रोग वर्धक है।**
- अष्टमी को नारियल न खायें। **बुद्धि नाशक है।**

- नवमी को लौकी न खायें। **संतान नाशक है।**
- दशमी को कलम्बी (करेमू या जल करमी) न खायें। **वंश नाशक है।**
- एकादशी को शिम्बी (सेम) न खायें। **संतान नाशक है।**
- द्वादशी को पूतिका या शतपूतिया नहीं खायें। **संतान नाशक है।**
- त्रयोदशी को वार्त्ताकी (बड़ा बैगन) न खायें। **इसका बृहद् विवेचन ब्रह्म वैवर्त्तपुराण के श्रीकृष्ण भाग में ८५/४-५ में आया हुआ है।**
- रविवार को अदरक और लाल रंग का शाक नहीं खाना चाहिए।
- कार्त्तिक मास में. बैगन और द्विदल (दाल) नहीं खाना चाहिए।
- नमक और दूध एक साथ लेने से शरीर में विकृति आती है। चर्मरोग तथा उदररोग होते हैं। यह परस्पर अतिविरुद्ध है।
- दूध-मट्ठा एक साथ न लें। इससे शरीर के भीतर सत्व का नाश होता है।
- लोहे के वर्तन में खाने से प्रतिकूलता बढ़ती है। बायें हाथ से भोजन नहीं परोसते हैं। भोजन के पात्र में हाथ नहीं धोते हैं।
- कांस्य पात्र में नारियल जल न रखें, न पियें- **नारिकेलोदकं कांस्ये।**
- ताम्रपात्र में मधु, ईख रस, दूध-दही न रखें। इसमें गाय का घी रखते हैं।
- लहसुन, प्याज, गाजर, शलगम, कुकुरमुत्ता, सफेद बैगन, लाल मूली और अशुभ स्थान में उत्पन्न शाक-शब्जी त्याज्य हैं। इनसे योग, ब्रह्मचर्य, विद्या, तेज भ्रष्ट होता है (मनुस्मृतिः, ५/५)।
- मदिरा (सुरा) को देखना और छूना भी नहीं चाहिए- **मद्यं नित्यं विवर्जयेत्।** मद्यपान करने से व्यक्ति सात्विक गुणों से च्युत हो जाता है। वह तमोगुणी या रजोगुणी हो जाता है। पान (मदिरा) पीने से धृति (धैर्य), लज्जा तथा बुद्धि का नाश होता है। महा.अनु., १४५।।
- मदिरा स्पर्श करने पर तीन प्राणायाम करें। मदिरा के वर्त्तन में पीने से चान्द्रायण करें। कूर्म पुराण, ३५।
- भोजन करने के बाद बचे हुए जूठे को घर से बाहर शुद्ध स्थान पर रख देते हैं।
- **माघे त्यजेन्मूलकम्-** माघ मास में मूली नहीं खाते हैं।
- **श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधिभाद्रपदे त्यजेत्।**
  तक्रं चाश्वियुजे चैव कार्त्तिके द्विदलं त्यजेत्।।

श्रावण मास में शाक, भाद्रपद में दधि, आश्विन मास में मट्ठा और कार्तिक मास में दाल नहीं खाना चाहिए। इन पर ऋतु का दुष्प्रभाव तीव्र होता है।

पेयजल-

भोजन के समय या दिन रात्रि में जब भी प्यास लगे उस समय पीने हेतु जल अत्यन्त शुद्ध और पवित्रतम लिया जाता है। प्राचीन भारत में नदी से या कूप से पेयजल को संचित किया जाता था। इसे संचित करने से पूर्व वस्त्र से छान कर घड़े में रखा जाता था। फिटकरी और घटस्त्राव (बूँद बूँद कर टपकता जल) के द्वारा जल को पेय बनाया जाता था। विशेषरूप से वर्षा में जल की अपेयता की समस्या बहुत बढ़ जाती है। उस समय जल को लेकर बहुत सावधानी रखनी पड़ती है। जलज रोगों से वचने के लिए पानी को उबाल कर पुनः ठण्ढा कर दिनभर पीने हेतु प्रयोग में लाया जाता है।

वर्षा ऋतु में अपेक्षाकृत कम जल पिया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में सर्वाधिक पेय शीतल जल की आवश्यकता होती है। यूष और अन्य रसों को प्रायशः वर्षा ऋतु में पीने का विधान था-

उष्णो हैमे वसन्ते च कामं ग्रीष्मे तु शीतलम्।
हेमन्ते च वसन्ते च सीध्वरिष्टौ पिवेन्नरः।।

सुश्रुतचिकित्सा २४।।

शाकाहारी व्यक्तियों द्वारा सीधु और अरिष्ट का सेवन नहीं किया जाता है। वे फलों का रस, फल और विविध प्रकार के रस पदार्थों को लेते हैं।

ऋतुहरीतकी का सेवन-

जैसे दुग्ध सभी ऋतुओं में, सभी दिनों में सेवनीय होता है उसी तरह से हरीतकी (हर्रे) के सेवन से मनुष्य हमेशा बलवान् और आरोग्यवान् बना रहता है। छः ऋतुओं में रात में सोने से पूर्व यदि हर्रे के चूर्ण को अनुपान के साथ लिया जाय तो व्यक्ति कभी आभ्यन्तरज बीमारी से पीड़ित नहीं होगा-

ग्रीष्म (जून-जुलाई)	गुड़ + हर्रे चूर्ण
वर्षा (अगस्त-सितम्बर)	सैन्धव नमक + हर्रे चूर्ण
शरद् (अक्टूबर-नवम्बर)	शर्करा + हर्रे चूर्ण
हेमन्त (दिसम्बर-जनवरी)	शुण्ठी + हर्रे चूर्ण
शिशिर (फरवरी-मार्च)	पिप्पली + हर्रे चूर्ण
वसन्त (अप्रैल-मई)	मधु + हर्रे चूर्ण

हरीतकी को माता कहा गया है। मातृ दुग्ध की तरह हरीतकी मनुष्य के लिए कल्याणकारी होती है-

हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी।
कदाचित् कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी।।

भावप्रकाशः।।

ऋषियों, मुनियों के घर में त्रिफला में हरीतकी सदैव विद्यमान् रहती थी। आज भी यदि इस अनुपान को लिया जाय तो ऋतुजनित (वायरल) बीमारियाँ कभी परेशान नहीं कर सकेंगी।

ताम्बूल भक्षण-

भोजन करने के बाद हाथ धोकर, छः छिद्रों का सजल स्पर्श करके आचमन पूर्वक ताम्बूल (पान) खाना चाहिए-

भूयोऽप्याचम्य कर्त्तव्यं ततस्ताम्बूलभक्षणम्।।

मार्कण्डेयः।।

पान का पत्ता साफ सुथरा, अत्रुटित होना चाहिए। पान के पत्ते का अग्रभाग तथा पीछे का डंटल तोड़कर ही प्रयोग में लाया जाता है। अग्रशिरा तामसिक होता है तथा पीछे का डंटल (मूल भाग) रोग दायक होत है। अतः इनको तोड़कर हटा दिया जाता है-

पर्णमूले भवेद् व्याधिः पर्णाग्रे पापसंभवः।
चूर्णपर्णं हरेदायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी।।

तस्मादग्रं च मूलं च शिरां चैव विशेषतः।
चूर्णपर्णं वर्जयित्वा ताम्बूलं खादयेद् बुधः।।

भोजन के अन्त में अतिथि को, यज्ञ के अन्त में विप्रों को तथा पूजन में भोग के अन्त में देवताओं को ताम्बूल समर्पित किया जाता है। अत्यन्त प्राचीन काल से भारतवर्ष में ताम्बूल भक्षण होता रहा है। शिशु को पहली बार ताम्बूल खिलाने का मुहूर्त्त निकाला जाता है। चूना, कपित्थ (कत्था), पूगीफल के टुकड़े, लौंग, इलायची को डालकर पान का बीड़ा लगाया जाता है। पूगीफल के विषम टुकड़े एक, तीन या पाँच ही पान के पत्ते में डाले जाते हैं। **एकपूगं त्रिपूगं वा दानं खादनमुत्तमम्।** दूसरों को ताम्बूल खिलाने वाले की मेधा, सौभाग्य, प्रज्ञा और सौन्दर्य की वृद्धि होती है-

ताम्बूलं चैव यो दद्यात् ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः।
मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनीयश्च जायते।।

संवर्तस्मृतिः, ५६।।

प्रतिदिन देवताओं को पान चढ़ाने वाला महाभाग्यशाली होता है। पान को चबा कर दो बार उसके रस को थूकना अनिवार्य होता है। उसके बाद रस को घोंटते हैं-

रसनिष्ठीवनं पूर्वं द्विवारं तु ततः पिवेत्।

पान के पत्ते में डाले बिना केवल पूगीफल (सुपाड़ी) नहीं चबाना चाहिए-

अकृत्वा च मुखे पर्णं पूगं खादति यो नरः।
दशजन्म-दरिद्रस्तु मरणे न हरिस्मृतिः।।

रात में ताम्बूल नहीं खाना चाहिए- **रात्रौ ताम्बूलं न भक्षयेत्।**

अत्यधिक पान नहीं चबायें-

अति पान चबाने से पीलिया, दन्तक्षय, मुख कैंसर, नेत्र रोग तथा बल क्षय होता है। खाली पेट ताम्बूल खाने से विविध प्रकार के रोग होते हैं। इससे पित्त और हृदय कष्ट भी संभव है-

पाण्डुत्वं दन्तदौर्बल्यम् अतिरोगं बलक्षयम्।
करोति मुखरोगांश्च ताम्बूलमतिसेवनात्।।

आश्वलायनः।।

मांस भोजन विचार

मांस भोजन- सृष्टि के आरम्भ से ही प्राणियों में पृथ्वी पर एक दूसरे का मांस खाने की प्रवृत्ति एवं व्यावहारिक स्थिति रही है। मनुष्य विचारवान् एवं विवेकशील प्राणि है। अतः सभी ऋषियों ने स्वाद एवं पेट भरने के लिए मांस खाने की वर्जना की है। देवों को बलि देने के बाद ही मांस को प्रसाद रूप में खाना चाहिए।

स्वाद के लिए मांस निषेध- प्राचीन भारत में स्वाद के लिए प्राणिवध करके मांस खाने का निषेध सर्वत्र प्राप्त होता है। देवता को चढ़ाने के लिए तथा अतिथि सत्कार में भोजन कराने के लिए पशुवध करना चाहिए ऐसा निर्णय ऋषियों ने दिया-

नात्मार्थं पाचयेदन्नं नात्मार्थं घातयेत् पशून्।
देवार्थे ब्राह्मणार्थे च पचमानो न लिप्यते।।

यज्ञ-पूजन के बिना कृसर (खीचड़ी), संयाव (हलुआ, मोहनभोग), पायस (खीर), मालपूआ आदि व्यर्थ होता है-

वृथा कृसरसंयावं पायसापूपमेव च।
अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषि च।।

मनुस्मृतिः ५/७।।

वर्तमान में कतिपय संस्थायें पूजा बलि का विरोध करती हैं। उनका कहना है- यज्ञ और पूजन के लिए पशुबध नहीं होने देंगे। ये संस्थायें व्यक्तिगत रूप से खाने हेतु प्राणिवध का विरोध नहीं करती हैं। इनका तात्पर्य केवल हिन्दूधर्म के विरोध में है। स्वार्थतः प्राणिवधं इन्हें मान्य है; पर परमार्थतः बलि का ये विरोध करती हैं। खाद्य (भक्ष्य) पशु-पंछियों की बलि यज्ञ के लिए करने का विधान है-

यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः।
भृत्यानां चैव वृत्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्पुरा।।

मनुस्मृतिः ५/२२।।

वृद्ध माता-पिता, दादा-दादी या कुल में स्थित आश्रित वृद्धों के भोजन, औषध के लिए प्राणिवध विहित है- **'भृत्यानां भरणीयानां संवर्धनार्थम्।'**

स्वाद के लिए जीवघात नहीं करना चाहिए। जीवघात किये बिना भक्ष्य मांस की प्राप्ति नहीं होती है। अनावश्यक अकारण किसी को सर्प भी नहीं काटता, फिर क्षणिक स्वाद के लिए प्राणिवध का पाप क्यों बटोरा जाये-

आत्मार्थं स्वादुकामित्वाज्जीवघातं न कारयेत्।
कष्टं हि व्यालधर्मत्वाज्जीविमांसोपजीवनम्।।

पशुवध की धार्मिक प्रक्रिया-

छाग को तीन बार गीले कपड़े से पोंछते हैं। उस समय 'दुर्गे दुर्गे रक्षिणी स्वाहा' बोलते रहते हैं। (जिसको बलि देनी है उसका नाम लेते हैं।) उसके माथे पर सिंदूर लगाते हैं।

छाग को मंत्र बोलते हुए स्नान कराते हैं-

अजस्नाने महेशानि सान्निध्यमिह कल्पय।
पशुपाशविनाशाय हेमकूटस्थिताय च।।

गन्ध और जल छाग के ऊपर छिड़कें और तीन बार पोछें-

ॐ छाग त्वं बलिरूपेण महाभाग्यादुपस्थितः।
प्रणमामि सदा भक्त्या रूपिणं बलिरूपिणम्।।

चण्डिका-प्रीतिकामस्य दातुरापद्विनाशिने।
चण्डिका-बलिरूपाय बले तुभ्यं नमो नमः।।

यज्ञार्थे पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा।
अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः।।

संकल्प-

............अमुक नामाऽहं एतद् छागं वह्नि-दैवतं भगवत्यै...........कालिकायै/दुर्गायै/तुभ्यं घातयिष्ये।

खड्गपूजा-

तलवार या खड्ग पर गंध-अक्षत-पुष्प चढ़ायें-

ॐ कालि कालि वज्रेश्वरी लौहदण्डाय नमः।

सिंदूर से शस्त्र पर या खड्ग पर 'ह्रीं' लिखें।

छाग के कान में मंत्र बोलते हैं-

ह्रीं बलिरूपाय विद्महे देवीप्रियाय धीमहि।
तन्नः पशुः प्रचोदयात्।।

खड्गप्रार्थना-

ॐ असिर्विशसनः खड्गः तीक्ष्णधारो दुरासदः।
श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपाल नमोऽस्तु ते।।

इत्यष्टौ तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा।
नक्षत्रं कृत्तिका ते तु गुरुर्देवो महेश्वरः।।

रोहिण्यश्च शरीरं ते धाता देवो जनार्दनः।
पिता पितामहो देवः त्वं मां पालय सर्वदा।।

नीलजीमूतसंकाशः तीक्ष्णदंष्ट्रः कृशोदरः।
भावशुद्धोऽमर्षणश्च अतितेजाः तथैव च।।

इयं येन धृता क्षोणी हतश्च महिषासुरः।
तीक्ष्णधाराय शुद्धाय तस्मै खड्गाय ते नमः।।

इस प्रार्थना को करके एक घात (झटके) से ग्रीव (गर्दन) काटकर मुण्ड और रुधिर देवी को समर्पित करते हैं और मंत्र बोलते हैं-

पशुपाशाय विद्महे विप्रकर्णाय धीमहि।
तन्नः छागः प्रचोदयात्।।

समर्पण-

ॐ इमं छागरुधिरं समुण्डं विष्णुदैवतं भगवत्यै काल्यै/ दुर्गायै तुभ्यमहं सम्प्रददे। (जल पृथ्वी पर छोड़ें।)

मांस भक्षण होता रहेगा- जब तक सृष्टि रहेगी मांस भक्षण होता रहेगा। शुभ वर्जनाओं को, नियमों को मानवीय सृष्टि में अथवा चर अचर सृष्टि में संपूर्णतः कभी भी नहीं माना जाता है। यह सृष्टि सत्-रज-तम प्रधान है। अतः तामसिक भोजन, मांसादि भक्षण की अधिकता या न्यूनता हो सकती है; सर्वथा निषेध संभव नहीं है। पुरोडाश (हविष्य) में पशु-पक्षियों का मांस देवता को अर्पित करने के लिए बनता था। आज मनुष्य स्वयं को तृप्त करने के लिए मांस खा रहा है-

बभूवुर्हि पुरोडाशा भक्ष्याणां मृगपक्षिणाम्।
पुराणेष्वपि यज्ञेषु ब्रह्मक्षत्रसवेषु च।।

मनुस्मृतिः, ५/२३।।

स्वाभाविक प्रवृत्ति है मांस भक्षण- जिसने एक बार मांस का भक्षण कर लिया अथवा मद्य का पान कर लिया वह इन दोनों को छोड़ नहीं पाता है। मांस, मदिरा, मैथुन मनुष्य और अन्य जीवों में स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति प्रत्येक शरीर में ईश्वर प्रदत्त है। इन प्रवृत्तियों से केवल और केवल मनुष्य ही ऊपर उठ सकता है। मांस, मदिरा, मैथुन का परित्याग दृढ़व्रती मनुष्य ही कर सकता है। वह भी संकल्प का दृढ़निश्चयी मनुष्य ही इन चीजों को छोड़ सकता है। मांस, मदिरा, मैथुन से ऊपर उठना महाफलदायी होता है। इनका परित्याग करने वाला इन्द्रियजयी होता है, तपस्वी होता है-

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेष भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला।।

मनुस्मृतिः, ५/५६।।

मनुष्य और पशुकर्म से ऊपर उठ कर देवकर्म में वही प्रवेश करता है जो अपनी 'प्रवृत्ति' पर अंकुश लगाकर 'निवृत्त' हो लेता है।

धनाढ्य वर्ग की पसंद- महाभारत काल (ई.पू. ३२०० वर्ष) में भी सामाजिकी प्रवृत्ति विशेषतः धनाढ्यों में प्रतिदिवसीय मांस भक्षण की थी। धनाढ्य

वर्ग मांस भक्षण को श्रेष्ठतम भोजन मानता है। मध्यवर्ग गोरस (दूध) को श्रेष्ठतम मानता है और दरिद्रवर्ग तेल से अपना काम चलाता है-

आढ्यानां मांसं परमं मध्यानां गोरसोत्तरम्।
तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ।।

महाभारत उद्योगपर्व, ३४/४९।।

मांस भक्षण की निर्दोषता- देवता, पितर, अतिथि के कर्म से शेष बचा मांस भक्षणीय होता है। औषध में यदि मांस पड़ा है तो जीवन की रक्षा के लिए औषध भक्षणीय होता है। आयुर्वेद या चिकित्साविज्ञान द्वारा निर्दिष्ट औषध यदि मांस युक्त है तो भी भक्षणीय है। ऐसे में सीधे भी मांस खाया जा सकता है। यज्ञादि में दी हुई बलि को खाने के लिए प्राप्त निमन्त्रण में भी मांस भक्षण में कोई दोष नहीं होता है-

भक्षयन्नपि मांसानि शेषभोजी न लिप्यते।
औषधार्थमशक्तौ वा नियोगाद् यज्ञकारणात्।।

अतः मांस का भक्षण अनादि काल से चला आ रहा है।

आधुनिक परिवेश-, इक्कीसवीं शताब्दी (सन् २०१० तक) में एक नयी प्रवृत्ति पनपी है। यह प्रवृत्ति मांस-भक्षण को स्वास्थ्य के लिए आवश्यक, अनिवार्य तथा अपरिहार्य मानती है। मांस भक्षण से प्रोटिन एवं विटामिन की आपूर्ति होती है। शारीरिक बल बढ़ता है तथा बल के कारण दीर्घ काल तक कार्यक्षमता बनी रहती है। ऐसी मान्यता बनी हुयी है। मांस भक्षण से 'काम' क्षमता में वृद्धि होती है। एक प्रकार से भौतिक (शरीर) वाद की संपुष्टि में विज्ञानवाद का आश्रय लिया जा रहा है।

मांस भक्षण से आयु बढ़ने का प्रमाण और अनुमान कहीं भी नहीं उपलब्ध है। प्रोटिन, विटामिन आदि आवश्यक तत्त्वों की प्राप्ति शाकाहारी भी कर लेते हैं और वे बल तथा 'काम' शक्ति में भी मांसाहारियों से कमजोर नहीं होते हैं। आयु में तो वे सुनिश्चित ही दीर्घजीवी होते हैं।

मांस भक्षण क्यों नहीं?

- मांस खाने से उस प्राणिजनित व्याधि की प्राप्ति होती है-

  व्याधिभिश्चैव पीड्यते।

- यदि मांस उबालने से व्याधिकारण नष्ट हो जाता है तो उसी तरह से बलकारण भी नष्ट हो जाता है। अतः- **न चैव भक्षयेन् मांसम्।**

- सभी मांस में कुछ न कुछ बड़ा दोष रहता है-

  सर्वेषामेव मांसानां महान् दोषस्तु भक्षणे।

- मांस न खाने से पुण्य (धर्म) की प्राप्ति होती है-

  अभक्षणे तु धर्मः स्याद् विशिष्ट इति नः स्मृतम्।

- दूसरे के मांस को खाने से अपना मांस नहीं बढ़ता है। बढ़ती है तो केवल व्याधि-

  स्वमांसं परमांसेन यो वर्द्धयितुमिच्छति।
  यत्र यत्राभिजायेत स भवेद् व्याधिपीडितः।।

- मांस खाने वाला व्यक्ति उस प्राणि का रज-वीर्य-रक्त का अंश भी खाता है-

  यो यस्य भक्षयेन्मांसं स तस्याश्नाति किल्विषम्।

- मांस खा कर स्नान करने से शुद्धि नहीं होती है। स्नान कर अपने को शुद्ध मानने वालों पर देवता हसते हैं-

  भक्षयित्वा तु यो मांसम् अद्भिः शौचं समाचरेत्।
  हसन्ति देवताः सर्वाः अशुचेः शुचिदर्शिनः।।

मांस की निरुक्ति-

मांस शब्द का तात्विक अर्थ विद्वान् इस तरह से बतलाते हैं- मां (मुझको) स (वह) भक्षयिष्यति (खायेगा) जिसको मैं अभी खा रहा हूँ।' महाभारत, अनु. ५/५५।।

सप्त घातक-

- प्राणिवध की अनुमति देने वाला
- निहन्ता (मारने वाला) अर्थात् घातक
- विशसिता (टुकड़े टुकड़े करने वाला)
- क्रय-विक्रयी (बेचने वाला-खरीदने वाला)
- संस्कर्त्ता (पकाने वाला) अर्थात् पाचक
- उपहर्त्ता (परोसने वाला)
- खादक (खाने वाला)

ये सात प्रकार के घातक कहे गये हैं (मनुस्मृतिः, ५/५१)।

प्राणिवध से उत्पन्न पाप एक चौथाई मांस खरीदने वाले को, एकचौथाई पाप खाने वाले को तथा एक चौथाई पाप घातक को लगता है। खादक, घातक, क्रेता तीनों तुल्य पापी होते हैं- **खादको घातकः क्रेता सर्वेतुल्या न संशयः।**

खादक न हों तो घातक भी नहीं होंगे- **यदि तत्खादको न स्यात् घातको न तथा भवेत्।**

प्राणिवध घोर पाप है-

मांस न तो पृथ्वी से उत्पन्न होता है न ही वृक्ष से उत्पन्न होता है। मरे हुए (स्वतः मृत) मांस को रोगादि भय से कोई नहीं खाता है। सभी प्राणि जीवित रहना चाहते हैं। सभी की देह परमप्रिय होती है। अतः जीववध का त्याग करना चाहिए-

न भूमेर्जायते मांसं न च वृक्षात् प्ररोहति।
घोरं प्राणिवधं कृत्वा तस्मान् मांसं विवर्जयेत्।।

खून और मांस पिशाच तथा राक्षस खाते हैं। रक्त मांस के बिना ये नहीं रह पाते हैं। मांस के न खाने से सुख मिलता है। मांस खाने वाला आत्यन्तिक सुख को नहीं प्राप्त करता है- **न क्वचित् सुखमेधते।। मनुस्मृतिः ५/४५।।**

सांख्यमत और मीमांसा मत-

सांख्यशास्त्र के अनुसार यज्ञ में भी प्राणिवध से उत्पन्न पाप का क्षय भोग के बिना नहीं होता है। अतः जीव वध नहीं करना चाहिए। मीमांसा मत के अनुसार मन्त्रविद् द्विज यज्ञ में जिन पशुओं, ओषधियों, वृक्षों, तिर्यग्, पक्षियों को मारता है वे सभी जीव उत्तम योनि में उत्पन्न होते हैं। मनुस्मृतिः, ५/४०।। यज्ञ में बलि देने वाला द्विज देव कार्य करने से पाप का भागी नहीं होता है। अश्वमेध यज्ञ से उत्पन्न फल और मांस भक्षण न करने से उत्पन्न फल तुल्य होता है। जो चार वर्षों तक लगातार मांस नहीं खाता है वह आयु, कीर्ति, यश, बल को प्राप्त करता है-

चतुरो वार्षिकान् मासान् यो मांसं परिवर्जयेत्।
चत्वारि भद्राण्याप्नोति कीर्तिमायुर्यशोबलम्।।

निषिद्ध मांस-

भाष (गीध), बाज, चील, कबूतर, मैना, गौरैया, गधा, टिटिहरी, परेवा, हंस, चकवा, जोंक, ग्राम मुर्गा, सारस, कौआ, डोम कौआ, जल कौआ, चकोर, कोयल, चाष, कंक, क्रौंच, चक्रवाक, कुररी, हारीत, तोता (शुक), कठफोरवा, मेढ़क, बत्तख, तीतर, बगुला, उल्लू, करेरुआ, खंजन, ग्राम सूअर, सर्प, बन्दर, लंगूर प्रभृति का मांस नहीं खाना चाहिए। लाल चोंच, लाल पंजे वाले पंक्षियों को नहीं खाना चाहिए। चूहा, चूहिया, नेवला, सियार, वनमानुष को

नहीं खाना चाहिए। गाय, घोड़ा, सिंह, व्याघ्र, भालू, शरभ, अजगर हाथी का मांस खाना वर्जित है।

भक्ष्य मांस-

पाठीन (पोठा या पोठिया), रोहित (रोहू), राजीव (वरारी), सिंहतुण्ड (चौड़े मुख वाली मछली) तथा चोंइटा से युक्त मछली को देवकार्य तथा पितृकार्य में भक्षण किया जाता है-

पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोः।
राजीवान् सिंहतुण्डांश्च सशल्कांश्चैव सर्वशः।।

मनुस्मृतिः ५/१६।।

सेह या साही, शल्यक (शाली, शालुक), गोधा (कृकलाशवद्), गेंडा (गण्डक), कछुआ (कच्छप, कूर्म), खरगोश (शशक) इन छः का मांस खाया जाता है। एक पंक्ति दाँत वाले जीवों में ऊँट को छोड़ कर अन्य के मांस को खाया जाता है-

श्वाविधं शल्लकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा।
भक्ष्यान् पञ्चनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः।।

मनुस्मृतिः ५/१८।।

जिन के पाँच नाखून हों उनमें से शश, शल्लक, श्वाविद् (सेह, साही), गोधा, खङ्ग, कच्छप आदि छः प्राणियों के मांस को उत्तम कहा गया है-

'पञ्चनखाः शशशल्लकश्वाविद्गोधाखङ्गकच्छपाः'

गौतमस्मृतिः १७/२७।

अन्न के भोजन के अभाव में, औषधि में, श्राद्ध में, प्राणसंकट में, द्विजों के सत्कार में तथा देवों पितरों को समर्पित कर जो मांस खाया जाता है वह दोषकारक नहीं होता है-

प्राणात्यये तथा श्राद्धे प्रोक्षिते द्विजकाम्यया।
देवान् पितृन् समभ्यर्च्य खादन् मांसं न दोषभाक्।।

याज्ञवल्क्यस्मृतिः १/१७९।।

अपने प्राणों की रक्षा सभी प्रयत्नों से करनी चाहिए- **'सर्वत एवात्मानं गोपायेत्।'** अतः भूख और रोग से बचने के लिए मांस खाना दोषकारक नहीं होता है।

मद्यपान विचार एवं निषेध

सभी पापों का मल मद्य (मदिरा) होता है। अतः इसे नहीं पीना चाहिए- **न सुरां पिवेत्।** मद्य (मदिरा) तीन प्रकार का होता है- गौडी, माध्वी तथा पैष्टी। गुड़, चीनी, मधुर से बनी मदिरा गौडी कहलाती है। महुआ के फूल, अंगूर अथवा वनस्पति से बनी मदिरा माध्वी कहलाती है। आटा या अन्न को सड़ा कर बनी मदिरा पैष्टी कहलाती है। इनमें से किसी को भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को नहीं पीना चाहिए-

गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः।।

मनुस्मृतिः ११/९४।।

आसव को भी मदिरा की ही श्रेणी में माना जाता है। ताड़, खजूर, महुआ, अंगूर, कटहल, टांक (कपित्थ), नारियल, ईख, कोलिफल, कंटकी आदि अनेक वृक्षों-तलाओं से सुरा बनती है। इससे बचना आवश्यक कृत्य है। मद्यपान करने वाला अकार्य, कुत्सितकार्य और विकार्य करता है। अतः न मद्य पीना चाहिए और न ही पिलाना चाहिए। मद्य के निमंत्रण को दृढ़तापूर्वक ठुकरा देना चाहिए-

मद्यमपेयमनिर्ग्राह्यम्।। **उशना, गौतमः।।**

विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) की एक सर्वेक्षण के अनुसार तत्कालीन विश्व (सन् २०११) में प्रायशः चार प्रतिशत लोगों की मृत्यु मदिरापान से हो रही है। यह भारी संख्या है। फलतः विश्वस्वास्थ्य संगठन चिंतित है कि इस मृत्यु दर को कैसे रोका जाय? मृत्यु को रोकना स्वास्थ्य संगठन की चिंता है और चारित्रिक पतन को रोकना ऋषियों की चिंता है।

जीवन में पवित्र कर्म करते हुए विधि पूर्वक शुभ, शुद्ध, सात्विक भोजन करना चाहिए। भोजन के बाद उसको सुव्यवस्थित होने देना चाहिए। इसके बाद स्व कार्य में संलग्न होना चाहिए।

●

अध्याय-१३

लोक संग्रह-व्यवहार-जीविका

न्यायोपार्जित धन-

न्यायोपार्जित-वित्तेन कर्त्तव्यं ह्यात्मरक्षणम्।
अन्यायेन तु यो जीवेत् सर्वकर्मबहिष्कृतः।।

पराशरस्मृतिः १२/४२।।

प्रतिदिन भोजन के बाद प्रत्येक व्यक्ति (चाहे वह स्त्री हो या पुरुष) को स्व कर्म में लग जाना चाहिए। दो याम (छः घण्टा) दिन में जीवन निर्वाह हेतु सत्य-श्रम-अहिंसा-अक्रोध-अलोभ-विद्या-बुद्धि-प्रतिभा-वैभव द्वारा धनार्जन का उपक्रम करना चाहिए। व्यक्ति जो कुछ अर्जित करता हैं वह केवल अपने लिए नहीं; बल्कि अपनी योग्यता से अपने पाल्य (आश्रित) जनों, परिवार, समाज, जनपद, राज, राष्ट्र और समस्त मानवता के लिए अर्जित करता हैं। अत: लोकव्यवहार संचालन के लिए तथा अपनी गृहस्थी को चलाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन अवश्य ही परिश्रम करना चाहिए। जीवन और गृहस्थी का संचालन न्याय द्वारा अर्जित पवित्र धन तथा संसाधन से होना चाहिए। यह हिन्दू जीवन पद्धति का प्रबलतम आग्रह है। **चित्त संयमित और वित्त न्यायोपार्जित होना चाहिए।** न केवल एक सामान्य व्यक्ति राजाज्ञा या धर्म के भय से न्याय अर्जित धन को कमाये बल्कि राजा या राष्ट्राध्यक्ष को भी न्यायोचित माध्यम से ही कोष (धन) को बढ़ाना चाहिए-

दुष्टस्य दण्डः सुजनस्य रक्षा न्यायेन कोषस्य च संप्रवृद्धिः।
अपक्षपातोऽर्थिषु राष्ट्ररक्षाः पञ्चैव यज्ञाः कथिता नृपाणाम्।।

अत्रि संहिता २८।।

(दुष्ट को दण्डित करना, सुजन की रक्षा करना, न्याय द्वारा कोष को बढ़ाना, अपक्षपात करना और राष्ट्ररक्षा करना ये पाँच नृपयज्ञ कहे गये हैं।)

धर्म आधारित धन-

जीवन और जीविका (व्यवहार-संग्रह) विश्वास पर आधारित है। विश्वास के बिना न परिवार चलेगा न व्यवहार (जीविका) चलेगा। विश्वास धर्म से

उत्पन्न होता है। धर्म के बिना पालन (जीवन निर्वाह) असंभव है। अतः धर्म आधारित धन कमाने का सतत प्रयत्न करना चाहिए। जहाँ जीवन में, समाज में, राष्ट्र में धर्म की प्रबलता होती है वहाँ चोरी, डकैती, हत्या, छलना (कपट), मदिरापान, व्यभिचार, अपहरण का अभाव होता है-

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नायज्वा न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

भारतवर्ष का परम विश्वास है- **यतो धर्मस्ततो जयः। सत्यमेव जयते।** (जहाँ धर्म है वहीं विजय है। सत्य ही विजयी होता है।) अंतिम संघर्ष में यही विश्वास विजयी होता है। अतः धर्म आधारित धन ही पीढ़ी-दर-पीढ़ी टिकता है। अविश्वास से जीवन और व्यवसाय (धन) दोनों नष्ट होता है। अतः दरिद्रता का कारण अविश्वास है। इसे दूर रखना चाहिए- **'अविश्वासो हि जन्मभूमिरलक्ष्म्याः।'** यद्यपि विश्वास से उत्पन्न भय समूल विनाश करता है; फिर भी धरती पर विश्वास किये बिना व्यवसाय एवं व्यवहार एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता है।

धनार्जन के माध्यम-

धन कमाने के अनेक माध्यम हैं। ये माध्यम सहस्राधिक हैं। इन माध्यमों को अनेक क्रमों में विभाजित और परिसमूहित किया जाता है-

- भूमिज कर्म- पृथ्वी से धन प्राप्त करना।
- अन्तरिक्षज कर्म- आकाश का दोहन कर धन प्राप्त करना।
- अग्निज कर्म- अग्नि के माध्यम से धन प्राप्त करना।
- दैवज (ब्राह्म.) कर्म- धर्म, यज्ञ, पूजन, मंत्र, शिक्षा से धनार्जन करना।
- वारुण कर्म- जल के माध्यम से धनार्जन करना।

इन पाँच संविभागों में मनुष्य के पुरुषार्थ से उत्पन्न सभी कर्म (लोक व्यवहार और जीविका आदि) समाहित होते हैं। भूमिज कर्म का विस्तार ही मनुष्य के लिए अनन्त प्रकार के कर्मों को जन्म देता है। पृथ्वी को 'रत्नगर्भा वसुन्धरा' कहा गया है। पृथ्वी के भीतर, खनिज, रत्न, पेट्रोल, अनेक तत्त्व निहित हैं। पृथ्वी के ऊपर अन्न, वनस्पति, निवास आदि अनन्त कर्म होते हैं। अतः मनुष्य की जीविका संसाधन के लिए पृथ्वी और उसके उत्पाद अनन्त शाखाओं को जन्म देते है। मनुष्य अपनी अभिरुचि के अनुसार इनमें से कर्मों का चयन करता है।

भूमिज कर्म-

जिस तरह से माता अपनी संतान की रक्षा करती है उसी तरह से भूमि सभी प्रकार से, सभी ओर से मनुष्यों की रक्षा करती है। भूमि से धन, जीवन तथा आश्रय प्राप्ति के सर्वाधिक संसाधन प्राप्त होते हैं। इन संसाधनों के क्षेत्र में मनुष्य कार्य करते हुए धन-अन्न-जीवन से पुष्ट रहता है। भूमि से सम्बन्धित कुछ कर्म इस प्रकार से हैं-

- कृषिकार्य, अन्नोत्पत्ति कार्य
- भवन कार्य, प्रति परिवार हेतु आवास व्यवस्था
- शिल्प कार्य, मंदिर निर्माण, दुर्गनिर्माण/सेतु निर्माण
- भूमिगत धन की खोज का कार्य
- वृक्ष-वनस्पति कार्य, शाक-सब्जी-फल-मूल उत्पादन कार्य
- पशुपालन, पशुशाला, पशुभोजन, दुग्ध, घी, पञ्चगव्य कार्य
- कोयला निष्पादन कार्य
- रत्न अन्वेषण कार्य
- पेट्रोल, मृत्तिका तैल निष्कासन कार्य
- काष्ठ कार्य, काष्ठेन्धन कार्य
- वन द्वारा प्राप्त धन का उपयोग
- भू समतलीकरण तथा राजमार्ग का निर्माण

अन्तरिक्षज कर्म-

अन्तरिक्ष या आकाश का दोहन सर्वाधिक जटिल कार्य है। इसमें यान संचालन, आकाश निरीक्षण, आकाश द्वारा रक्षा, आकाश ऊर्जा का दोहन, प्रकाश-अन्धकार आदि का उपयोग, आकाश मार्ग से शत्रु, राज्य, राजा आदि पर विजय प्राप्त करना आदि आता है।

प्राचीन भारत में आकाश में स्थित होकर युद्ध लड़ने की प्रक्रिया ज्ञात थी। आकाश द्वारा गुप्तचरी की विधा ज्ञात थी। अन्तरिक्ष का दोहन करके राजा रघु ने अपने कोषागार में स्वर्ण की वृष्टि कराई थी-

अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा।।

रघुवंशमहाकाव्यम्, ५/३३।।

राजा दुष्यन्त ने चन्द्रलोक में जाकर पृथ्वीलोक का उत्कर्ष स्थापित किया था। **अभिज्ञानशाकुन्तलं षष्ठांकः।**

प्राचीन भारत में ऐसे विमानों की उपलब्धता थी जो आकाश से धरती पर गिरने पर भी विनष्ट नहीं होते थे, न ही उसमें बैठे लोग ही नष्ट होते थे-

गगनान् न्यपतत् सद्यः सविमानो ह्यवाक् शिराः।
प्रास्य प्राचीसरस्वत्यां स्नात्वा धामस्वमन्वगात्।।

भागवतमहापुराणम्, ६/८/४०

(वह चित्ररथ उल्टे सिर आकाश से विमान के साथ गिर पड़ा। वालखिल्य से प्रबोधित होकर वह पूर्ववर्ती सरस्वती नदी में स्नान कर अपने स्थान को लौट गया।)

वर्तमान में भारतवर्ष एवं विश्व में हवाई यात्रा और सौर ऊर्जा के क्षेत्र में व्यवसाय का उन्नत मार्ग खुला हुआ है। अन्य ग्रहपिण्डों से धन दोहन और यात्रा का मार्ग शीघ्र ही खुलने की संभावना बनी हुई है। संचार क्षेत्र के जाल से पूरा अन्तरिक्ष इन दिनों व्याप्त है। 'सेटेलाइट' आदि से भी कार्य चल रहा है। प्राणवायु का व्यवसाय चिकित्सा क्षेत्र में चल रहा है। अन्तरिक्ष जनित व्यवसाय मानवीय मनीषा का श्रेष्ठतम प्रदर्शन होता है (ध्यान रहे अन्तरिक्ष में मल-मूत्र-थूक का उत्सर्जन नहीं किया जाता है।)

अग्निज कर्म-

अग्नि के क्षेत्र में आग, विद्युत् बैट्री, प्रदाहक तत्त्व (केमिकल), स्वर्ण, आग्नेयास्त्र आदि आते हैं। आज पूरे विश्व में विद्युत् क्षेत्र (इलेक्ट्रिकल फील्ड) में अति कार्य विस्तार फैला हुआ है। आज विद्युत् से सम्बन्धित कार्यों का अतिविस्तार है। इसमें वातानुकूलन, प्रकाश, विद्युत् उत्पादन, विद्युत् से कल-कारखानों का संचालन, लघु उद्योगों का संचालन समाहित है। जीवन में इन दिनों कोई भी कार्य बिजली के बिना नहीं हो पायेगा। दहनशील गैस तथा उससे सम्बन्धित भोजन उपकरण बनाने का कार्य भी इसी में संलग्न है।

दैवज (ब्राह्म) कर्म-

ब्राह्म कर्म, सारस्वत कर्म या दैवज कर्म में शिक्षा सम्बन्धित कार्यों का संचालन आता है। सम्पूर्ण विश्व में शिक्षा का जाल फैला है। जब तक सृष्टि रहेगी तब तक शिक्षा का प्रसार रहेगा। विश्व मनीषा पर विजय शिक्षा के माध्यम से ही प्राप्त की जाती है। विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, विद्यालय, छात्रावास, विज्ञान, ज्ञान, प्रकाशन, पुस्तक संकल्पना, कला तथा मानवीय उत्कर्ष का एकमात्र संसाधन शिक्षा ही है।

धर्म, यज्ञ, पूजन, संस्कार से विश्वमनुष्य का जीवन संचालित होता रहा है और होता रहेगा। इस क्षेत्र में व्यापक और सात्विक संभावना सृष्टि के अंत तक बनी रहेगी। जो लोग मध्याह्न काल में अध्ययन-अध्यापन करते हैं वे ब्रह्मयज्ञ को पूरा करते हैं। वे एक प्रकार का तप ही करते हैं। शुचिता (पवित्रता) की दृष्टि से देखा जाये तो जूता-चप्पल पहनकर पढ़ने-पढ़ाने से देवत्व संधान में बाधा आती है: यदि चमड़े की बन्धनी (बेल्ट) निकाल कर, जूता-चप्पल से मुक्त होकर आज का भी अध्यापक अपने विषय और अपनी विद्या का अध्ययन-अध्यापन करे तो उसे सारस्वत आराधना का फल प्राप्त होगा। प्राचीन भारत में अध्यापक का कक्ष होता था। छात्रगण उसमें अध्ययन हेतु प्रवेश करते थे। आज छात्र स्थिर हो बैठे रहते हैं अध्यापक उनके कक्ष में प्रवेश करता है। पश्चिमी दुनिया की दृष्टि में अध्यापक का जो महत्त्व है तथा भारतीय दृष्टि में गुरु का जो महत्त्व है दोनों की तुलना नहीं की जा सकती है। भारत में विद्या दान की प्रशंसा थी विद्या विक्रय की नहीं। यूरोपीय-अमेरीकन विद्या पद्धति विद्या को व्यवसाय मानती है। आज का भारत भी उसी पथ पर चल रहा है। भौतिक विद्या के क्षेत्र में भारत उन्नत हो रहा है और धीरे-धीरे अपने संस्कारों को पुनरीक्षित भी कर रहा है।

वारुण कर्म-

जल संसाधन द्वारा जीविका का अपरिमित क्षेत्र में विस्तार समस्त भूमण्डल पर होता है। बन्दरगाह; पानी का जहाज, नौका, सेतु (बाँध), नहर, नदी, मत्स्य, जल-जीव (शंख, मूँगा, मोती, सीपी आदि), जल बिजली का निर्माण, सिंचाई कर्म आदि अनेक अति विस्तृत कर्म वारुण क्षेत्र में आते हैं। जल के देवता वरुण हैं। वरुण से सम्बन्धित कार्य 'वारुण कर्म' कहलाता है। पीने का शुद्ध जल जन-जन तक पहुँचाना आज के युग में भारी व्यवसाय का रूप ग्रहण कर चुका है। तालाब, कूप, चापाकल, वापी, कुण्ड का निर्माण मानव की आवश्यकता के साथ-साथ जीव जंतुओं के लिए भी अनिवार्य है। गर्मी के दिनों में जल की आवश्यकता सर्वाधिक होती है। शीतल पेय, उद्यान संरक्षण में जल अति अनिवार्य तत्त्व है। आज पीने का जल, स्नान का जल, साफ-सफाई का जल अलग-अलग बेचा जा रहा है। सुस्वादु जल की मांग जीवन में प्रतिपग पर है।

इन पाँच विभागों में विश्व के समस्त जीविका और लोकव्यवहार सन्निहित हैं। इन पाँचों का विस्तार ब्रह्माण्ड तक में फैला हुआ है। अपने गुण-कर्म, स्वधर्म और कुण्डली के जीविका ग्रहों के आधार पर जीविका या व्यवसाय को चयनित करना चाहिए। पुनः कार्य का द्विविध विभाजन स्थूल रूप से किया जा सकता है-

१. प्रशस्त कर्म तथा २. निंदित कर्म

इन पाँचों क्षेत्रों में भी कर्म प्रशस्त और निंदित दोनों प्रकार के होते हैं। जुगुप्सा (घृणा), हत्या, भय, क्रोध तथा सामूहिक उपेक्षा वाले कार्य निंदित कर्म में आते हैं। इनसे अतिरिक्त कर्म करणीय अथवा प्रशस्त माने जाते हैं। इनमें भी अतिप्रशस्त कर्म और प्रशस्त भेद से इनके दो विभाजन होते हैं।

कर्म के भेद-

कर्म के तीन भेद कहे गये हैं- १. कर्म २. अकर्म तथा ३. विकर्म

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।।

गीता, ४/१७।।

(कर्म की गति गहन (जटिल) है अतः कर्म, अकर्म, विकर्म तीनों को जानना चाहिए।) भारतवर्ष के बाहर कहाँ-कितना विकर्म है यह कहना कठिन है। कर्म और अकर्म तो सर्वत्र चिह्नित हैं, फैले हैं; पर विकर्म सर्वत्र चिह्नित नहीं है। वर्णाश्रम धर्म में प्रतिपादित वर्ण धर्म का जब एक दूसरे में मिलावट या रूपान्तरण होता है तो उसे विकर्म कहते हैं; जैसे ब्राह्मण द्वारा राज्य करना या युद्ध लड़ना उसके लिए विकर्म है। तपस्या उसका कर्म है। चोरी, पाप, मदिरा पान उसके लिए अकर्म है। अध्यापक द्वारा पढ़ाया जाना और व्यवसाय करना कर्म, विकर्म दोनों है। हत्याजीवी होना, लूट-वंचना से धन कमाना, छल-षड्यंत्र से धन कमाना गर्हित कर्म है।

कर्म (लोक संग्रह- लोक व्यवहार) की अनिवार्यता-

कर्म किये बिना कोई एक क्षण नहीं रह सकता है। श्वास लेना जीवित रहने हेतु किया जाने वाला कर्म है-

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।।

गीता, ३/५।।

अकर्म (कर्म का त्याग) में प्रवृत्त होने पर तो शरीर यात्रा भी नही चल पायेगी- **शरीर यात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।। गीता, ३/८।।**

इस पृथ्वी पर जो भी उत्पन्न हुआ है उसे कर्म करना ही पड़ेगा। अतः इस पृथ्वी को कर्मक्षेत्र या कर्मभूमि भी कहते हैं।

विश्व का श्रेष्ठतम कर्मवाद (सिद्धान्त)-

मनुष्य जो कर्म करता है उसका परिणाम प्रकृति और भाग्य के अधीन होता है। अतः अनेक बार कर्म का फल नहीं मिल पाता है। सत्य यह है कि कर्म करने का अधिकार मनुष्य के हाथ में है पर कर्म फल प्राप्त होगा ही इसका अधिकार मनुष्य के हाथ में नहीं है। कर्म का फल जब अपने अधिकार में ही नहीं है तब कर्म क्यों किया जाए? ऐसा सोचना अकर्म में प्रीति को बढ़ाता है; पर अकर्म की स्थिति में श्वास लेने वाला प्राणि रह ही नहीं सकता। अतः कर्म करना चाहिए। अकर्म से दूर रहना चाहिए और कर्म फल में स्पृहा नहीं रखना चाहिए। यही भारतवर्ष का कर्म, लोकव्यवहार या जीविका का सिद्धान्त है-

कर्मण्येवांधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म फलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

गीता, २/४७।।

(हे अर्जुन! तुम्हारा कर्म करने में अधिकार है। फल प्राप्ति में कभी अधिकार नहीं है। कभी फल प्राप्ति में तुम्हारी अनुरक्ति (हेतु, वासना) न हो, न तो अकर्म में ही तुम्हारी प्रीति (संग) हो।)

पाँच प्रकार के आवश्यक कर्म-

- भोजन सम्बन्धी कर्म आधारित जीविका
- वस्त्र सम्बन्धी कर्म आधारित जीविका
- आवास सम्बन्धी कर्म आधारित जीविका
- चिकित्सा (औषधि) सम्बन्धी कर्म आधारित जीविका
- शिक्षा (अध्ययन-अध्यापन) सम्बन्धी कर्म आधारित जीविका

इन पाँच प्रकार के कार्यों और इनसे सम्बन्धी जीविका की आवश्यकता इस पृथ्वी पर मानव की सत्ता से जुड़ी हुई है। जहाँ मनुष्य है वहाँ ये पाँच प्रकार के लोकव्यवहार होंगे ही। इन से सम्बन्धित कर्म कभी भी नष्ट नहीं होते हैं। मानव प्रजाति को भोजन, वस्त्र, आवास, चिकित्सा और शिक्षा अवश्य चाहिए। इन पाँचों कार्यों में मानव संख्या की भारी मात्रा निरंतर लगी रहती है। इन कार्यों के पश्चात् सुरक्षा व्यवस्था और धर्म-संस्कृति-महोत्सव-मनोरंजन का स्थान आता है। समृद्धि बढ़ने के बाद लोक संग्रह, लोकव्यवहार और जीविका के चयन में भी अन्तर आता है। व्यक्ति की सम्पत्ति; सामूहिक सम्पत्ति और राष्ट्र की सम्पत्ति से सम्पूर्ण राष्ट्र जीवन का व्यापक वैभव और समृद्धि का उत्कर्ष झलकता है। इस समृद्धि के सहस्राधिक आयाम होते हैं।

सम्भूय समुत्थान-

व्यक्ति अकेले या परिवार के लोगों को लेकर कार्य करे अथवा सहवाणिज्य (पार्टनरशिप) में कार्य करे अथवा समूह में वित्त और कार्यबल की अधिकता के साथ व्यापक कार्य करे यह निर्णय उसकी क्षमता, प्रकृति और व्यवहार पर निर्भर करता है। इन तीनों में अंतिम सम्भूय समुत्थान कार्य अत्यधिक महत्त्व और परिणाम, लाभ, यश देने वाला होता है। इसमें एक का नेतृत्व या नेतृत्व समूह काम करता है। इसमें कार्य और लाभ का विभाजन, हिस्से का विभाजन यथाद्रव्य (इन्वेस्टमेंट की राशि के अनुरूप), यथा परिश्रम किया जाता है-

समवायेन वणिजां लाभार्थं कर्म कुर्वताम्।
लाभालाभौ यथाद्रव्यं यथा वा संविदा कृतौ।।

याज्ञवल्क्यः, २/२५९

सम्भूय समुत्थान व्यवसाय में अवञ्चना, अचौर्य, अनालस्य तथा शुल्क शुद्धि (टैक्सपेमेंट) अनिवार्य तत्त्व हैं; अन्यथा व्यवसाय विनष्ट हो जायेगा और उसमें निरत सभी लोग राजा से दण्डित हो जायेंगे-

समक्षमसमक्षं वाऽवञ्चयन्तः परस्परम्।
नानापण्यानुसारास्ते प्रकुर्य्युः क्रयविक्रयौ।।

व्यासः।।

सम्भूय व्यवसाय (ज्वाइंट बिजनेस) में सभी सहयोगी किसी एक को भी कार्य का अधिकार दे सकते हैं। कोई एक व्यक्ति ही लेखा का संचालन-परीक्षण कर सकता है-

बहूनां सम्मतो यस्तु दद्यादेको धनं नरः।
करणं कारयेद्वापि सर्वेणैव कृतं भवेत्।।

सहयोगी चयन-

व्यवसाय में सहयोगी (पार्टनर) चयन महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसमें गलती होने पर व्यवसाय अवरोध, नाश, कर्ज, दिवालियापन का दुष्परिणाम भोगना पड़ता है। अतः कुलीन, दक्ष (कुशल), सक्रिय (आलस्य रहित), बुद्धिमान्, नाणकवेदी (वाणिज्य में दक्ष), आय व्यय में कुशल, पवित्र बुद्धि तथा शूर (उत्साही, वीर) व्यक्ति के साथ सहभाग (पार्टनरशिप) करना चाहिए-

कुलीनदक्षानलसैः प्राज्ञैनाणकवेदिभिः।
आयव्ययज्ञैः शुचिभिः शूरैः कुर्य्यात् सह क्रियाम्।।

बृहस्पतिः।।

असक्त (कमजोर), आलसी, रोगी, दुर्भाग्यशाली, निराश्रय (मूलधनरहित) व्यक्ति को कभी भी सहभागी (पार्टनर) नहीं बनाते हैं-

असक्तालसरोगार्त्तमन्दभाग्या निराश्रयाः।
वाणिज्याद्या सहैतैस्तु न कर्त्तव्या बुधैः स्त्रिया।।

बृहस्पतिः।।

कमाये हुए धन में से राजा को कर (टैक्स) अवश्य देना चाहिए। जो व्यक्ति अपनी अर्जित संपत्ति में से राजा को षष्ठ्यंश कर नहीं देता है वह दण्ड का भागी होता है। उसे राज्यांश का चोरी करने वाला माना जाता है। ऐसे ही जो राजा प्रजा से षष्ठ्यंश (१६.६%) से अधिक कर लेता है वह प्रजा उत्पीड़क होता है। वह पाप का भागी बनता है। आज राजसत्ता की ओर से षष्ठ्यंश से अधिक कर लिया जा रहा है। दूसरी ओर व्यवसायी वर्ग या जनसमूह भी ईमानदारी के साथ राजसत्ता को कर देने की मानसिकता नहीं रखता है। ये दोनों परिस्थितियाँ जब चरम पर पहुँचती हैं तो राष्ट्र और समाज का क्षय होता है। भ्रष्टाचार की दीमकें राष्ट्रवृक्ष को जड़हीन कर देती हैं।

स्व उपार्जित धन से दान अवश्य करना चाहिए। धर्म, दान, उपभोग के द्वारा अर्जित धन को संरक्षित किया जाता है। जो व्यक्ति अर्जित धन का दान-भोग नहीं करता उसका वह धन नाश को प्राप्त हो जाता है। अत: प्रतिदिन धर्म आधारित धन कमाना चाहिए और बलिवैश्वदेव आदि के माध्यम से उसे अपनी क्षमता भर दान एवं उपयोग में लाना चाहिए। स्वर्ण से ज्यादा चमक शील में है। भवन से ज्यादा सुख कुटी में है। तामसिक धन से ज्यादा वैभव सात्विक निर्धनता में है। इस पृथ्वी पर धर्म अनुमोदित धन इहलोक और परलोक में साथ जाता है। अत: धन का संग्रह दान-धर्म और सात्विक भोग के लिए सत्य और श्रम के द्वारा करना चाहिए। अनावश्यक उपभोग और धन का दुरुपयोग स्वसम्पत्ति और ईश्वरीय (राष्ट्रीय) सम्पत्ति का दुरुपयोग होता है। इससे व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का ह्रास होता है। अत: त्यागपूर्वक धन का उपभोग ही जीवन के लिए श्रेष्ठतम विधान है। इसी में धन की उपयोगिता है-

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।१।।

अध्याय-१४

संध्या-गोधूलि-प्रदोष

दिन में छः घण्टा (११ बजे से सायं ५ बजे तक) कार्य करने के पश्चात् व्यक्ति स्वल्प विश्राम करके हाथ-पैर धोकर स्फूर्त होकर श्रेष्ठ कार्य करे।

तपस्वी, साधक, ऋषि-मुनि सूर्यास्त के समय स्नान के पश्चात् बाहर खुले में संध्या वन्दन करते हैं। जो लोग बाहर नहीं जा सकते वे अपने घर में ही संध्या करते हैं। सद् गृहस्थ जिसका जीवन और लोक व्यवहार संयमित है वह घर पर रह कर अस्त होते सूर्य की ओर मुख कर बैठ कर सायं संध्या कर सकता है। प्रातः काल की तरह स्नान के कृत्य को विस्तारित न करके उसके एक चौथाई कर्म को करके सायं संध्या को पूर्ण करते हैं-

सूर्येऽस्तशिखरं प्राप्ते पादशौचक्रियान्वितः।
सायं संध्यामुपासीत कुशपाणिः समाहितः।।

व्यासः।।

प्राचीन भारत में ऋषि-मुनियों ने त्रिकाल (प्रातः-मध्याह्न-सायं) संध्या करके मृत्यु को अपनी दासी बना रखा था। आत्मतत्त्व की प्राप्ति के लिए तथा आत्मशुद्धि के लिए त्रिकाल संध्या करनी चाहिए। यदि त्रिकाल संध्या न हो सके तो द्विकाल (प्रातः-सायं) संध्या अवश्य करनी चाहिए-

संध्यात्रयं तु कर्त्तव्यं द्विजेनात्मविशुद्धये।
उभे सन्ध्ये तु कर्त्तव्ये ब्राह्मणैश्च गृहेष्वपि।।

(द्विजों को आत्मविशुद्धि के लिए त्रिकाल संध्या करनी चाहिए। ब्राह्मणों को घर में ही प्रातः एवं सायं संध्या करनी चाहिए। द्विकाल संध्या अवश्य करनी चाहिए।) यदि संध्या न हो सके तो गायत्री मंत्र, ॐ या इष्टदेवता का मंत्र जप गोधूलि वेला में अवश्य करना चाहिए। इससे व्यक्ति में देवत्व बसता है।

मध्याह्न-सायं संध्या वन्दन में केवल विनियोग बदला जाता है; जैसे-

मध्याह्नसंध्याविनियोगः-

आपः पुनन्त्विति विष्णु ऋषिरनुष्टुप्छन्दः आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः। (एक आचमन जल छोड़ें।)

निम्नलिखित मंत्र को पढ़ते हुए आचमन करते हैं-

ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम्।
पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्।।
यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम।
सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रह थ्ठं स्वाहा।।

गायत्रीं मंत्र का एक माला या एक सहस्त्र जप करें।

गायत्री मंत्र-

ॐ भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्।

सायं संध्याविनियोगः -

अग्निश्चमेति रुद्रऋषिः प्रकृतिश्छन्दः अग्निर्देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः। (पृथ्वी पर एक आचमनीय जल छोड़ें।)

निम्नलिखित मंत्र को पढ़ते हुए आचमन करें-

ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यदह्ना पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्चिद् दुरितं मयि इदमहमापोमृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा।।

गायत्री मंत्र-

ॐ भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीम्महि, धियो यो नः प्रचोदयात्।

गायत्री मंत्र जप के पश्चात् हवन करना चाहिए। जो व्यक्ति प्रातः सायं प्राणायाम; गायत्री मंत्र जप और हवन करता है उसे त्रैलोक्य में वाँछित सफलता मिलती है।

सायं कालीन भोजन बनने के पश्चात् ऋषि गण बलिवैश्वदेव करते थे। सायंकालीन अतिथि सत्कार करते थे-

सायं प्रातर्वैश्वदेवः कर्त्तव्यो वलिकर्म च।
अनश्नताऽपि सततमन्यथा किल्विषी भवेत्।।

कात्यायनः।।

अतिथिं चागतं तत्र स्वशक्त्या पूजयेत् ततः।।

विष्णुपुराणम्।।

स्वयं व्रत करने वाले व्यक्ति को भी बलिवैश्वदेव अवश्य करना चाहिए। यह पक्वान्न या कच्चे अन्न से किया जाता है। सायं काल का बलिवैश्वदेव भोजन बनकर तैयार होने के बाद किया जाता है। इसमें पत्नी सहयोग करती है।

सायं-गोधूलि में वर्ज्य कर्म-

- भोजन नहीं करमा चाहिए।
- निद्रा नहीं लेनी चाहिए। सोने से बुद्धि सोती है।
- मैथुन नहीं करना चाहिए। इससे स्वास्थ्य नष्ट होता है।
- सूर्यास्त के ४८ मिनट (एक मुहूर्त्त) बाद ही अध्ययन करना चाहिए।
- अत्यन्त थके-हारे होने पर भी गोधूलि वेला में पूजन-हवन-स्तोत्रपाठ-हरिस्मरण ही करना चाहिए।
- सूर्य सम्मुख होकर सूर्य देवता से शक्ति ग्रहण करना चाहिए।
- जीव-जंतुओं को भोजन देना, दीप जलाना अत्यन्त शुभकारी होता है।
- गायों को सुव्यवस्थित करके उनके भोजनादि की व्यवस्था की जाती है।
- सप्तर्षि, शिंशुमार तथा तारागणों का दर्शन कर प्रणाम करें।

चिकित्साविज्ञान के अनुसार सायंकाल अर्थात् सूर्यास्त-काल में भोजन करने से अन्न से उत्पन्न होने वाले रोग शरीर में पैदा होते हैं। मैथुन करने से गर्भ विकृति होती है और पुरुष की नेत्र ज्योति धीरे धीरे क्षीण होती है। सान्ध्यवेला में सोने से दरिद्रता आती है। गोधूलि वेला में पढ़ने से आयु क्षरित होती है। मार्ग गमन करने से संत्रास होता है। अतः गोधूलि (सान्ध्य) वेला में पाँच चीजों की वर्जना प्राचीन चिकित्साशास्त्र करता है। ये पाँच चीजें हैं- आहार, मैथुन, निद्रा, अध्ययन, मार्गगमन। इनको करने से उत्पन्न दुष्परिणाम को ऊपर बतलाया गया है-

एतानि पञ्चकर्माणि सन्ध्यायां वर्जयेद्बुधः।
आहारं मैथुनं निद्रां सम्पाठं गतिमध्वनि।।
भोजनाज्जायते व्याधिर्मैथुनात् गर्भवैकृतिः।
निद्रया निःस्वता पाठादायुर्हानिर्गतेर्भयम्।।

भावप्रकाशः।।

रात्रि भोजन पूर्व कृत्य-

रात्रि का भोजन लेने से पूर्व अध्ययन, विचार, चिंतन तथा अगले दिन के कार्यों की मानसिक तैयारी की जाती है। विद्यार्थी गोधूलि पश्चात् रात्रि के पूर्वप्रहर में अपने पाठ को पढ़ते हैं। गृहकार्य को सम्पन्न करते हैं। वहीं गृहस्थ धर्मचर्चा, रामायण-भागवत-गींता आदि का चिंतन करते हैं। आजकल प्रायशः इस काल को लोग टेलीविजन देखते तथा बातचीत में व्यतीत करते हैं। व्यवसायी वर्ग अपने व्यवसाय में लगा रहता है। प्रायशः भारतीय व्यवसायी दीप प्रज्वलित कर लक्ष्मी और गणेश देवता को प्रणाम करते हैं। युवा वर्ग, पशु और पक्षी वर्ग खेलकूद तथा भोजन की खोज को छोड़कर अपने आश्रयस्थल पर लौटता है। धीरे-धीरे रात्रि का प्रभाव गहराता है और लोकजीवन रात्रिकर्म की तैयारी में लग जाता है। इसके बाद रात्रि भोजन के निमित्त आसन ग्रहण करने से पूर्व हाथ, पैर को विधिवत् धोकर भोजन ग्रहण करना चाहिए। भोजन प्रकरण में बतलाये गये मंत्रों का प्रयोग तथा भोजन पाचन वाले मंत्रों का स्मरण करना चाहिए। इससे रात्रि का भोजन सुखपूर्वक पच जाता है। रात में स्वल्प भोजन ही लेना चाहिए। ऐसा करने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

रात्रि का भोजन रात्रि के प्रथम प्रहर में कर लेना चाहिए। दिन की अपेक्षा रात्रि में कम भोजन और सुपाच्य भोजन लेना चाहिए-

रात्रौ तु भोजनं कुर्यात् प्रथमप्रहरान्तरे।
किञ्चिदूनं समश्नीयाद् दुर्जरं तत्र वर्जयेत्।।

भावप्रकाशंः।।

•

अध्याय-१५

शयनविधि

निद्रादेवी-

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

दुर्गासप्तशती।।

शरीर में देवी तत्त्व ही निद्रा रूप में निवास करता है। अतः निद्रा देवी को प्रणाम करके सोना चाहिए।



शरीर के विश्राम के लिए ही प्रकृति ने निद्रा का शरीर में सन्निवेश किया है। अतः जिससे शरीर विश्राम कर सके उसे निद्रा कहते हैं-

देहं विश्रमते यस्मात् तस्मान् निद्राप्रकीर्तिता।



धर्म रस का पान करने वाला ही सुख की निद्रा को प्राप्त करता है। संयमी व्यक्ति को ही यथा समय निद्रा लगती है और खुलती है। अतः वैष्णवी शक्ति, योगमाया निद्रा देवी को प्रणाम करके सोना चाहिए।

निद्रा परिभाषा-

मन के थकने से इन्द्रियाँ थकती हैं।'इन्द्रियों के थकने से विषय निवृत्ति हो जाती है और मनुष्य सो जाता है-

यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः।।

चरकसूत्रम्, २१।।

रात्रि भोजन के उपरान्त पैर आदि को धोकर, सूखे कपड़े से पोंछ कर शुभ, प्रशस्त, अभंग शय्या पर पूर्व की ओर सिर करके अथवा दक्षिण की ओर सिर करके सोना चाहिए। लकड़ी की शय्या (पलंग, चौकी या खाट)

शुभ मानी गयी है। लकड़ी पर सोने से लकड़ी का गुण-धर्म शयनकर्त्ता को शुभत्व या अशुभत्व प्रदान करता है। शय्या न तो अतिविशाल होनी चाहिए न ही अति लघु होनी चाहिए। शय्या गन्दी न हो तथा उबड़ खाबड़ न हो इसका भी ध्यान रखना चाहिए। शय्या में खटमल या अन्य जीव, कीड़े न हों इससे आश्वस्त हो कर ही शय्या पर सोना चाहिए-

कृतपादादि शौचस्तु भुक्त्वा सायं ततो गृही।
गच्छेदस्फुटितां शय्यामपि दारुमयीं नृप।।

नाविशालां न वै भग्नां नासमां मलिनां न च।
न च जन्तुमयीं शय्यामधितिष्ठेदनास्तृताम्।।

प्राच्यां दिशि शिरः शस्तं याम्यायामथवा नृप।
सदैव स्वपतः पुंसो विपरीतं तु रोगदम्।।

विष्णुपुराणम्, ३/११/१११-११३।।

शयन विधान-

- घुटने तक की ऊँचाई वाली शय्या पर सोना चाहिए-

  जानुतुल्यं मृदुशुभं सेवेत शयनासनम्। अ.सं.

  अत्यधिक ऊँची शय्या से गिरने, लड़खड़ाने और मनोभय की स्थिति बनी रहती है। अत्यधिक नीची शय्या से सर्पादि का भय बना रहता है। शय्या के नीचे ठीक से सफाई नहीं हो पाती है। अतः जानुतुल्य ऊँचाई उचित है।
- रात में कभी भी नग्न होकर नहीं सोना चाहिए- **न नग्नः।**
- खुले आकाश में नहीं सोना चाहिए- **नाकाशे**। इससे अन्तरिक्षज भय उत्पन्न होता है। सूक्ष्म तत्त्व भी क्षति पहुँचा सकते हैं।
- पलाश की लकड़ी पर तथा उसके पत्ते पर नहीं सोना चाहिए।
- तीन से अधिक लकड़ी से बने शयनपीठ पर नहीं सोना चाहिए- **न पञ्चदारुकृते**। अर्थात् जिस पलंग में तीन प्रकार से अधिक काष्ट लगा हो।
- विद्युत, आग से झुलसी लकड़ी की शय्या पर न सोयें- **न विद्युत् दग्धकृते।**
- हाथी द्वारा तोड़ी हुई लकड़ी से बनी शय्या पर न सोयें- **न गजभग्नकृते।**
- श्मशान, खण्डहर, शून्यस्थान, मंदिर आदि में अकेले या अन्य के साथ नहीं सोना चाहिए। स्मारकों एवं स्तम्भों के पास नहीं सोना चाहिए।

- गोशाला, गुरुशाल, देवशाला, भोजनालय के ऊपर नहीं सोना चाहिए।
- जूठे स्थान पर नहीं सोना चाहिए। इससे दुःस्वप्न भय होता है।
- दिन में नहीं सोना चाहिए। यदि दिन में सोये तो रात में जितनी देर न सो सके उसके आधे समय तक ही सोना चाहिए। ग्रीष्मकाल में सोते हैं। ग्रीष्म काल में दिन में सोने का निषेध नहीं है। इस तथ्य का निर्देश आयुर्वेद करता है। धर्मशास्त्र दिवा शयन को दोष मानता है।
- रात में अंधेरे में नहीं सोना चाहिए। स्वल्प प्रकाश में सोना चाहिए।
- पर्वत शिखर पर नहीं सोना चाहिए। वृक्ष के मूल (जड़) में नहीं सोना चाहिए।
- अपवित्र स्थान पर नहीं सोना चाहिए। चौराहे पर नहीं सोना चाहिए।
- पूर्व व दक्षिण की ओर सिर करके सोना चाहिए।
- उत्तर-पश्चिम की ओर सिर करके कदापि नहीं सोना चाहिए।

  (उत्तर की ओर सिर करके सोने से व्यक्ति पृथ्वी की गति के विरुद्ध सोता है। पश्चिम की ओर सिर करके सोने पर व्यक्ति ब्रह्माण्ड की गति के विरुद्ध सोता है। मृत्यु के पश्चात् शव को उत्तर दिशा की ओर सिर करके लेटाया जाता है। उत्तर दिशा की ओर सिर करके लेटना मृत्यु तुल्य अशुभकारी माना गया है। इसका दीर्घकाल में दुष्परिणाम आता है। इससे आयु घटती है।)
- गीली भूमि पर, गीले बिस्तर पर नहीं सोना चाहिए- **नार्द्रे देशे।**
- सन्धि वेला (सूर्योदय-सूर्यास्त) में नहीं सोना चाहिए- **न सन्ध्ययोः।**
- रात में उच्च (जोर से) नहीं बोलना चाहिए- **नोच्चैर्निशायाम् भाषेत।**
- दूसरों के सोये हुए शय्या-बिस्तर पर नहीं सोना चाहिए- **अन्यपूर्वे भुक्ते शयने न।** (यात्रा, प्रवास, विपत्ति में यह नियम शिथिल होता है।)
- हर्षोल्लास (पुत्रादि जन्म-विवाह) में नहीं सोना चाहिए। (रात्रि जागरण से चोरी आदि का भय नहीं रहता है।)
- सिर पर तेल थोप कर रात में नहीं सोना चाहिए- **न तैलेनाभ्यक्तशिराः स्वपेत्।। उशना।।**
- गुरु दीक्षा के बिना कृष्णमृग के चर्म पर रात में नहीं सोना चाहिए- **नादीक्षितः कृष्णचर्मणि।**
- **'नमस्कृत्वाऽव्ययं विष्णुं समाधिस्थं स्वपेन्निशि'** विष्णुभगवान् को प्रणाम करके शवासन या समाधि में सोना चाहिए।

- सिर की ओर पूर्णकुम्भ या ताम्बे के कलश में जल रख कर सोना चाहिए। रात्रि में प्यास लगने पर पानी अवश्य पीना चाहिए-
  माङ्गल्यं पूर्णकुम्भं च शिरःस्थाने निधाय च।
- छः घण्टा से अधिक न सोयें- **यामद्वयं शयानस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते।**

चिकित्सा विज्ञान के अनुसार निद्रा के अनेक प्रकार होते हैं। इसमें प्रतिरात्रि स्वभावतः आने वाली निद्रा को- 'रात्रिस्वभावप्रभवा' कहा गया है। इसके अतिरिक्त तमोभवा, श्लेष्मसमुद्भवा, मनःशरीरश्रमसमुद्भवा, आगन्तुकी तथा व्याधि-अनुवर्तिनी निद्रा। इस प्रकार से निद्रा के कुल छः प्रकार बतलाये गये हैं। प्रतिरात्रि वाली निद्रा भूतधात्री होती है। यह व्यक्ति को ऊर्जा और स्फूर्ति देती है। तमोभवा पाप का मूल कारण होती है। इसे तामसी निद्रा कहते हैं। व्याधि से उत्पन्न निद्रा व्याधि ठीक होने से स्वतः समाप्त हो जाती है-

तमोभवा श्लेष्मसमुद्भवा च मनःशरीरश्रमसम्भवा च।
आगन्तुकी व्याध्यनुवर्तिनी च रात्रिस्वभावप्रभवा च निद्रा।।

रात्रिस्वभावप्रभवा मता या तां भूतधात्रीं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः।
तमोभवामाहुरघस्य मूलं शेषा पुनर्व्याधिषु निर्दिशन्ति।।

चरकसूत्र २१।।

प्रत्येक शरीरधारी को रात्रि शयन करना अनिवार्य होता है। जो व्यक्ति रात्रि शयन नहीं करता है वह दीर्घकाल में बीमार होकर अल्पायु को प्राप्त होता है। अतः रात्रि में यथाकाल शयन करना चाहिए। यथा समय अर्थात् सूर्यास्त के तीन घण्टे के भीतर सोने वाला व्यक्ति शरीर से पुष्ट, कान्तिमान्, बल से युक्त, उत्साहपूर्ण तथा सम्पूर्ण चैतन्य प्राप्त रहता है। उसके भीतर जठराग्नि प्रदीप्त रहती है और वह भोजन द्वारा प्राप्त सत्व को सम्पूर्णतः आत्मसात् कर पाता है। सुश्रुत चिकित्सा २४।। भोजन के पश्चात् थोड़ी देर बाद सोना चाहिए। भोजन के तत्काल बाद शयन करने पर कफ बढ़ता है तथा शरीर के भीतर व्याप्त अग्नि को मन्द करता है- **भुक्तमात्रस्य च स्वप्नाद्धन्त्यग्निं कुपितःकफः।** माधव निदान। सुश्रुत संहिता में रात्रि जागरण तथा दिन में शयन को दोष पूर्ण माना गया है। जो व्यक्ति रात्रि में छः घण्टा सुखपूर्वक सोता है वह नीरोग, प्रसन्न, बलयुक्त, मृदुल, न मोटा-न पतला अर्थात् सुघड़ काया रहता है। साथ ही शुभ जागरण एवं शुभ शयन से वह शतायु भी होता है-

तस्मान्नजागृयाद्रात्रौ दिवास्वप्नञ्च वर्जयेत्।
ज्ञात्वा दोषकरावेतौ बुधः स्वप्नं मितं चरेत्।
अरोगः सुमना ह्येवं बलवर्णान्वितो वृषः।
नातिस्थूलकृशः श्रीमान् नरो जीवेत् समाः शतम्।।

सुश्रुतसंहिता, ४।।

धर्मशास्त्र में प्रायशः अनेक पर्वों में रात्रि जागरण हेतु विधान किया गया है। ध्येय है जहाँ भी रात्रि जागरण की व्यवस्था होती है, वहीं पर उपवास का भी विधान प्राप्त होता है। रात्रि जागरण हेतु उपवास आवश्यक होता है। उपवास करके रात्रि जागरण करने पर कफ और अग्नि दोनों तत्त्व शान्त और सन्तुलित रहते हैं।

अतिनिद्रा और अनिद्रा ये दोनों रोग के रूप में शरीर को कष्ट पहुँचाती हैं। अनिद्रा से जहाँ अंग मर्द, सिर का भारीपन, जम्हाई, जड़ता, ग्लानि, भ्रम, अजीर्ण, तन्द्रा तथा वातजनित रोग होते हैं वहीं पर अतिनिद्रा से शिथिलता, मस्तिष्क में भारीपन, रक्तसंचरण में मन्दता तथा अनेक प्रकार की मानसिक बीमारियाँ पैदा होती हैं। आयुर्वेद के अनुसार काय विरेचन, शिरो विरेचन, व्यायाम, धूम्रपान, उपवास, तथा पूजन आदि से अतिनिद्रा दूर होती है।

पत्नीगमन

समस्त शरीरधारियों में सर्वदा, स्वाभाविक मैथुन की इच्छा उत्पन्न होती है। काम (Sex) ईश्वर प्रदत्त स्वाभाविक पुरुषार्थ है। धर्म से अनुमोदित काम सभी प्रकार से शुभ, यशस्वी और मोक्ष प्रदायक होता है। अतः स्वपत्नी में काम की पूर्ति ब्रह्मचर्यवद् परिणामदायी होती है- **रात्रौ व्यवायं कुर्वीत योषिता निजया सह।** (रात्रि में ऋतुमति पत्नी के साथ मैथुन करना चाहिए।) मैथुन न करने से वंशहानि, प्रमेह, मेदोवृद्धि तथा शैथिल्य उत्पन्न होता है-

अव्यवायान्मेहमेदोवृद्धिः शिथिलता तनोः।।

भावप्रकाशः।।

महर्षि सुश्रुत ने पच्चीस वर्षीय पुरुष और षोडश वर्षीया स्त्री से उत्पन्न संतति को शतायु एवं दीर्घायु कहा है। वाग्भट्ट ने बीस वर्षीय पुरुष और षोडश वर्षीया स्त्री को श्रेष्ठ जोड़ी माना है। इनसे उत्पन्न सन्तानें श्रेष्ठतम होती हैं।

- ऋतुकाल में (चतुर्थ रात्रि से सोलह रात्रि के भीतर) पत्नी गमन करें- **ऋतुकालाभिगामीस्यात् स्वदारनिरतः सदा।**

- ऋतुमती (गर्भ धारण की आकाँक्षा वाली) पत्नी के साथ रात्रि में शयन करें। संतानोत्पत्ति हेतु समंत्रक गमन करें। तेजस्वी संतान प्राप्ति के लिए शौनक ऋषि ने भार्या के दक्षिण नासिका छिद्र में दूर्वा रस (एक या दो बूँद) डालने का विधान बतलाया है-

स्नातायाः सुकृतायाश्च ऋतुमत्याः समेऽहनि।
दक्षिणस्यां नासिकायां सिञ्चेद् दूर्वारसं पतिः।।

- ऋग्वेद के दशम मंडल के १८४ सूक्त में गर्भधारण का मंत्र दिया हुआ है। यह सूक्त तीन मंत्रों का है। इस सूक्त के संदर्भ में धर्मशास्त्र में निर्देश दिया हुआ है कि- **विष्णुर्योनिं जपेत् सूक्तं योनिं स्पृष्ट्वा त्रिभिर्व्रती।** अर्थात् विष्णुयोनि सूक्त के तीन मंत्रों का पाठ करता हुआ पति गर्भधारण हेतु तैयार भार्या का योनि स्पर्श कर यह भावना करता है कि विष्णु भगवान् इस गर्भ को उत्तम एवं सामर्थ्ययुक्त करें। सम्पूर्ण मंत्र विधान इस प्रकार से है-

ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते।।

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति।
गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्त्रजा।।

हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे।।

इन तीनों मंत्रों को पढ़कर विष्णु भगवान् का ध्यान कर धारण किया हुआ गर्भ सृष्टि में अपूर्व तेजस्वी सन्तान को उत्पन्न करता है। इस प्रकार की संततियाँ रत्नरूप में धरती पर देवतांश होकर प्रकट होती हैं। ऐसी ही संततियों से समाज, राष्ट्र और विश्व का उत्कर्ष होता है। इन तीनों मंत्रों में अपूर्व गर्भधायक, अदृश्य तेज विद्यमान है। (विष्णु भगवान् गर्भाधान स्थान को उत्तम एवं समर्थ करें। प्रजापति वीर्य सेचन में सहायक हों। हे भार्ये! धाता गर्भधारण करायें। हे सिनीवालि देवी! आप गर्भधारण एवं गर्भसंरक्षण करें। हे सरस्वति! आप गर्भ का संरक्षण करें। हे भार्ये! सुगन्धित पुष्पमाला धारण किये अश्विनी कुमार द्वय तुम्हारे अन्दर धारित गर्भ की रक्षा करें। हे भार्ये! स्वर्ण की अरणियों का अग्नि (संतान) के लिये अश्विनी देव मन्थन करें। तुम्हारे द्वारा धारित गर्भस्थ संतान को हम दसवें मास में प्रसव के लिये बुलाते हैं।)

- आयुर्वेद के अनुसार ऋतुकाल के भीतर तीन-तीन दिन के अन्तर पर पत्नी गमन करना चाहिए। गर्मी के दिनों में यह अन्तर पन्द्रह दिनों का होता है-

त्रिभिस्त्रिभिरहोभिर्हि समीयात् प्रमदां नरः।
सर्वेष्वृतुषु धर्मे तु पक्षात्पक्षाद्व्रजेद् बुधः।।

सुश्रुतचिकित्सा १४

- भारत वर्ष में मैथुन को अत्यन्त गोपनीय, अप्रकाश्य और अकथनीय माना गया है। सार्वजनिक रूप से काम को प्रकट करना धर्म का विरोध है। पश्चिम में मैथुन अगोप्य या अप्रकाश्य नहीं है। यद्यपि वहाँ भी श्रेष्ठ जन अपने को नियन्त्रित रखते हैं।

- आयुर्वेद में शुक्र (वीर्य) रक्षण एवं ब्रह्मचर्य को स्वस्थवृत्त का अंग माना गया है। वाजीकरण नाम से एक अध्याय इस विषय को समर्पित है।

- अत्यधिक मैथुन से शूल, कास, ज्वर, श्वास कष्ट, दुबलापन, पीलिया, क्षय तथा आक्षेपक रोग उत्पन्न होते हैं। इससे शुक्र क्षय और राजयक्ष्मा रोग भी होता है-

अतिव्यवायाज्जायन्ते रोगाश्चाक्षेपकादयः।
अतिप्रसंगाद् भवति शोषः शुक्रक्षयावहः।।

सुश्रुतचिकित्सा २४।।

- वाग्भट्ट के अनुसार स्त्रियों में बारह वर्ष से पचास वर्ष की आयु तक रजस्वला होने की क्षमता रहती है। पचास वर्ष की आयु के बाद रजःस्राव बन्द हो जाता है-

मासि मासि रजःस्त्रीणां रसजं स्त्रवति त्र्यहम्।
वत्सराद् द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम्।।

वाग्भट्टः।।

- पत्नी गमन के पश्चात् स्नान-आचमन आदि करना चाहिए। अनुलेपन, शीतलवायु, खण्डखाद्य, शीताम्बु, दुग्ध, मांसरस, यूष आदि को लेने से शरीर पुनः तेज और बल को प्राप्त कर लेता है। निरामिष व्यक्ति मांसरस की जगह दुग्ध और मेवा लेता है।

- सोलह रात्रियों के बीतने के पश्चात् ऋतुमति संज्ञा समाप्त हो जाती है और वह स्त्री सामान्य हो जाती है। इसे भारत में 'अप्रजकाल' तथा पश्चिम में 'सेफ

पीरियड' कहते हैं। जिस तरह से दिन बीत जाने पर कमल बन्द हो जाता है उसी तरह से सोलह दिन बीतने के पश्चात् स्त्री के गर्भाशय का मुख बन्द हो जाता है-

नियतं दिवसेऽतीते संकुचत्यम्बुजं यथा।
ऋतौ व्यतीते नार्यस्तु योनिः संब्रियते तथा।।

सुश्रुतः।

- रजस्वला पत्नी के साथ न शयन करें न गमन करें। ऐसा करने से प्रज्ञा, तेज, यश, आयु, दृष्टि घटती है-

नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्त्तवदर्शने।
समानशयने चैव न शयीत तया सह।।

रजसाऽभिप्लुतां नारीं नरस्याभ्युपगच्छतः।
प्रज्ञा तेजो यशश्चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते।।

ता विपर्यस्यतस्तस्य रजसा समभिप्लुताम्।
प्रज्ञा लक्ष्मीर्यशश्चक्षुरायुश्चैव प्रवर्द्धते।।

- गर्भिणी पत्नी के साथ नहीं सोना चाहिए। गर्भ प्रसव निकट होने पर उसकी देखभाल के लिए साथ में सोया जा सकता है। यह इन्द्र देवता प्रदत्त स्त्री को वरदान है। **काठके प्रवचने।।**
- श्राद्धान्न खा कर गर्भ धारण हेतु पत्नी के समीप नहीं जाना चाहिए- **न श्राद्धान्नं भुक्त्वा।**
- अपने से बड़ी आयु वाली स्त्री के साथ गमन नहीं करना चाहिए। यदि पत्नी बड़ी उम्र की हो तो शास्त्रतः गमन निषेध नहीं है- **न वयोधिकाम्।**
- अप्रसन्ना, रोगिणी, रजस्वला, ईच्छारहिता, क्रोधिता, दुःखिता तथा गर्भिणी स्त्री के साथ गमन नहीं करना चाहिए-

नाद्यूनां तु स्त्रियं गच्छेत् नातुरां न रजस्वलाम्।
नानिष्टां न प्रकुपितां न त्रस्तां न च गर्भिणीम्।।

विष्णुपुराणम्, ३/११/११५।।

- जो सीधे स्वभाव की न हो, जो दूसरों को चाहती हो, जो काम भावना से रहित हो, जो पराई स्त्री हो, जो भूखी हो, जो अत्यधिक भोजन कर चुकी हो ऐसी स्त्री के साथ प्रसङ्ग नहीं करना चाहिए। स्वयं की ऐसी स्थिति हो तो भी प्रसङ्ग न करें-

नादक्षिणां नान्यकामां नाकामां नान्ययोषितम्।
क्षुत्क्षामां नातिभुत्वां वा स्वयं चैभिर्गुणैर्युतः।।

विष्णुपुराणम्, ३/११/११६

- स्नान करके, सुगंधित माला पहन करके, इत्रादि लगाकर, अत्यन्त प्रेमभाव के साथ, स्वल्प भोजन करके, स्वल्प शुभ पेय पीकर स्त्रीगमन करना चाहिए-

स्नातस्स्रग्गन्धधृक् प्रीतो नाध्मातः क्षुधितोऽपि वा।
सकामः सानुरागश्च व्यवायं पुरुषो व्रजेत्।।

विष्णुपुराणम्, ३/११/११७

परिशिष्ट-

रात्रि में सोने से पहले रात्रिसूक्त का पाठ करके सोना चाहिए। इस पाठ को करने वाला व्यक्ति दुःस्वप्न, अनिद्रा, निद्राभंग, भय, निर्जन शयन भय, भूत-प्रेत आदि भय, आकस्मिक उपद्रव आदि से सर्वथा सुरक्षित रहता है। रात्रि में सोने के बाद उसे सर्प आदि विषधर नहीं काट पाते। अग्नि, विषाक्त वायु आदि से भी उसे मृत्यु का भय नहीं होता है। अतः प्राचीन भारत में रात्रिसूक्त का पाठ करके ही सोया जाता था। विशेष रूप से जहाँ रात्रि भय उपस्थित हो वहाँ इसका पाठ अवश्य करना चाहिए। अतिनिद्रा और अनिद्रा से बचने के लिए भी इसका पाठ करके सोना चाहिए।

रात्रिसूक्तम्

ॐ विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः।।१।।

ब्रह्मोवाच

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।।२।।

अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः।
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा।।३।।

त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा।।४।।

विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये।।५।।

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी।।६।।

प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा।।७।।

त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च।।८।।

खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा।।९।।

सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी।।१०।।

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा।।११।।

यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत्।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः।।१२।।

विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्।।१३।।

सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ।।१४।।

प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ।।१५।।

•

अध्याय-१६

दृष्टान्त

भगवान् श्री राम की दैनिकी चर्या

भगवान् श्री राम वाल्यावस्था में ही धनुर्वेद और शास्त्रों के अध्ययन के लिए ब्रह्मर्षि वसिष्ठ जी के आश्रम में रहने लगे थे। वहाँ उन्होंने स्वल्पकाल में ही समस्त धनुर्वेद को हृदयङ्गम कर लिया। भगवान् श्री राम के अतिरिक्त अन्य तीनों भाइयों ने सभी विद्याओं, ज्ञानविषयों और गुणों को प्राप्त किया; परन्तु भगवान् श्रीराम ने अपने तेज से सब कुछ शीघ्र ही प्राप्त कर लिया। अश्व-गज संचालन तथा धनुर्वेद में उन्होंने वाल्यावस्था में ही सभी प्रकार की दक्षता प्राप्त कर ली-

सर्वे ज्ञानोपसम्पन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः।
तेषामपि महातेजा रामः सत्यपराक्रमः।।
गजस्कन्धेऽश्वपृष्ठे च रथचर्यासु सम्मतः।
धनुर्वेदे च निरतः पितुः शुश्रूषणे रतः।।

वाल्मीकीयरामायणेबालकाण्डे, १८/२६-२७।।

भगवान् श्री राम वाल्यकाल में मृष्ट भोजन (खीर, मालपूआ, मोहन भोग आदि) लक्ष्मण को दिये बिना नहीं खाते थे। स्मृतियों के अनुसार अकेले ही मृष्ट अन्न कभी नहीं खाना चाहिए-

मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं विना।।

वाल्मीकीयरामायणेबालकाण्डे, १८/३१।।

वाल्यावस्था में ही चारो भाई ह्रीमान् (लज्जाशील), कीर्तिमान्, सर्वज्ञ और दीर्घदर्शी हो गये थे-

ह्रीमन्तः कीर्तिमन्तश्च सर्वज्ञा दीर्घदर्शिनः।।

वाल्मीकीयरामायणेबालकाण्डे, १८/३५।।

'सर्वज्ञत्व' आदि गुणं ऋषि, देव और तपस्या के सान्निध्य से ही उत्पन्न होते हैं। उन चारो भाइयों को इन चारों गुणों की प्राप्ति 'वैदिकाध्ययन' में निरत होने से ही हुई-

ते चापि मनुजव्याघ्रा वैदिकाध्ययने रताः।।

वाल्मीकीयरामायणेबालकाण्डे, १८/३६।।

भगवान् श्री राम की पात्रता को देखकर ही ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने उन्हें मात्र पन्द्रह वर्ष की अवस्था में 'बला' और 'अतिबला' नामक विद्याओं को प्रदान किया। (आदिकवि वाल्मीकि ने विश्वामित्र ऋषि को सर्वत्र 'ब्रह्मर्षि' कह कर उद्बोधित किया है। भगवान् श्रीराम के काल से बहुत पहले ही 'ब्रह्मर्षि' पद की प्राप्ति श्री विश्वामित्र जी को हो चुकी थी। ब्रह्मर्षि वसिष्ठ से उनका द्वन्द्व भी समाप्त हो चुका था।) इन विद्याओं से श्री राम को जीवन में कभी कमजोरी, थकान, भूख-प्यास से परेशानी नहीं हुई। इन दोनों विद्याओं को प्राप्त कर श्रीराम का जीवन ऋषिवद् हो गया-

एतद् विद्या-द्वये लब्धे न भवेत् सदृशस्तव।
बला चातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ।।

वाल्मीकीयरामायणेबालकाण्डे, २२/१७।।

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त्त में श्रीराम और श्रीलक्ष्मण जी को जगाते थे। उनका श्रीराम को जगाना ही आज प्रातः जागरण का मंत्र बन गया है-

कौसल्या सुप्रजा राम पूर्वा संध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल! कर्त्तव्यं दैवमाह्निकम्।।

वाल्मीकीयरामायणेबालकाण्डे, २३/२।।

सुप्रभाता निशा राम! पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते गमनायाभिरोचय।।

वाल्मीकीयरामायणेबालकाण्डे, ३५/२।।

(हे कौसल्या के सुपुत्र श्रीराम! प्रातः काल की संध्या का समय आरम्भ हो गया है। उठो सिंहपुरुष! और प्रतिदिवसीय देवकर्म (गायत्री जप; हवन, बलिवैश्वदेव) को सम्पन्न करो।)

तस्यर्षे परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जेपतुः परमं जपम्।।

वाल्मीकीयरामायणेबालकाण्डे, २३/३।।

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र की परम उदारवाणी को सुनकर उन दोनों श्रेष्ठवीर पुरुषों ने स्नान करके तर्पण तथा परम जप (गायत्री) सम्पन्न किया।

कृताह्निकौ महावीर्यौ विश्वामित्रं तपोधनम्।
अभिवाद्यातिसंहृष्टौ गमनायाभितस्थतुः।।

वाल्मीकीयरामायणेबालकाण्डे, २३/४।।

आह्निक कर्म (प्रात:संध्या-हवन-तर्पण) करके दोनों महावीरों ने तपोधन विश्वामित्र का अभिवादन (चरणस्पर्श) किया तथा आगे की यात्रा के लिए सुप्रसन्न तैयार हो गये।

अयोध्या से सिद्धाश्रम (बक्सर) तक अनेक दिनों में यात्रा सम्पन्न हुई। जहाँ भी सरयू नदी तट अथवा गंगा नदी या अन्य नदी का तट मिला वहीं पर गुरु के साथ दोनों भाइयों ने प्रातः स्नान, गायत्री जप, सूर्योपस्थान, हवन, तर्पण, बलिवैश्वदेव किया तथा वेद के आवश्यक सूक्तों (ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-श्री-सूर्य-इन्द्रादि सूक्तों) का पाठ किया-

स्नाताश्च कृतजप्याश्च हुतहव्या नरोत्तम।। वाल्मीकीरामायणेबालकाण्डे, २३/१८।।

श्रीराम-श्रीलक्ष्मण को ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने सरयू-गंगा संगम को प्रणाम करने के लिए कहा-

वारिसंक्षोभजो राम प्रणामं नियतः कुरु।।

वाल्मीकीयरामायणेबालकाण्डे, २४/१०।।

सिद्धाश्रम (बक्सर) पहुँचकर अपने आश्रम में सप्तदिवसीय यज्ञ की दीक्षा लेकर ब्रह्मर्षि विश्वामित्र यज्ञ कर्म में संलग्न हो गये। राक्षसों से यज्ञ को विनष्ट होने से बचाने के लिए दोनों भाइयों ने छः रात्रियों को जागकर व्यतीत किया। दिन में वे कभी सोते नहीं थे। इस प्रकार 'दिन में नहीं सोना चाहिए' शास्त्रों की आज्ञा को उन्होंने जीवन में उतारा-

अनिद्रं षडहोरात्रं तपोवनमरक्षताम्।।

वाल्मीकीयरामायणेबालकाण्डे, ३०/५।।

दोनों राजकुमार (श्रीराम-श्रीलक्ष्मण) रात्रि में ऋषिप्रवर से ज्ञान-विज्ञान-पुराण की कथा सुनते थे और प्रात:काल जागकर संध्यावन्दन; परमश्रेष्ठ मंत्र (गायत्री) का जप नियमपूर्वक करके अग्निहोत्र सम्पन्न कर बैठे गुरु विश्वामित्र के श्रीचरणों में प्रणाम करते थे-

कुमारावपि तां रात्रिमुषित्वा सुसमाहितौ।
प्रभातकाले चोत्थाय पूर्वां संध्यामुपास्य च।।

वाल्मीकीयरामायणेबालकाण्डे, २९/३१।।

प्रशुची परमं जाप्यं समाप्य नियमेन च।
हुताग्निहोत्रमासीनं विश्वामित्रमवन्दताम्।।

वाल्मीकीयरामायणेबालकाण्डे, २९/३२।।

तारों की झिलमिल रोशनी में ही जागकर वे दोनों भाई स्नान कर ऋषि मुनियों की तरह आह्निक क्रिया (दिनचर्या) करते थे-

प्रभातायां तु शर्वर्यां कृतपौर्वाह्णिकक्रियौ।।

वाल्मीकीयरामायणेबालकाण्डे, ३१/२।।

भगवान् श्रीराम और श्रीलक्ष्मण की जीवनचर्या तपस्वी एवं सिद्धों की तरह थी। ऋषि वटुकों की तरह वे भी अपना जीवन परम पवित्र और मंत्रमय रखते थे। ब्रह्मर्षि वसिष्ठ द्वारा यज्ञोपवीत संस्कार से संस्कृत चारो भाइयों ने धनुर्वेद और वेद (ज्ञानकाण्ड) को सभी प्रकार से धारण किया था। परमात्मा श्रीराम ने मनुष्यरूप में अवतार ग्रहण करके मनुष्य लोक की तरह आचरण किया; पर वास्तव में उन्होंने कुछ भी नहीं किया अर्थात् लीला की-

एवं परमात्मा मनुजावतारो मनुष्यलोकाननुसृत्य सर्वम्।
चक्रेऽविकारी परिणामहीनो विचार्यमाणे न करोती किञ्चित्।।

अध्यात्मरामायणे, ३/६६।।

भगवान् श्रीराम वाल्यकाल में माथे पर 'काकपक्ष' सजाते थे। कौआ भगवती धूमावती का वाहन है। काकपक्ष धारण कर श्रीराम ने भगवती धूमावती को प्रसन्न कर लिया। भविष्य के लिए यह सूचना थी कि महान् अन्यायी रावण का वध काकपक्षधारी करेंगे। श्रीराम अपने शुभ्र कर्मों से पुरुषोत्तम हैं और भगवती जानकी अयोनिजा हैं पर अपने दिव्य कर्मों से भगवती पार्वती और पिता जनक जी की लाड़ली हैं। हिन्दु समाज में जो संस्कार पुत्र को दिया जाता है वही संस्कार कन्या को भी प्रदान किया जाता है। भगवान् श्रीराम और भगवती सीता का जीवन अत्युच्च मर्यादा, अनुशासन और यम-नियम पर आधारित है।

●

भगवान् श्री कृष्ण की दैनिकी चर्या

भगवान् श्री कृष्ण प्रतिदिन पञ्चमहायज्ञ करते थे। प्रतिदिवसीय अग्निकर्म (हवन) करने के बाद चतुर्दश महाभूतों को बलि (भोजन) देना तथा अतिथि सत्कार करना उनका प्रतिदिन का कर्म था। सभी लोगों के भोजन करने के बाद जो कुछ अवशिष्ट बचता था उसे ही श्रीकृष्ण भगवान् अपने घर में प्रीतिपूर्वक लेते थे-

जुह्वन्तं च वितानाग्नीन् यजन्तं पञ्चभिर्मखैः।
भोजयन्तं द्विजान् क्वापि भुञ्जानमवशेषितम्।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, १०/६९/२४।।

भगवान् श्री कृष्ण प्रातः सायं दोनों संध्याओं को नियमपूर्वक करते थे। वे मौन होकर गायत्री जप करते थे-

क्वापि संध्यामुपासीनं जपन्तं ब्रह्मवाग्यतम्।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, १०/६९/२५।।

पूर्वाह्न कालिक क्रिया करने के बाद श्री कृष्ण भगवान् अपने अश्वों-गायों पर काफी समय देते थे। उन्हें थप-थपा कर आनन्दित करते थे। दोपहर में प्रायशः वे अश्व-हाथी संचालन, रथविद्या, धनुर्विद्या का अभ्यास करते थे। जलक्रीडा उनको प्रिय थी। द्वारका दुर्ग में उन्होंने कृत्रिम जलाशय बनवा रखा था। मणिमाणिक्य लगे शय्या (पलंग) पर सोते थे। इतिहास-पुराणों की कथा सुनना उन्हें अत्यन्त प्रिय था। वे प्रतिदिन दान दिया करते थे-

कुत्रचिद् द्विजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलङ्कृताः।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, १०/६९/२८।।

श्रीकृष्ण भगवान् जब कभी अकेले होते थे पद्मासन लगाकर ध्यानस्थ हो जाते थे-

ध्यायन्तमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम्।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, १०/६९/३०।।

प्रायशः ऋषियों, मुनियों, ज्ञानियों, पूज्यजनों की पूजा वे पाद, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क से किया करते थे। उन्होंने वेदज्ञ सहाध्यायी सुदामा और देवर्षि नारद का पाँव पीतल के कठौते में धोकर, अपने सिर पर उस जल को छिड़क कर स्वागत किया। महाराज श्रीकृष्ण के इस स्वागत विधि से ये दोनों महानुभाव आश्चर्य चकित रह गये थे। आज के युग में कोई राजा या मंत्री किसी भी पूज्य की ऐसी सेवा-शुश्रूषा करेगा? या करता है?

भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने जीवन काल में हजारों लड़के-लड़कियों का विवाह स्वयं कराया। वधू का स्वागत किया, कन्या को विदाई दी। बच्चों के साथ वे प्रतिदिन क्रीड़ा करते थे। धर्म-अर्थ का चिन्तन कर उसकी आपूर्ति करते थे। उनके महल में रहने वाले दास-दासी भी स्वर्ण-रजत-मणि धारण करते थे। अपने जीवन काल में अनेक यज्ञों का सम्पादन किया। मठ-मंदिर-आश्रम-कूप-जलाशय का निर्माण कराया। इससे इष्टापूर्त धर्म की पूर्ति की। यादव बन्धुओं के साथ शिकार पर निकलते थे और विविध प्रकार के खेलों-उत्सवों का समायोजन कराते थे। अपने गृहस्थ जीवन में श्रीकृष्ण ने वह सब कुछ किया जो एक सद्गृहस्थ करता है। धर्म-अर्थ-काम इन तीनों पुरुषार्थों का वे भलीभाँति पालन करते थे।

भगवान् श्रीकृष्ण के महल में अनेक प्रकार के पक्षी मुक्त होकर वृक्षों पर विचरण करते थे। ब्राह्ममुहूर्त्त में उनके कलरव को सुनकर श्रीकृष्ण जी दाम्पत्य भाव से हटकर शौच क्रिया; देवकर्म, अग्नि कर्म में लग जाते थे। भगवान् श्रीकृष्ण की दिनचर्या का वर्णन श्रीमद् भागवतमहापुराण के दशमस्कन्धं के सत्तरवें अध्याय में किया गया है-

ब्राह्मेमुहूर्त्ते उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम्।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, ७०/४।।

(ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर हाथ-मुंह धोकर अपने मायारहित शुद्ध परमात्मा स्वरूप का ध्यान करते थे। उस समय उनकी इन्द्रियाँ प्रसन्न हो उठती थीं।)

अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधिः
क्रियाकलापं परिधाय वाससी।
चकार संध्योपगमादि सत्तमो
हुतानलो ब्रह्मजजापवाग्यतः।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, ७०/६।।

सो कर उठने के पश्चात् विधिपूर्वक पवित्र जल में स्नान करते थे। इसके पश्चात् पीताम्बर, उत्तरीय आदि वस्त्र धारण करते थे। इसके बाद संध्यावन्दन करके अग्निहोत्र करते थे तथा मौन होकर गायत्री जप करते थे।

उपस्थायार्कमुद्यन्तं तर्पयित्वाऽऽत्मनः कलाः।
देवानृषीन् पितृन् वृद्धान् विप्रानभ्यर्च्य चात्मवान्।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, ७०/७।।

सूर्योदय से पूर्व जप-हवन करने के बाद वे उगते हुए सूर्य को अर्घ्य देते थे, सूर्योपस्थान करने के बाद पञ्चब्रह्मयज्ञ करते थे। तर्पणादि करके देव, ऋषि, पितरों तथा अपनी आत्मकलाओं का तर्पण करते थे। विप्र और वृद्धों का सत्कार कर अतिथि-सत्कार कर प्रतिदिवसीय कर्म पूरा करते थे।

धेनूनां रुक्मशृङ्गीणां साध्वीनां मौक्तिकस्रजाम्।
पयस्विनीनां गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससाम्।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, ७०/८।।

वे चाँदी से मढ़ी सींग वाली, मोती की मालाओं से सजायी हुई, सुन्दर वस्त्र पहनी हुई सीधी शुभ सवत्सा दुग्ध देने वाली गायों का दान करते थे।

गोविप्र देवता-वृद्धगुरून् भूतानि सर्वशः।
नमस्कृत्यात्मसम्भूतीर्मङ्गलानि समस्पृशत्।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, ७०/१०।।

गाय, ब्राह्मण, देवता, वृद्ध, गुरु तथा सभी प्राणियों को प्रणाम करके मांगलिक वस्तुओं का वे स्पर्श करते थे।

आत्मानं भूषयामास नरलोकविभूषणम्।
वासोभिर्भूषणैः .स्वीयैर्दिव्यस्त्रगनुलेपनैः।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, ७०/११।।

भगवान् श्रीकृष्ण अपने को प्रतिदिन वस्त्र, आभूषण, दिव्यमाला, चन्दनादि लेप से सुसज्जित करते थे।

अवेक्ष्याज्यं तथाऽऽदर्शं गोवृषद्विजदेवताः।
कामांश्च सर्ववर्णानां पौरान्तः पुरचारिणाम्।
प्रदाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनन्दत।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, ७०/१२।।

भगवान् श्रीकृष्ण सुसज्जित होकर गोघृत तथा दर्पण में अपना चेहरा (मुखमण्डल) देखते थे। गो, वृष, विप्र, देवता का दर्शन करते थे। सभी वर्ण के लोगों, नगरवासियों और अपने परिजनों की अभिलाषा पूरी करते थे तथा उन्हें प्रसन्न देखकर प्रसन्न होते थे।

संविभज्याग्रतो विप्रान् स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः।
सुहृदः प्रकृतीर्दारानुपायुंक्त ततः स्वयम्।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, ७०/१३।।

इसके बाद वे सामने पड़ने वाले क्रमशः विप्रों, स्वजनों, सम्बन्धियों, मंत्री, रानियों को पुष्पमाला, ताम्बूल, चन्दन, अंगराग आदि वस्तुयें देते थे। शेष वस्तुओं में से अंत में स्वयं ग्रहण करते। अतिथियों को भोजन कराकर भगवान् स्वयं भोजन करते और सारथी दारुक द्वारा लाये गये रथ-जिसमें सुग्रीव आदि घोड़े जुते होते थे- सात्यकी और उद्धव जी के साथ सवार होकर अपनी राज्यसभा 'सुधर्मा' में जाते थे-

सुधर्माख्यां सभां सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः।
प्राविशद् यन्निविष्टानां नसन्त्यङ्ग षडूर्मयः।।

भगवान् श्रीकृष्ण की सुधर्मा संसद भवन में सब कुछ प्राकृतिक रूप से समशीतोष्ण; आह्लादकारी, जरा-रोग से अप्रभावित था। भगवान् सूर्य की छः उग्र किरणों को सुधर्मा में प्रविष्ट होने से रोक दिया गया था जिससे उसमें भाग लेने वाले को थकान आदि का अनुभव ही नहीं होता था।

इस तरह से भगवान् श्रीकृष्ण की दिनचर्या नियंत्रित थी। बाहर में भी वे अपनी दिनचर्या में किसी तरह की न्यूनता (कटौती) नहीं करते थे। भगवान् श्रीकृष्ण बाल्यकाल में मस्तक पर मयूरपक्ष धारण करते थे। मयूरपक्ष विषहारक, तृतीय (अग्नि) नेत्र का प्रतीक तथा शत्रुसंहारक होता है। मयूर अनिरुद्धा सरस्वती (युद्ध की देवी) का वाहन है।

भगवान् श्रीकृष्ण की दिनचर्या श्रुति-स्मृति अनुमोदित ऋषिप्रोक्त दिनचर्या का अङ्ग थी। उनका लोकव्यवहार तथा शास्त्र-ज्ञान इतना विशद था कि उसे देख-सुनकर स्वयं ब्रह्मर्षि व्यास, राजर्षि भीष्म तथा अन्य ज्ञानी गण आश्चर्यचकित रह जाते थे। श्रीकृष्ण भगवान् के उत्तम चरित्र एवं दिव्य ज्ञान के कारण तत्कालवर्ती ऋषिगण ने उन्हें जगद्गुरु उपाधि से विभूषित किया। उनका व्यवहार एक-एक व्यक्ति एवं एक-एक चरित्र के प्रति न्यायपूर्ण और यथोचित था।

●

दक्ष प्रजापति की दैनिकी चर्या

दक्ष प्रजापति ने अपनी तपश्चर्या से सृष्टि में अद्भुत कर्म किया। उनकी गोद में सती खेलीं। भगवान् शिव को दक्ष ने अपना दामाद बनाया। दक्ष प्रजापति ने सृष्टि को सुव्यवस्थित किया। भगवान् शिव से उन्होंने प्रमाद में आकर कलह किया। प्रायश: तप से उत्पन्न शक्ति के कारण व्यक्ति को प्रमाद हो जाता है। पति अपमान से आहत दक्ष पुत्री सती ने योग द्वारा अग्नि उत्पन्न कर अपने को पितृगृह में ही भस्म कर लिया। यह दुर्घटना दक्ष की असहिष्णुता के ही कारण घटित हुई। सती की मृत्यु से क्षुब्ध भगवान् शिव ने अपनी जटा से वीरभद्र नामक गण को उत्पन्न किया तथा दक्ष के यज्ञ का एवं दक्ष का विनाश करा डाला। देवों के कहने पर भगवान् शिव ने बकरे के सिर को जोड़ कर पुन: दक्ष को जीवन दान दिया। श्री विष्णु भगवान् के प्रयास से पुन: दक्ष और भगवान् शिव के बीच सौम्य भाव बना। दक्ष प्रजापति ने अपने तप के आधार पर जीवन को एक सुव्यवस्थित पद्धति दी। यह दक्षस्मृति नाम से सुप्रसिद्ध है। इसमें जीवनचर्या के गूढ़ पक्षों का अपूर्व वर्णन है-

उषः काले तु सम्प्राप्ते शौचं कृत्वा यथार्थवत्।
ततः स्नानं प्रकुर्वीत दन्तधावनपूर्वकम्।।

दक्षस्मृतिः, २/६।।

उष: काल में शौच करके दन्तधावन कर स्नान करना चाहिए।

स्नानादनन्तरं तावदुपस्पर्शनमुच्यते।
अनेन तु विधानेन आचान्तः शुचितामियात्।।

दक्षस्मृतिः, २/१३।।

स्नान के बाद आचमन करने का विधान है। आचमन से व्यक्ति देवकार्य हेतु पवित्र हो जाता है।

प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च त्रिः पिबेदम्बु वीक्षितम्।
संवृत्याङ्गुष्ठमूलेन द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम्।।

दक्षस्मृतिः, २/१४।।

पूजन करने से पूर्व हाथ-पैर धोकर तीन बार आचमन का जल पीना चाहिए। दायें हाथ के अंगूठे को सिकोड़ कर मध्यमा उँगली के मूल में नीचे लाकर आमचन करना चाहिए और दो बार मुंह को पोंछना चाहिए।

संध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमो विधीयते।
स्वयं होमे फलं यत्तु तदन्येन न जायते।।

दक्षस्मृतिः, २/२०।।

संध्या वन्दन कर्म करके स्वयं होम करना चाहिए। स्वयं किये हुए होम से जो फल उत्पन्न होता है वह दूसरे द्वारा किये होम से नहीं होता है।

अग्निहोत्री, पुत्र, गुरु, भाई, भाँजा, दामाद (जामाता) द्वारा किया हुआ होम अपने द्वारा किये होम के तुल्य फलदायी होता है। २/२१॥

देवकार्यस्य सर्वस्य पूर्वाह्णस्तु विधीयते।
देवकार्यं ततः कृत्वा गुरुमङ्गलवीक्षणम्।।

दक्षस्मृतिः, २/२२।।

पूर्वाह्ण (१० बजे के भीतर) में सभी देवकार्य पूर्ण किये जाते हैं। देवकार्य करके श्रीगुरु जी और मंगलद्रव्य (कुंकुम, गोरोचन, कस्तूरी, अष्टगंध, चन्दन, गाय, बछड़ा आदि) का दर्शन करना चाहिए। वेद पढ़ना तपस्या है। अतः वेद ज्ञान का अध्ययन करना चाहिए। दक्षस्मृतिः, २/२५-२६॥ ज्ञान के पाँच आयाम होते हैं- पठन, मनन, अभ्यास, जप तथा वितरण। दक्षस्मृतिः, २/२७॥ इन पाँचों आयामों के माध्यम से ज्ञान को सार्थक किया जाता है।

दिन के द्वितीय भाग (याम) में समिधा, कुशा, पुष्प आदि का आनयन करना चाहिए। यह काल प्रायशः ९ बजे के अन्दर होता है। पिता, माता, गुरु, पत्नी, संतान, दरिद्र, शरणागत, अभ्यागत और अतिथि पोष्यवर्ग में आते हैं। इन्हें भोजनादि से रक्षित करना चाहिए। दक्षस्मृतिः, २/२८-३१॥

जीना उसी का श्रेयस्कर है जिसके जीने से और लोग जी सकें। मात्र अपने पेट को भरने वाले तो मृतक होते हैं-

स जीवति य एवैको बहुभिश्चोपजीव्यते।
जीवन्तो मृतकाश्चान्ये ये आत्मम्भरयो नराः।।

दक्षस्मृतिः, २/३३।।

गृहस्थ को चाहिए कि वह देवता, पितर, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि को अन्न दे। (इसे ही **बलिवैश्वदेव** कहते हैं।)

जो स्नान नहीं करता, जप-हवन नहीं करता तथा दान नहीं करता वह देव-ऋषि-पितर ऋण से ऋणी होकर नरक में वास करता है। २/४८।। इन सभी चीजों का सम्बन्ध व्यक्ति के स्वास्थ्य, सामाजिक सरोकार और चरित्र के सार्वभौमिक विकास के साथ जुड़ा हुआ है। दया, लज्जा, क्षमा, श्रद्धा, वुद्धि, योग (धनागम), कृतज्ञता ये सात गुण जिसमें निवास करते हैं वही श्रेष्ठ गृहस्थ कहलाता है-

दया लज्जा क्षमा श्रद्धा प्रज्ञा योगः कृतज्ञता।
एते यस्य गुणाः सन्ति स गृही मुख्य उच्यते।।

दक्षस्मृतिः, २/५१।।

इतिहास, पुराण आदि का श्रवण अवश्य करना चाहिए। इससे जीवन को दृढ़ आधार मिलता है।। अपनी मर्यादा के भीतर जीने की इच्छा शक्ति बढ़ती है।। दक्षस्मृतिः २/५३।।

प्रातः काल और सायं काल में सूर्य की आराधना-हवन के पश्चात् ही अन्य कार्य करना चाहिए। रात्रि में छः घण्टा ही शयन करना चाहिए-

प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासेन तौ नयेत्।
यामद्वयं शयानो हि ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

दक्षस्मृतिः, २/५५।।

इन्हीं चौबीस घण्टे में ही, दिन-रात्रि के भीतर ही, व्यक्ति काम करता हुआ जीवित रहता है और इसी में मर जाता है। अतः इस चौबीस घण्टे को जो व्यक्ति ठीक से व्यतीत करता है वही सुख को प्राप्त करता है-

अस्मिन्नेव प्रयुञ्जानो ह्यस्मिन्नेव तु लीयते।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यं सुखमिच्छता।।

दक्षस्मृतिः, २/५७।।

दक्षप्रजापति ने मनुष्य जीवन को चिन्तनपरक दृष्टि दी और बतलाया कि चौबीस घण्टे में आचरित शुभ, सुमंगल, पवित्र कर्म ही व्यक्ति को अनन्तकालिक जीवन देता है। यदि यही विपरीत हो जाता है तो व्यक्ति भोगी, रोगी, अयशी, पापी, क्षयी होकर अंततः बिना कुछ किये विनष्ट हो जाता है। फलतः इन चौबीस घण्टों को अनुशासनबद्ध ढ़ंग से जीकर व्यक्ति सृष्टि में सुगंध फैला सकता है। जीवन में चौबीस घण्टा छोटा है; पर उसका प्रभाव भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों पर पड़ता है। इस दृष्टि से जीवन पद्धति को अत्यन्त सुबद्ध कर ऋषियों ने स्वर्ग-अपवर्ग, भोग-मोक्ष, श्रेय-प्रेय सब कुछ प्रदान किया।

दक्ष प्रजापति के ८१ निर्देश-

दक्ष प्रजापति ने जीवन को सत्पथ पर चलाने के लिए इक्यासी प्रकार के निर्देश दिये हैं। इन्हें कुल नौ भागों में बाँटा गया है। ये भाग हैं- नौ सुधा (अमृत), नौ ईषद् (अल्प) दान, नौ कर्म, नौ विकर्म, नौ गोपन कर्म, नौ प्रकाश्य कर्म, नौ सफल कर्म, नौ असफल कर्म, नौ अदेय (वस्तुयें)। इनका जीवन में पग-पग पर प्रयोग करके मनुष्य परम सफलता को प्राप्त कर लेता है। इन इक्यासी कर्मों के कारण 'दक्षस्मृति' ख्याति प्राप्त हुई। इनका विवेचन निम्नलिखित प्रकार से है-

नौ सुधा (अतिथि सत्कार)-

१. अतिथि को मन से आत्मीयता प्रकट करें।
२. आँख से स्नेह तथा तरलता दिखलायें।
३. मुख पर अर्थात् चेहरे पर स्वाभाविक मुस्कुराहट रखें।
४. सौम्य वाणी अर्थात् मधुरवाणी से सत्कार करें।
५. अतिथि के आने पर अभ्युत्थान करें (खड़ा हों)।
६. इहागच्छ- 'इधर आइये, आसन ग्रहण कीजिए' बोलें।
७. प्रिय पृच्छा- 'कृपा कर आगमन का कारण बतलायें'।
८. प्रिय आलाप- अतिथि से मधुर वार्तालाप करें।
९. अनुव्रज्या अतिथि के जाते समय कुछ दूर तक अनुगमन करें)। इसे ही रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है-

नाथ कृतारथ भयउँ मैं तव दरसन खगराज।
आयस देहु सो करौं अब प्रभु आयहु केहि काज।।

उत्तरकाण्ड ६३।।

इस दोहा में १. मन, २. चक्षु, ३. मुख, ४. वाक्, ५. अभ्युत्थान, ६. इहागच्छ, ७. प्रिय पृच्छा, ८. प्रिय आलाप- उपासना, ९. अनुव्रज्या सब कुछ सन्निहित है।

नौ इषद् दान-

१. भूमि- शुद्ध स्थान पर बैठाने का उपक्रम करें।
२. जल- पीने के लिए जल लाने का उपक्रम करें।
३. तृण (आसन)- शुद्ध; उत्तम आसन पर आदर पूर्वक बैठायें।
४. दोनों पैरों को धोयें।
५. अभ्यंग- तेल; साबुन, सुगन्ध, तौलिया आदि दें।

६. आश्रय- तत्काल विश्राम आदि का स्थान निर्दिष्ट करें।
७. शयन- सोने का स्थान निर्दिष्ट करें।
८. भोजन- यथा शक्ति भोजन करायें।
९. मृज्जल- मृत्तिका, जल, साबुन आदि पैर-हाथ-मुख धोने को दें।

अतिथि के आने पर कैसे आतिथ्य करें और उसे अनिवार्यत: अपने घर पर क्या-क्या उपलब्ध करायें इन दोनों भागों में अट्ठारह बिन्दुओं द्वारा बतलाया गया है।

नौ कर्म-

प्रत्येक व्यक्ति को दीर्घायु, धनवान्, यशस्वी बनने के लिए दक्ष कथित नौ उत्तम कर्मों को करना चाहिए। ये नौ कर्म हैं-

१. संध्या- त्रिकाल अथवा प्रात:काल में प्राणायाम एवं गायत्री मंत्र जप करें।
२. स्नान- सुबह-सायं (उभौ कालौ) अथवा प्रात:काल अवश्य स्नान करें।
३. जप- इष्ट देवता एवं आवश्यकतानुसार अभीष्ट देवता का जप करें।
४. होम- प्रतिदिवसीय हवन से आयु एवं समृद्धि बढ़ती है।
५. स्वाध्याय- वेद पाठ करें अथवा जो वेदज्ञ नहीं हैं गायत्री मंत्र जप करें।
६. देवपूजा- विष्णु, शिव, देवी, सूर्य, गणपति, हनुमान आदि की पूजा करें।
७. वैश्वदेव-'पञ्चमहायज्ञ करें।
८. अतिथि सत्कार-भिक्षु, यति, तपस्वी को घर आने पर भोजन दें।
९. संविभाग (यथाशक्ति देव-ऋषि-मनुष्य-गुरु-दु:खी-तपस्वी-मातापिता को भोजन उपलब्ध कराना संविभाग कहलाता है।)

नौ विकर्म-

इन नौ कार्यों से बचना अनिवार्य होता है-

१. अनृत- झूठ बोलना।
२. पर स्त्री गमन।
३. अभक्ष्य- मांस आदि खाना।
४. अगम्या स्त्री ममन।
५. अपेय पान।
६. स्तेय- चोरी।
७. हिंसा।
८. वेद विरुद्ध आचरण- नास्तिक्य।
९. मित्रधर्म बहिष्कार- मित्र द्रोह।

नौ गोपन-

इन नौ चीजों को गोपनीय रखना चाहिए-

१. आयु- अनावश्यक रूप से सभी को अपनी उम्र न बतलायें।
२. वित्त- धन, अपनी आर्थिक स्थिति सभी को न बतलायें।
३. गृहच्छिद्र- स्वगृही जनों के दोषों को दूसरों से नहीं बतलायें।
४. मन्त्र- गुरु मन्त्र, इष्टमन्त्र, गोपनीय वार्ता को दूसरों से नहीं बतलायें।
५. मैथुन- काम।
६. भेषज (रोग की दवा, चिकित्साचर्या को केवल चिकित्सक से ही कहें)।
७. तप (कौन सा तप, कितना; कब, कहाँ करते हैं, नहीं बतलाना चाहिए)।
८. दान (बतला देने पर दिया दान अपमान में बदल जाता है)।
९. अपमान (अपने प्रति किये अपमान को हृदय में रखना)।

आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रमैथुनभेषजम्।
तपो दानावमानौ च नव गोप्यानि यत्नतः।।

दक्षस्मृतिः, ३/१२।।

नौ प्रकाश्य-

इन नौ चीजों को सबके सामने प्रकाशित करना चाहिए-

१. आरोग्य- अपने स्वास्थ्य की चर्चा अन्यों से करें।
२. ऋणशुद्धि- ब्याजमुक्ति की चर्चा सभी से करें।
३. दान- सुयोग्य व्यक्ति को दान देने की संस्तुति सभी से करें।
४. अध्ययन- किये हुए अध्ययन की चर्चा गुरू और मित्र से करें।
५. विक्रय- किसी वस्तु को बेचने के सन्दर्भ में दूसरों से चर्चा करें।
६. कन्यादान- कन्या विवाह हेतु लोगों से परामर्श करें।
७. वृषोत्सर्ग- सांढ़ छोड़ने का धार्मिक कृत्य सभी को बतलायें।
८. रहः- एकान्त में किये हुए पाप का प्रायश्चित धर्मज्ञ से पूछ कर करें।
९. अनिन्दित- श्रेष्ठ, शुभ, कल्याणकारी, समाज राष्ट्र के उत्कर्ष परक कर्म का संयमित भाषा में सर्वत्र प्रकाशन करें।

आरोग्यमृणशुद्धिश्च दानाध्ययन-विक्रयाः।
कन्यादानं वृषोत्सर्गो रहः पापमकुत्सनम्।
प्रकाश्यानि नवैतानि गृहस्थाश्रमिणस्तथा।।

दक्षस्मृतिः, ३/१४।।

नौ सफल कर्म-

इन नौ लोगों को दिया हुआ दान सफल होता है-

१. माता- स्वअर्जित धन तथा श्रद्धा माता को समर्पित करें।

२. पिता- स्वअर्जित धन तथा श्रद्धा पिता को समर्पित करें।

३. गुरु- स्वअर्जित धन तथा श्रद्धा गुरु को समर्पित करें।

४. मित्र- स्वअर्जित धन एवं बल से मित्र का उपकार करें।

५. विनीत- विनम्र व्यक्ति की धन एवं बल से सहायता करें।

६. उपकारी- प्रत्युपकार की इच्छा रखकर दान नहीं करते हैं। जो पर का उपकार करता हो उसे दान देना चाहिए।

७. दीन- गरीब, विधवा आदि की धन से सहायता करें।

८. अनाथ- संरक्षक रहित, कमजोर व्यक्ति की सहातया करें।

९. विशिष्ट- गुण सम्पन्न व्यक्ति को दिया हुआ धन सफल होता है।

मातापित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणि।
दीनानाथविशिष्टेभ्यो दत्तं तु सफलं भवेत्।।

दक्षस्मृतिः, ३/१५।।

नौ असफल कर्म-

इन नौ प्रकार के लोगों को दिया हुआ धन विफल होता है-

१. धूर्त- चालाक एवं धूर्त को कभी दान न दें।

२. वन्दी- कारागार में निरूद्ध व्यक्ति को दान न दें।

३. मन्द- बुद्धिहीन व्यक्त को दान न दें।

४. कुवैद्य- अयोग्य चिकित्सक को न धन दें, न उससे चिकित्सा करायें।

५. कितव- जुआरी को दिया धन नष्ट हो जाता है। अतः उसे धन न दें।

६. शठ- दुष्ट, ढीठ को दान न दें।

७. चाटुकार- चापलूस को धन न दें। न तो उसे सटायें।

८. चारण- अनावश्यक प्रशंसक से दूर रहें। उसे धन न दें।

९. चोर- चोरी करने वाले को धन न दें।

धूर्त्ते वन्दिनि मन्दे च कुवैद्ये कितवे शठे।
चाटुचारण-चौरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम्।।

दक्षस्मृतिः, ३/१६।।

नौ अदेय-

ये नौ प्रकार की वस्तुयें संपत्ति-विपत्ति की स्थिति में भी अदेय होती हैं-

१. सामान्य धन- अपना रोजमर्रा का धन दूसरे को न दें।
२. याचित धन- दूसरे से मांग कर लायी वस्तु अन्य को न दें।
३. धरोहर- न्यास को दूसरे को न दें।
४. कोष- संरक्षित धन को कभी भी दूसरे को न दें।
५. पत्नी- अपनी भार्या को दूसरे को न सौंपे।
६. पत्नी धन- स्त्री धन को दूसरे को नहीं देना चाहिए।
७. पैतृक संपत्ति- दाय में प्राप्त सम्पत्ति को दूसरे को न दें।
८. निक्षेप- जमा पूंजी, सर्वस्व को किसी भी स्थिति में दूसरे को न दें।
९. संतति रहते हुए भी सर्वस्व दान कभी न करें।।

सामान्यं याचितं न्यासः आधिर्दाराश्च तद्धनम्।
क्रमायातं च निक्षेपः सर्वस्वं चान्वये सति।।
आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा।

दक्षस्मृतिः, ३/१७।।

इस प्रकार से दक्ष प्रजापति द्वारा निर्दिष्ट जीवन पद्धति और लोक व्यवहार पर जो विचार पूर्वक चलता है वह दीर्घायु, यशस्वी, श्रीमान्, सुखी और लोक समादृत होता है। जो व्यक्ति दक्ष प्रजापति के इक्यासी (८१) निर्देशों को नहीं मानता है वह मूर्ख अपने जीवन में प्रायश्चित करता है, पछताता है और गर्त में गिरता है। ये इक्यासी जीवनपद्धति क्रम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। एक प्रकार से दक्ष प्रजापति ने ८१ संविभागों में अहोरात्रि (चौबीस घण्टे) के कर्म को विभाजित करके अत्यन्त सुगम पथ दिखलाया है।

दक्षप्रजापति अंतिम प्रजापति हैं। आपके द्वारा पृथ्वी पर मनुष्य के सभी आचरण, तप, व्यवहार और मर्यादाओं को स्थापित किया गया। दक्ष स्वयं के जीवन में प्रबल तपस्वी थे। आपने ब्रह्मा तुल्य सामर्थ्य अर्जित कर अपने जीवन को दीर्घ, सबल तथा सफल बनाया। अंतिम समय में आपका विद्वेष अपने दामाद भगवान् शिव से हो गया। परिणामतः यज्ञ विध्वंस, शिरोच्छेद तथा बकरा (अज) का शिरः संयोजन आदि घटनायें आपके साथ घटित हुईं। आप द्वारा विरचित दक्षस्मृति हिन्दू जीवन पद्धति को विस्तृत आयाम देती है।

●

महर्षिचरक प्रोक्त दिनचर्या

आयुर्वेद दिनचर्या, ऋतुचर्या, आहार-विहार को निर्देशित करके स्वास्थ्य हेतु शुभ एवं कल्याणकारी पथ दिखलाता है। इस देश में आयुर्वेद की परम्परा अथर्ववेद से आरम्भ होने के कारण अत्यन्त प्राचीन है। आयुर्वेद से उपदिष्ट मार्ग पर चलता हुआ व्यक्ति यदि तपस्वी हो तो शतायु की सीमाओं को भी लाँघ जाता है। तपस्या, आत्मनियन्त्रण, सम्यक् चर्या और आहार-विहार से व्यक्ति इच्छित आयु प्राप्त कर लेता है। मुनिप्रवर व्यास ने कहा है-

पुरुषाः सर्वसिद्धाश्च चतुर्वर्षशतायुषः।
कृते त्रेतादिकेऽप्येवं पादशो ह्रसति क्रमात्।।

कृत (सत्य) युग में पुरुष चार सौ वर्ष की आयु वाले होते थे। वे सर्वसिद्ध होते थे। त्रेता में तीन सौ वर्ष, द्वापर में दो सौ वर्ष और कलियुग में सौ वर्ष या इससे कम आयु के होते हैं। पुरुष का अर्थ है- पुर अर्थात् शरीर में सोने वाला चेतन तत्त्व (आत्मा)। यही पुरुष कहलाता है। अत: स्त्री-पुरुष जनित भेद आत्मा में उपलब्ध नहीं होता है।

काया (शरीर), पंच कर्मेन्द्रिय, पंच ज्ञानेन्द्रिय, सत्त्व (मन) और आत्मा इनका अदृष्ट संयोग जहाँ हो और इसमें चैतन्य की अनुवृत्ति हो उसे आयु कहते हैं। चैतन्यविहीनता ही मृत्यु है। चैतन्य तत्त्व का निवास आत्मा में होता है। अत: आत्मा को कर्त्ता कहते हैं- 'चेतनावान् यतश्चात्मा ततः कर्त्ता निरुच्यते।' शरीर, मन और आत्मा इन तीनों स्तम्भों पर लोक (जीवन) आधारित है। अत: इन तीनों को ठीक रखने का उपाय आयुर्वेद बतलाता है। आयु बढ़ने और घटने वाली आत्मा की सम्पत्ति है। यह अस्थिर है।

दिनचर्या, ऋतुचर्या, आहार-विहार के माध्यम से मनुष्य अपने को हमेशा स्वस्थ रखता है। आयुर्वेद निर्दिष्ट पद्धति से जीवन पद्धति को ठीक रखने पर सामान्यत: कोई रोग नहीं होता; पर कर्मज, प्रज्ञापराध और प्रारब्ध जनित रोगों पर अंकुश तो तप से ही लगता है। दिनचर्या-ऋतुचर्या प्रकृति से सामंजस्य बैठा कर रोगनिरोधक क्षमता को उत्पन्न करती है। अत: व्यक्तिगतरूप से इसका लाभ हरेक मनुष्य को मिलता है। इसे स्वस्थवृत्त (Personal Hygiene) के रूप में

अपनाया जाता है। यह स्वास्थ्य का ऐसा व्यक्तिगत कोष है जिसे प्रत्येक व्यक्ति प्रकृति से उपहार में लेकर एकत्रित करता है। रोग अपने ही कर्म से शरीर और मन दोनों में उत्पन्न होते हैं-

कर्मजा हि शरीरेषु रोगाः शरीरमानसाः।
शरा इव पतन्तीह विमुखा दृढधन्विभिः।।

चरक संहिता की व्याख्या में श्रीचक्रपाणिदत्त ने लिखा है कि शारीरिक रोग कुष्ठादि हैं, मानसिक रोग कामादि हैं और शरीर मन दोनों से उत्पन्न रोग उन्माद होता है। शरीर की रक्षा संसार की सभी वस्तुओं को समर्पित करके करनी चाहिए- **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।** शरीर का पालन पोषण विश्व का सर्वाधिक पुनीत कर्त्तव्य है-

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्।।

चरकसंहिता

शरीर पर पड़े तो अन्य सब कुछ छोड़कर शरीर की रक्षा करनी चाहिए; क्योंकि शरीर के न रहने पर सब कुछ समाप्त हो जाता है। शरीर मंदिर है। इसके भीतर चैतन्य का निवास होता है।

आयुर्वेद; ज्योतिषशास्त्र, योगशास्त्र और धर्मशास्त्र में एक तथ्य विस्तार के साथ प्रकाशित है कि व्यक्ति को सूर्योदय से पहले जाग जाना चाहिए। मलय पवन का खुले में सेवन करने से मन; फेफड़ा, हृदय, मस्तिष्क सभी को लाभ मिलता है। वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों में कहा गया है- **'ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थावनुचिन्तयेत्।'** ब्राह्ममुहूर्त्त में जागकर धर्म और अर्थ प्राप्ति के सन्दर्भ में चिन्तन करना चाहिए। ब्राह्ममुहूर्त्त में जागने से मनुष्य के मस्तिष्क में ईश्वरीय मेधा का निवास होता है। सूर्योदय के बाद तक बिस्तर पर सोते रहने से बन्द कमरे में पड़े पड़े उमस भरे वातावरण से व्यक्ति कार्बनडाइ ऑक्साइड गैस ग्रहण करता है। इसका दुष्प्रभाव फेफड़े और शरीर पर होता है। शुद्ध प्राणवायु, मलय पवन का शीतल झोंका यदि लेना है तो ब्राह्ममुहूर्त्त में तो जागना ही पड़ेगा। यह दिनचर्या का प्रथम सोपान है। नित्यक्रिया, योगासन, ध्यान आदि करने के बाद व्यक्ति को हल्का जलपान ऋतुफल आदि के साथ लेना चाहिए। संतुलित जीवनचर्या स्वास्थ्य और दीर्घायु देती है।

ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं तथा छठा अतीन्द्रिय मन होता है। सत्त्व संज्ञा चेतन तत्त्व (आत्मा) की होती है। इन पंच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सात्विक-राजसी-तामसी

आचरण से वैसा ही परिणाम निकलता है। अत: सात्विक-राजसी-तामसी आहार और विहार भी होते हैं। इनसे उत्पन्न परिणाम भी वैसा ही होता है।

यदि व्यक्ति आत्महित चाहता है तो उसे सद्वृत्त अपनाना चाहिए- **तस्मादात्महितं चिकीर्षता सर्वेण सर्वं सर्वदा स्मृतिमास्थाय सद्वृत्तमनुष्ठेयम्।** चरक संहिता, ८/१७। ध्येय है यहाँ स्वस्थवृत्त को सद्वृत्त कहा गया है। वृत्त अर्थात् चरित्र। स्वस्थवृत्त और सद्वृत्त दोनों से मिलकर जीवन परिपूर्ण होता है।

महान् आयुर्वेद वेत्ता चरक ने एक महत्त्वपूर्ण बात कही- 'सद्वृत्त के अपनाने से दो लाभ होते हैं- आरोग्य और इन्द्रिय विजय'। इससे स्वास्थ्य और यश की प्राप्ति होती है। आत्महित चाहने वालों को सर्वदा सद्वृत्त अपनाना चाहिए। सद्वृत्त में प्रतिदिन करणीय विषयों की सूची चरक संहिता से दी जा रही है-

करणीय सद्वृत्त

१. **देव-गो ब्राह्मण-गुरु-वृद्ध-सिद्ध-आचार्यों की पूजा करें।**
२. **यज्ञ-हवन करें- अग्निमुपचरेत्** का एक अर्थ अग्नि चिकित्सा भी है।
३. **प्रशस्त ओषधियों को ग्रहण करें।**
४. **दोनों समय स्नान करें- द्वौ कालावुपस्पृशेत्।**
५. **दोनों समय मलविसर्जन का प्रयास करें।**
६. **दोनों पैरों को साफ सुथरा (विमल) रखें।**
७. **तीन पक्षों (डेढ़ माह या तीन माह) में बाल और नाखून कटवायें।** आवश्यकतानुसार पहले भी काट सकते हैं।
८. **प्रतिदिन धुला हुआ कपड़ा पहनें- नित्यमनुपहतवासाः।**
९. **पुष्प सुगन्धि (माला एवं पुष्पगन्ध) लगायें।**
१०. **शुभ; सुन्दर वेश रहें।**
११. **केश को प्रसाधित करें। (केश संवारें।)**
१२. **मूर्धा (सिर के ऊपर), कान, नाक, पैरों, में आयुर्वेदीय तैल डालें, लगायें।** इससे अंग मजबूत रहते हैं।
१३. **धूमपः (वाष्प लेने वाला) बनें।** इससे आँख, नाक; कान, कंठ ठीक रहता है। कफ, श्लेष्मा ठीक रहता है।
१४. **प्रथमसंभाषणशील बनें।** (संभाषण हेतु विनम्र प्रयास करें।)
१५. **सुन्दरमुख रहें।** मुखमण्डल को साफ सुथरा ओजपूर्ण रखें। धूप, शीत, वायु आघात से बचें।

१६. **दुर्गति में पड़े व्यक्ति का उद्धार करें।** इससे आत्म ओज की वृद्धि होती है। सात्विक भाव बढ़ने से आयु बढ़ती है।

१७. **होता (हवन करने वाला) बनें।** इससे शरीर, भूमि, भवन की शुद्धि होती है। अग्निहोत्र से सर्व सामर्थ्य और आयु बढ़ती है।

१८. **यष्टा (यज्ञ करने वाला) बनें।** इससे पर्यावरण, प्रकृति और परिवेष कल्याणकारी बनता है। धर्म, यश का विस्तार होता है।

१९. **दाता (दान देने वाला) बनें।** इससे धर्मलाभ और सामाजिक संतुलन ठीक रहता है। देने की प्रवृत्ति से यश लाभ और संतोष होता है।

२०. **ब्राह्मणों, वेदज्ञों के नमस्कर्त्ता (प्रणाम करने वाला) बनें।** इससे ऊर्जा सुरक्षित रहती है। प्राणतत्त्व बढ़ता है।

२१. **देवता, यज्ञ विषयक कार्य में सहयोग करने वाला बनें।** इससे पुण्य की वृद्धि होती है।

२२. **अतिथि पूजक बनें।** इससे आयु, विद्या, यश और बल बढ़ता है।

२३. **पितरों को पिण्ड दें (श्राद्ध करें)।** इससे आरोग्य और शुभ भाग्य बनता है। अदृष्ट बीमारियाँ दूर होती हैं।

२४. **ऋतुओं के अनुसार हित-मित-मधुर आहार विहार करें।** इससे ऋतुजन्य बीमारियाँ नहीं होती हैं। बाहरी आघात नहीं होता है।

२५. **इन्द्रियों को वश में रखें।** (वश्यात्मा बनें।) इससे पुण्य एवं दीर्घ आयु मिलती है। लोक में अपयश से बचाव होता है।

२६. **धर्मात्मा बनें।** धर्मतत्त्व का चिन्तन कर उस पर चलें। इससे आत्मबल बढ़ता है। भीतरी शक्ति का संवर्धन होता है।

२७. **हेतावीर्ष्यु बनें।** लोक में जिन गुणों के कारण विद्वान्, धनवान्, सामर्थ्यवान् होते हैं उन गुणों को धारण करने का प्रयत्न करें। सभी क्षेत्रों में उच्च गुण से युक्त होना स्वास्थ्य एवं संतृप्ति देता है।

२८. **धनवान्, गुणवान्, विद्वान्, शक्तिमान् आदि गुणयुक्त मनुष्यों से ईर्ष्या न रखें।** इनसे ईर्ष्या करने पर प्रत्यक्ष-परोक्ष क्षति होती है।

२९. **निश्चिन्त रहें।** इससे रोग नहीं होता है।

३०. **निर्भीक रहें।** इससे सत्ववृद्धि के कारण इन्द्रियाँ प्रबल रहती हैं।

३१. **ह्रीमान् बनें**- लज्जाशील बनें। इससे संयम का विकास होता है।

३२. **धीमान्**- बुद्धिमान् बनें। बुद्धि से समस्या और विपत्ति का समाधान होता है।

३३. **महोत्साह**- उत्साह से सदा परिपूर्ण रहें। इससे कार्यक्षमता बढ़ती है।

३४. **दक्ष**- कुशल बनें। इससे प्रशंसा, धन, यश और सफलता मिलती है।

३५. **क्षमावान् बनें।** इससे इन्द्रिय जय और सहनशक्ति बढ़ती है।
३६. **धार्मिक बनें।** इससे इहलोक परलोक शुभ होता है।
३७. **आस्तिक बनें।** ये सभी गुण मनुष्य को दीर्घायु प्रदान करते हैं।
३८. **विनयी-बुद्धिमान्-विद्वान्-अभिजन (श्रेष्ठजन)-वयोवृद्ध-सिद्ध पुरुष-आचार्यों के समुपासक बनें।** इससे तेजोवृद्धि होती है।
३९. **छत्री (छाता) दण्डी (डंडा) मौली (सिर ढकने का वस्त्र), पदत्राण (जूता-चप्पल) युक्त यात्रा करें।** इससे शरीर की सुरक्षा होती है।
४०. **मंगलाचारशील बनें।** शुभकर्मों, मंगलपदार्थों का सेवन करें।
४१. **श्मशानघाट-धोबीघाट-अस्थिभूमि, बलिकर्मभूमि, भस्मकपाल युक्त भूमि में न जायें न निवास करें।** ये सभी अशुभ स्थान होते हैं।
४२. **श्रम करने से पूर्व व्यायाम न करें।** अतिव्ययाम और अतिश्रम न करें। वस्तुत: आवश्यकता से अधिक श्रम नहीं करना चाहिए।
४३. **सभी प्राणियों के प्रति बन्धुभाव रखें।** इससे लोक में यश बढ़ता है।
४४. **क्रुद्धों के प्रति विनम्र रहें।** इससे अनावश्यक कलह नहीं होता है।
४५. **भयभीतों के आश्वासक रहें।** इससे जीवरक्षा का दायित्व रक्षित होता है।
४६. **दीन दु:खियों के रक्षक बनें।** इससे पुण्य, यश, धर्म बढ़ता है।
४७. **सत्यसंध बनें।** इससे जीवन में आदर्श आचार की रक्षा होती है।
४८. **शमप्रधान (शाँत, धैर्यवान्) बनें।** इससे अनुद्वेग और दीर्घायु की प्राप्ति होती है।
४९. **कठोर वचन सहने में सक्षम बनें।** इससे धैर्य एवं शाँतता बढ़ती है।
५०. **अंमर्षघ्न (सहिष्णु) बनें।** इससे जीवन सफल होता है।
५१. **शाँत-गुण दर्शी बनें।** इससे मस्तिष्क प्रबल एवं शुभ दिशा में सक्रिय रहता है। जीवन में बड़े कार्य हो पाते हैं।
५२. **राग-द्वेष भावों पर विजय प्राप्त करें।** इससे जीवन में भटकाव नहीं आता है। यहाँ तक करणीय का विवेचन किया गया है। अकरणीय कार्यों को न करने से क्या क्या शुभ होता है व्याख्या में दिया जा रहा है। सद्वृत्त बचाने हेतु क्या न करें इसका प्रतिपादन चरकसंहिता में निम्नवत् है-

अकरणीय कर्म

१. **झूठ न बोलें- नानृतं ब्रूयात्।** इससे व्यवस्था और विश्वास टूटता है।
२. **दूसरे का धन न ग्रहण करें अर्थात् बलात् न लें।** इससे शाप एवं आह से बचाव होता है। कलह, कलंक की स्थिति नहीं बनती है।
३. **पराई स्त्री की अभिलाषा न करें- नान्यस्त्रियमभिलषेत्।** इससे आयु नष्ट नहीं होती है। अपयश तथा कलह से बचाव होता है।
४. **दूसरे की श्री (लक्ष्मी) की अभिलाषा न करें- नान्यश्रियम्।** इससे अकीर्ति नहीं होती है। व्यक्ति चोर-डकैत नहीं बन पाता है।

५. **वैरपनकी (लड़ाकू) प्रवृत्ति न बनायें- न वैरं रोचयेत्।** इससे विनाश से बचाव होता है। जीवन का लक्ष्य नहीं नष्ट होता है।
६. **दूसरों के पापकर्म में भागी न बनें- न पापेऽपि पापीस्यात्।** इससे भावी उपद्रव से रक्षा होती है। अकारण द्वन्द्व से बचाव होता है।
७. **दूसरों के दोषों का सर्वत्र ख्यापन न करें- नान्यान् दोषान् ब्रूयात्।** इससे शत्रुता नहीं बढ़ती है। लोग विरुद्ध नहीं होते हैं।
८. **दूसरों के रहस्य को जानने की प्रवृत्ति न रखें- नान्यरहस्यमागमयेत्।** इससे अनेक बुराइयों से बचाव होता है। मन कषाय नहीं होता है।
९. **अधार्मिक के साथ न रहें।** इससे अधर्म, अपकर्म और अपवाद नहीं मिलता है। जीवन की दिशा गलत नहीं होती है।
१०. **राज्यद्रोहियों का साथ न करें- न नरेन्द्रद्विष्टैः सहासीत।** इससे राजदण्ड से बचाव होता है। कारागार और भय से मुक्ति मिलती है।
११. **उन्मत्तों के साथ न रहें।** इससे स्वयं पागल होने का भय नहीं रहता।
१२. **पतितों के साथ न रहें।** इससे अपकर्म एवं कलंक से रक्षा होती है।
१३. **भ्रूण हत्यारों के साथ न रहें- भ्रूणहन्तृभिर्न।** इससे सृष्टि संहार का पाप नहीं लगता। जीवन अपयश और संकट से बचता है।
१४. **क्षुद्रों और दुष्टों के साथ न रहें।** इससे व्यक्तित्व में गिरावट से बचाव होता है। अपना सम्मान और तेज बचा रहता है।
१५. **दुष्टयानों (ऊँट, घोड़ा, हाथी; खच्चर, महिष आदि बिगड़ैल एवं अज्ञात चरित्र वाहनों) पर न चढ़ें।** इससे दुर्घटना से बचाव होता है।
१६. **घुटने के बल पृथ्वी पर चलने का कठिन आसन न करें।** इससे घुटना क्षतिग्रस्त नहीं होता है और मध्य आयु में स्नायु-हड्डी रोग नहीं होता है।
१७. **अप्रयुक्त, असमान जगह न सोयें।** इससे शरीर की हड्डियाँ एवं अंगों पर दबाव नहीं बनता है। अचानक शरीर में दर्द, आघात नहीं होता है।
१८. **पर्वतों की विषम चोटियों पर न घूमें। न गिरिविषममस्तकेष्वनुचरेत्।** इससे मृत्युभय निवारण होता है। फिसलने से मौत का भय नहीं होता है।
१९. **वृक्षों पर न चढ़ें।** (इससे आमलकी आदि वृक्षों पर चढ़ने का निषेध नहीं है।) इससे ऊँचाई से गिर कर मरने का खतरा नहीं होता है।
२०. **उग्र जल प्रवाह में अवगाहन (तैराकी) न करें।** इससे बहने, डूबने से मृत्यु नहीं होती है। जीवन आकस्मिक मृत्युसंकट में नहीं फंसता है।
२१. **स्वयं उत्पन्न वृक्षों की छाया में न सोयें।** इनकी प्रकृति अज्ञात होती है।

२२. **विकराल अग्नि लपटों की ओर न जायें।** जलने से मृत्यु संकट नहीं आता है। अग्नि अपघात से, धुंआ से बचाव रहता है।

२३. **अट्टहास न करें- नोच्चैर्हसेत्।** इससे वातावरण क्षुब्ध नहीं होता है।

२४. **ध्वनिपूर्वक हवा न छोड़ें- 'न शब्दवन्तं मारुतं मुञ्चेत्'।** इससे लोक में अपयश नहीं होता और अकस्मात् मलमूत्र नहीं निकलता है।

२५. **मुख को ढंके बिना जृम्भा (जंभाई), क्षवथु (छींक), हास्य (अट्टहास) न करें।** मुख पर रुमाल या हाथ रख लें। इससे रोग का संक्रमण नहीं होता है। साथ ही शिष्टाचार का उल्लंघन भी नहीं होता है।

२६. **नाक से हमेशा गन्दगी न निकालते रहें- न नासिकां कुष्णीयात्।** इससे अशुद्धि नहीं होती है। नाक से खून नहीं निकलता है।

२७. **दातों को रगड़ते या कटकटाते न रहें।** यह अशुभ कृत्य है।

२८. **नाखूनों को न बजायें (पुड़कायें)।** इससे हड्डी दोष नहीं बढ़ता है।

२९. **हड्डी से हड्डी को न टकरायें।** इससे कालान्तर में हड्डी कमजोर नहीं होती है।

३०. **भूमि को उँगलियों, नाखूनों से न खोदें।** इससे रोग और चोट की संभावना नहीं होती है। त्वचा में संक्रमण नहीं होता है।

३१. **घास न तोड़ते रहें।** अनावश्यक कृत्य है। व्यक्तित्व में गिरावट से बचता है व्यक्ति। आत्मविश्वास में कमी नहीं आती है।

३२. **मिट्टी के ढेले (लोष्ट) को हमेशा फोड़ते न रहें।** इससे मस्तिष्क जनित विचलन से बचाव होता है। आत्मविश्वास कम नहीं होता है।

३३. **अंगों को टेढ़ा-मेढ़ा (विकृत) करने की चेष्टा न करते रहें।** इससे भविष्य में अंग विकृति नहीं होती है। गलत आदत नहीं लगती है।

३४. **तीव्रप्रकाशमान् पिण्ड, अनिष्टकारी पदार्थ, अपवित्र पदार्थ, अप्रशस्त पदार्थ (जुगुप्सित पदार्थ) को ध्यान पूर्वक न देखें।** इससे दृष्टिज और बाह्यज बीमारी से बचाव होता है।

३५. **शव को हुंकृति (आवाज, शब्द) न दें।** (शव यात्रा में सम्मिलित लोगों से कहकर रास्ता मांगने की प्रथा नहीं है। शव यात्रा को शब्द से बाधित करने पर शरीर का सोम तत्त्व नष्ट होता है- **यः शवं हुंकरोति तेन सोमो बहिर्निरस्तो भवति।**

३६. **देवालय, समाधि, स्मारक, मूर्ति आदि के ध्वज की छाया, गुरुजनों-पूज्यजनों की छाया को न लांघे।** इससे अपने शरीर का तेज नहीं घटता है।

३७. **रात्रि में मंदिर, पूजास्थल, समाधिस्थल, चौराहा, उपवन-वाटिका, श्मशान, वधस्थल पर न सोंये।** इससे अकस्मात् मृत्यु भय नहीं होता है।

३८. **शून्यशाला, खण्डहर, वर्षों बन्द पड़े ढ़हे खण्ड में अथवा जंगल में अकेले न प्रवेश करें।** इससे आकस्मिक जीवन भय नहीं उत्पन्न होता है।

३९. **पाप चरित्र वाले स्त्री-मित्र-नौकरों के साथ न रहें।** इससे भविष्य रक्षित रहता है। गन्दे लोग कहीं फंसा नहीं पाते हैं।

४०. **उत्तमजनों का विरोध न करें।** इससे धन, यश, आयु का बचाव होता है।

४१. **अश्रेष्ठों को सम्मान न दें।** इससे अनुचित जनों की वृद्धि नहीं होती है।

४२. **कुटिल, कुपथगामी जनों को पसंद न करें।** इससे स्वयं का बचाव होता है।

४३. **अनार्य को आश्रय न दें।** इससे अनावश्यक भय उत्पन्न नहीं होता है।

४४. **भय उत्पन्न न करें।** इससे सामाजिक क्षोभ नहीं उत्पन्न होता है।

४५. **अति साहस, अति निद्रा, अति जागरण, अति स्नान एवं मदिरापान न करें।** अति किसी भी वस्तु, कर्म या आचार की ठीक नहीं होती है।

४६. **बहुत देर तक डंडे की तरह न खड़े रहें। उंकडू न बैठें।** इससे रीढ़ की हड्डी तथा गर्दन में रोग, कष्ट नहीं होता है।

४७. **सर्पों का पीछा न करें।** इससे सर्पों द्वारा डसे जाने का भय नहीं होता है।

४८. **विषैले एवं दाँत से आघात करने वाले जानवरों के पीछे न जायें।** इससे उनके आक्रमण से जीवन भय नहीं होता है।

४९. **सम्मुख आँधी, तीव्र धूप, तेज झंझावात को न सहें।** तीव्र आँधी और धूप को पीठ पर सहना चाहिए। आँधी में लेट जाना चाहिए अन्यथा कई बार उड़ने या गिरने से मृत्यु हो जाती है।

५०. **झगड़े की शुरुआत न करें।** इससे जीवन गलत दिशा में नहीं मुड़ता है।

५१. **अग्नि में उच्छिष्ट (जूठा) न डालें। आग को छुपा कर या अपने नीचे लेकर न तापें। बुझी हुई आग से उपासना न करें।**

५२. **पसीना से युक्त, भीगे हुये, नग्न व्यक्ति को न छुयें।** इससे उनका रोग दूसरे के शरीर में प्रवेश नहीं करता है।

५३. **स्नान किये हुए कपड़े से मुख न पोछें।** इससे संक्रामक रोग नहीं होते हैं।

५४. **बाल न नोचें।** इससे घाव एवं कष्ट नहीं होता है।

५५. **पहले से पहने हुए वस्त्र को स्नान के पश्चात् न पहनें।** स्नान के बाद हमेशा धुला हुआ कपड़ा पहनना चाहिए। इससे शरीर अशुद्ध नहीं होता है।

५६. **रत्न, हवनीय (आज्य), मंगलद्रव्य, मालायें आदि को जान समझ कर ही बाहर करें।** इन वस्तुओं को सुरक्षित रखते हैं।

५७. **अपने से बड़े, श्रेष्ठ, पूजनीय, मंगलमय के वाम भाग की ओर से तथा छोटों, अपूज्यों, सामान्य व्यक्तियों के दक्षिण भाग की ओर से गमन करें।** इससे परिक्रमा सिद्धान्त की रक्षा होती है।

५८. **बिना रत्न के न रहें। बिना स्नान किये न रहें। जीर्ण-शीर्ण फटा कपड़ा न पहनें- नारत्नपाणिर्नास्नातो नोपहतवासा।** इससे स्वास्थ्य, आयु ठीक रहती है। मन प्रसन्न और तेज युक्त रहता है।

५९. **बिना जप किये, बिना हवन किये, देवता; पितरों का दर्शन किये बिना न रहें।** इससे पुण्य, धर्म आयु की प्राप्ति होती है।

६०. **श्रेष्ठ जनों को, अतिथि को, आश्रित को दान दिये बिना न रहें।**

६१. **बिना सुगन्धि, बिना माला धारण किये, बिना हाथ-पैर-मुख धोये, अशुद्ध मुख; ऊपर मुख उठाकर न रहें।** इससे अशुद्धि और रोग से बचाव होता है। सुगंधि से आयु बढ़ती है।

६२. **अन्यमनस्क (उदासीन) अभक्त-अशिष्ट- अपवित्र; भूखे परिचर के साथ न रहें।** इससे हानि और अपमान नहीं होता है।

६३. **प्रतिकूल अन्न न दें।** इससे दूसरे को बीमारी नहीं होती है।

६४. **बासी (पर्युषित) न खायें।** इससे संक्रमण नहीं होता है।

६५. **बाहर निःशेष भोजी न बनें अर्थात् परोसा हुआ पूरा का पूरा न खा जायें।** इससे स्वास्थ्य की रक्षा रहती है।

६६. **रात्रि में दही न खायें- 'न नक्तं दधि भुञ्जीत्'। रात्रि में सक्तू (सत्तु) न खायें।** दधि से कब्ज, कफ, अधिक मूत्र तथा सक्तू से वायु विकार, अजीर्ण की वृद्धि होती है। सक्तू खाने से अधिक प्यास लगती है।

६७. **ब्राह्मणों से लेकर उनका अंश न खायें।** इससे पाप-शाप से भय नहीं होता है।

६८. **टेढ़ा होकर न छींकें, न सोयें।** इससे अपघात नहीं होता है।

६९. **अति शीघ्री हो कर काम न करें।** अतिशीघ्री व्यक्ति हमेशा दुर्घटना में फंसता है। इससे जीवन का बचाव होता है।

७०. **वायु-अग्नि-जल-सोम (चन्द्र)-सूर्य-ब्राह्मण-गुरु के सम्मुख होकर थूक, अपान वायु, पेशाब, मल (विष्ठा), वीर्य को न छोड़ें।** ऐसा करने वाला शाप और पाप का भागी बनता है।

७१. **मध्य रास्ते में पेशाब न करें- न पन्थानमवमूत्रयेत्।** इससे तेज नष्ट नहीं होता है, न तो मर्यादा नष्ट होती है।

७२. **जप-होम-अध्ययन-बलिकर्म-मंगलकर्म के बीच श्लेष्मा (नाक से निकलने वाला कफ) और सिंघाणक (नाक की मैल) न निकालें।** इससे अशुद्धि और अपवित्रता नहीं होती है।

७३. **स्त्रियों का निरादर न करें। न तो अत्यधिक प्रश्रय दें। न अत्यधिक गुप्त बात करें न सर्वत्र प्रतिनिधिरूप में अधिकृत करें। बीमार,**

रजस्वला, अपवित्र, रोगग्रस्त, अन्य में अनुरक्त, विमुख स्त्री से सम्बन्ध न करें। ऐसा करने से बीमारी, आयुहानि, लोकनिंदा से बचाव होता है।

७४. **अत्यधिक समय न नष्ट करें।** किसी भी कार्य को अत्यन्त मन्द गति से न करें। इससे जीवन में शिथिलता नहीं आती है।

७५. **नियमों को न तोड़ें।** इससे जीवन में निर्भयता बनी रहती है।

७६. **रात में, विजन (सूने साने जन विहीन स्थान) में न घूमें।** इससे जीवन को खतरा नहीं होता है।

७७. **सायंकाल में स्त्री एवं निद्रा सेवी न बनें।** इससे मस्तिष्क कमजोर नहीं होता है। आयु नहीं घटती है।

७८. **बालक, वृद्ध, लोलुप, मूर्ख, कठोर (रोगी) नपुंसकों से मित्रता न करें।** इससे जीवन स्तर में गिरावट नहीं आती है।

७९. **मदिरा (शराब), जुआ, वेश्या में अभिरुचि न रखें।** इससे रोग, अपयश से बचाव होता है।

८०. **गुप्त बातें न बतलायें। किसी का भी निरादर न करें। अहंकारी न बनें। अकुशल, अव्यवहारिक, ईर्ष्यालु न बनें।** अपना रहस्य गोपनीय न रखने वाला संसार में निन्दित होता है। अत: संयत रहें।

८१. **ब्राह्मणों (श्रेष्ठों) का अपमान न करें। गायों को दण्डित न करें। वृद्ध, गुरु, प्रमुख एवं राजसत्ता सम्पन्न व्यक्ति पर आक्षेप न करें।** इससे शाप, ताप, दण्ड, भय और विनाश प्राप्त नहीं होता है।

८२. **अत्यधिक न बोलें- नचातिब्रूयात्।** इससे झूठ-निंदा से बचाव होता है।

८३. **बन्धु बान्धव प्रेमियों के रहस्य का बहिष्कार (भंड़ाफोड़) न करें।** इससे भविष्य में बैर और कलंक नहीं उत्पन्न होता है।

८४. **अधीर न बनें। अति उच्चाभिलाषी न बनें। अविश्वस्त भृत्य (नौकर) न रखें। स्वजनों पर अविश्वास न करें। सभी पर विश्वास न करें- न सर्वविश्रम्भी। सभी पर संदेह न करें- न सर्वाभिशङ्की। हमेशा विचार मग्न न रहें- न सर्वकालविचारी।** इन विरोधी बातों से स्पष्ट है कि विचारपूर्वक सत्य जानकर काम करें। परिस्थितियों को ठीक से समझ कर ही निर्णय लें।

८५. **कार्यकाल (कार्य समय सीमा) का उल्लंघन न करें। अपरिचित में अभिनिवेश (मोह) न रखें। इन्द्रियों के वशीभूत न हों। चंचल मन को बहुत भ्रमित न करें। बुद्धि, इन्द्रियों पर अतिभार न दें। अतिदीर्घसूत्री न बनें। क्रोध और हर्ष को न जतलायें। हमेशा शोक**

मग्न न रहें। सिद्धि (सफलता) में अतिगर्व और असिद्धि में दीनता प्रकट न करें। ये सारे लक्षण संसार के सफल व्यक्तियों में मिलते हैं। इन वर्जनाओं से जीवन में परिष्कार होता है।

८६. **'प्रकृतिमभीक्ष्णं स्मरेत्' अर्थात् उत्पत्ति के कारण को हमेशा स्मरण करें।** राग-द्वेष-काम-क्रोध-मद-लोभ से अभिभूत न हों। इससे मन मोह ग्रस्त होने से बचता है।

८७. **हेतु प्रभाव निश्चित है अर्थात् शुभ कर्म का शुभ प्रभाव और अशुभ कर्म का अशुभ प्रभाव होता है।** अत: शुभ कर्म करें। पाप से अशुभ और पुण्य से शुभ की प्राप्ति होती है यह ध्रुवसत्य है।

८८. **पराक्रम का त्याग न करें- न वीर्यं जह्यात्।** इससे सफलता मिलती है।

८९. **अपवाद (कलंक) का हमेशा स्मरण न करें- नापवादमनुस्मरेत्।** इससे उत्साह का ह्रास नहीं होता है। लोक में विश्वास नहीं घटता है।

९०. **अपवित्र अवस्था में गोघृत, अक्षत, तिल, कुश, सरसों आदि से अग्नि में हवन न करें।** इससे अनिष्ट नहीं होता है।

९१. **ब्रह्मचर्य-ज्ञान-दान-मैत्री-करुणा-हर्ष-उपेक्षा-प्रशम (रोगशान्ति) परक आचरण होना चाहिए।** इससे दीर्घायु, पुण्य, यश, बन्धुत्व, स्नेह आदि की प्राप्ति होती है।

इन्द्रियों को कैसे संयमित रखें? असंयमित इन्द्रियाँ कितने प्रकार का रोग देती हैं? आदि विषयों पर चरक संहिता में आयुर्वेद की दृष्टि से विचार किया गया है। महर्षि चरक ने स्वस्थवृत्त और सद्वृत्त को एकीकृत करके प्रस्तुत किया है। आत्मनियन्त्रण और दिनचर्या के संयमित आचरण से मनुष्य रोग रहित होकर सौ वर्षों तक सबलेन्द्रिय जीवित रहता है-

स्वस्थवृत्तं यथोद्दिष्टं यः सम्यगनुतिष्ठति।
स समाः शतव्याधिरायुषा न वियुज्यते।।

चरकसंहिता, ८/३१।।

महर्षि चरक द्वारा वर्णित सद्वृत्त को जो सम्यक् प्रकार से आचरण में उतारता है वह सौ वर्षों तक रोग रहित रहकर सुखपूर्वक जीवित रहता है। वह आयुहीन नहीं होता है।

महर्षि चरक ने आत्मा, मन, बुद्धि, प्राण, बल, वीर्य, शरीर, हृदय, मस्तिष्क, दृश्यभाग एवं अदृश्यभाग को स्वस्थ रखने का उपाय बतलाया है। आरम्भ में ही उन्होंने आयु के तीन प्रमुख स्तम्भों को स्वीकार किया है- शरीर, मन,

सत्त्व (आत्मा)। इन तीनों स्तम्भों को ठीक रखने पर ही स्वास्थ्य उत्तम बना रहता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान पद्धति में सत्त्व (आत्मा) के उपचार की प्रक्रिया वर्णित नहीं है।

विश्वविख्यात श्रेष्ठतम दैवीगुणों से युक्त वैद्यराट् द्वारा बतलाया गया है कि स्वास्थ्य के द्वारा यश, धर्म, अर्थ, बन्धुता, पुण्यकर्म की प्राप्ति हो सकती है। यदि चिकित्सक यह सोचे कि दूसरे के जीवन में घुसकर उसके व्यक्तिगत संदर्भों में पूछताछ करना ठीक नहीं है, तो वह उस रोगी को पूर्णतः कथमपि ठीक नहीं कर सकता। स्वास्थ्य के लिए केवल भोजन, पानी, आहार आदि ही आवश्यक नहीं हैं; बल्कि धर्म पूर्वक जीवनचर्या और मनःतुष्टि भी आवश्यक है। औषध, शल्यक्रिया, व्यायाम आदि से दृश्य रोगों पर, प्रत्यक्ष कारणों पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है पर अदृश्य चेतन तत्त्व, मनोभावों, दुश्चिन्ताओं, पाप और शाप से उत्पन्न रोगों पर नियंत्रण पाना असंभव है। अत्यन्त प्रभावशाली दवा भी एक स्थिति के बाद रोगी पर काम करना बंद कर देती है। कई एक बार चिकित्साविज्ञान के सिद्धान्त विशेष रोगी पर काम नहीं करते। इन सभी कारणों का निवारण सद्वृत्त ही करता है। सद्वृत्त और स्वास्थ्यवृत्त एक साथ चलते हैं तो दीर्घायु, अमितायु की प्राप्ति होती है अन्यथा मध्य में ही शरीर का विनिपात (मृत्यु) हो जाता है। अतः जीवन पर्यन्त स्वस्थ रहने के लिए स्वस्थवृत्त एवं सद्वृत्त का आचरण करना चाहिए-

नृलोकमापूरयते यशसा साधुसंमतः।
धर्मार्थाविति भूतानां बन्धुतामुपगच्छति।।

चरकसंहिता, ९/३२।।

परान् सुकृतिनो लोकान् पुण्यकर्मा प्रपद्यते।
तस्माद् वृत्तमनुष्ठेयमिदं सर्वेण सर्वदा।।

चरकसंहिता, ९/३३।।

यहाँ चरक संहिता में जो कुछ नहीं कहा गया है अर्थात् अकथित है उसे भी अन्य स्थान से ग्रहण करना चाहिए, जैसे- अचानक बाल न छिलवायें, गायों को न मारें आदि। वस्तुतः चरक ने 'अन्यदपि' कहकर वेद एवं स्मृतियों में कहे सद्वृत्त को इंगित किया है।

●

विद्यार्थी की दिनचर्या

- ब्राह्ममुहूर्त्त में उठ कर स्नान-संध्या-वन्दन-गायत्री जप करके तप से परिपूर्ण जीवनचर्या का शुभारम्भ करें। सरस्वती और गणेश देवता को प्रणाम करें।
- योगासन और व्यायाम 'हितकारी' मात्रा में करें। शरीर सुंदर, रोग रहित रहेगा।
- **'सत्यं वद'**- सत्य बोलें। इससे जीवन में लोगों का विश्वास प्राप्त होगा।
- **'धर्मं चर'**- धर्म का आचरण करें। इससे आन्तरिक ऊर्जा बढ़ेगी।
- **'स्वाध्यायान्मा प्रमदः'**- स्वाध्याय से प्रमाद न करें। इससे ज्ञान बढ़ेगा।
- **आचार्याय प्रियं धनम् आहर**- गुरु के लिए दक्षिणा (धन) अवश्य दें।
- **प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः**- संतान परंपरा का उच्छेद न करें। विवाह करें।
- **सत्यान् न प्रमदितव्यम्**- सत्य से नहीं डिगना चाहिए। इससे धर्म दृढ़ होगा।
- **धर्मान् न प्रमदितव्यम्**- धर्म से नहीं डिगना चाहिए। इससे तप बढ़ेगा।
- **कुशलान्न प्रमदितव्यम्**- शुभ कार्यों से न चूकें। इससे धर्म बढ़ेगा।
- **भूत्यै न प्रमदितव्यम्**- उन्नति में प्रमाद न करें। इससे लोक में प्रतिष्ठा बढ़ेगी।
- **स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्**- वेद पढ़ने-पढ़ाने में प्रमाद न करें।
- **देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्**- देवकार्य, पितृकार्य में प्रमाद न करें।
- **मातृ देवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव**- माता, पिता, आचार्य (गुरु), अतिथि को देवता समझें।
- **अनवद्यानि कर्माणि सेवितव्यानि**- निर्दोष कर्मों का सेवन करें।
- **अस्माकं सुचरितानि त्वयोपास्यानि**- गुरुजनों के शुभ आचरणों को जीवन में उतारें। इसी से गुरु परंपरा जीवित रहती है।
- **श्रेयांसो ब्राह्मणाः आसनेन प्रश्वसितव्यम्**- श्रेष्ठ गुरुजन; विप्रजन को आसन एवं विश्राम देना चाहिए। इससे तेज बढ़ता है। आशीर्वाद मिलता है।
- **श्रद्धया देयम्**- श्रद्धा पूर्वक दान देना चाहिए।
- **अश्रद्धया अदेयम्**- अश्रद्धापूर्वक दान नहीं देना चाहिए।
- **श्रिया देयम्**- आर्थिक स्थिति के अनुसार दान दें। कर्ज लेकर दान न दें।

- **ह्रिया देयम्-** लज्जा से भी दान देना चाहिए।
- **भिया देयम्-** भय (धर्मभय) से दान देना चाहिए।
- **संविदा देयम्-** विवेकपूर्वक दान दें।
- **अलूक्षा धर्मकामा स्युः-** स्निग्ध स्वभाव से धर्माभिलाषी रहें।
- **अन्नं ब्रह्मोपासते-** अन्न ब्रह्म की उपासना करें।
- **अन्नं न परिचक्षीत-** अन्न की अवहेलना न करें।
- **नोदाहरति मर्माणि-** मर्म वेधने वाला वाक्य न बोलें।
- **पुण्यकर्माणि सेवते-** पुण्य कर्म का सेवन करें।
- **पापाद् विभेति सततम्-** पाप से निरंतर भय करना चाहिए।
- **न च भोगमपेक्षते-** भोग कर्म में लिप्सा न रखें।

स्नेहप्रणयगर्भाणि पेशलान्युचितानि च।
देशकालोपपन्नानि वचनान्यभिभाषते।।

स्नेह पूर्ण, कोमल, उचित, देश-काल-परिस्थिति से परिपुष्ट युक्ति युक्त वाक्यों को ही बोलना चाहिए।

- **सज्जनानुपसेवते-** सज्जनों की सेवा करें। उनके साहचर्य में रहें।
- **नित्यं शास्त्राण्यवेक्षते-** प्रतिदिन शास्त्रों (ग्रन्थों) को पढ़ें।
- शरीर, मन, वाणी, बुद्धि, इन्द्रियों को एकाग्र करके गुरु मुख की ओर देखते हुए विद्या को आत्मसात् करना चाहिए-

शरीरं चैव वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च।
नियम्य प्राञ्जलिस्तिष्ठेद् वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्।।

- गुरु के उठने से पहले उठें, सोने के बाद सोयें-

उत्तिष्ठेत् प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत्।

- विद्यार्थी गुरु के आसन पर न बैठे, उनके खड़े होने पर खड़ा हो जाए, दौड़ने पर दौड़े, गुरु की ओर पीठ न करे, गुरु की नकल न उतारे, गुरु की निन्दा न करे। गुरु का अनादर न करे।
- सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देशभक्ति और आत्म त्याग के द्वारा विद्यार्थी को हमेशा सम्मान प्राप्त करना चाहिए-

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्याऽऽत्मत्यागेन सम्मानार्हो सदा भव।।

●

अध्याय-१७

जीवन संविधान

जीवन का गणित

- एक स्वस्थ्य मनुष्य दिन रात (चौबीस घण्टे) में २१६०० बार श्वास लेता है।
- एक वृत्त में ३६० अंश होते हैं। इसमें कुल २१६०० कलायें होती हैं।
- 'सूर्यसिद्धान्त' प्राचीनतम गणित ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में पृथ्वी की परिधि २१६०० कलाओं की मानी गयी है। इसमें व्यास ६८७६ से भाग देने पर π का मान निकल आता है-

  २१६०० ÷ ६८७६ = ३.१४१३६
- पृथ्वी की चक्रकला ३६०° × ६० = २१६०० तुल्य ही स्वस्थ व्यक्ति एक दिन में श्वास लेता है। यह प्राकृतिक सिद्धान्त है।
- एक स्वस्थ व्यक्ति १ मिनट में १५ श्वास लेता है। एक घंटा में १५ × ६० मिनट = ९०० बार श्वास लेता है। चौबीस घण्टे में ९०० × २४ घण्टा = २१६०० बार श्वास लेता है।
- 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' के अनुसार पृथ्वी माता है और उसके गर्भ में पल रही उसकी मानवी संतति २१६०० बार श्वास लेती है।
- इस तथ्य का प्रतिपादन योगशास्त्र, उपनिषद् और प्राचीनतम वैदिक पद्धतियों में किया गया है।
- २१६०० × २ × १०० = ४३२०००० होता है। इसमें २१६०० श्वास में ब्रह्मा की दिनरात्रि मानव की दो ईकाई से गुणा किया गया है। (ब्रह्मा का १·२ घण्टा एक 'कल्प' कहलाता है। इसके बीतने से पृथ्वी पर महाप्रलय होता है। अत: ब्रह्मा की दिन-रात्रि मानव के लिए दो ईकाई है। १ कल्प = ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष होता है।) सौ वर्ष की वैदिक आयु (शतायुर्वै पुरुषः सः) से गुणा करने पर तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष होता है। चतुर्युग प्रमाण भी ४३ लाख २० हजार वर्ष ही होता है। अत: मनुष्य का जीवन पृथ्वी और सूर्य लोक दोनों से जुड़ा हुआ है।

- पृथ्वी का सम्बन्ध सूर्यलोक से जुड़ा है और सूर्यलोक का सम्बन्ध पारमेष्ठ्य लोक से जुड़ा हुआ है। अत: मनुष्य प्रजाति का सम्बन्ध पृथ्वी के साथ-साथ सूर्यलोक और परमेष्ठि लोक से जुड़ा हुआ है। मनुष्य ब्रह्माण्ड का एक महत्त्वपूर्ण चेतन अंश है। ब्रह्माण्ड के नियमों से संचालित होता है।
- स्वस्थ मनुष्य १ मिनट में १५ श्वास लेता है। जो प्राणायाम नहीं करता है और गोमांस का भक्षण करता है वह १ मिन्ट में १८ या १९ श्वास लेता है।
- मृत्यु के सन्निकट पहुँचकर मनुष्य प्रायश: ३० से अधिक बार श्वास लेने लगता है और अचानक उसकी श्वासें थम जाती हैं।
- योगी व्यक्ति १ मिनट में १५ से कम श्वास लेता है। सिद्ध व्यक्ति १ मिनट में १ बार या इससे भी कम श्वास लेता है। वह दीर्घायु और अमितायु होता है। आधुनिक विज्ञान भी मानता है कि नैनो प्रौद्योगिकी के माध्यम से मनुष्य ८०० वर्षों से ज्यादा जीवित रह सकता है।
- प्रत्येक दीर्घायु कामना वाले व्यक्ति को प्रात:सायं काल दो बार प्राणायाम अवश्य करना चाहिए।
- एक आसन पर बैठ कर न्यूनतम तीन बार से लेकर सोलह बार प्राणायाम करना चाहिए। इससे शतायु या अधिक आयु की प्राप्ति होती है।
- प्राणायाम का अर्थ है प्राण का आयाम अर्थात् जीवन का विस्तार। स्वस्थ, हल्का और तेजस्वी रहने के लिए प्राणायाम एकमात्र साधन है। श्वास पर नियन्त्रण से ही दीर्घ और इच्छित आयु मिलती है।
- प्राणायाम को योगाभ्यास भी कहते हैं। इसी के माध्यम से समाधि में प्रवेश होता है। प्राणायाम से सात्विक वृत्तियों का संवर्धन होता है और तामसिक, राजसिक वृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं।
- प्राणायाम के माध्यम से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश को नियंत्रित करके जीवन में सब कुछ प्राप्त किया जाता है। सूर्य की किरणों को शरीर में सीमित करके जरावस्था (वृद्धावस्था) को ऋषियों ने रोक दिया था।

निष्कर्षत: मनुष्य का जीवन प्रकृति के यान्त्रिक नियमों, उपकरणों, पंचमहाभूतों तथा सूर्यादि की किरणों से संचालित होता है। जीवन का प्रत्येक क्षण उतना ही अनुशासित और गणित सिद्ध है जितना ब्रह्माण्ड में सभी पिण्डों का अस्तित्व अनुशासित और गणितबद्ध है।

समय का विभाजन

- बारह घण्टे का दिन और बारह घण्टे की रात्रि होती है। जाड़े में दिन छोटा और रात्रि बड़ी होती है। गर्मी में दिन बड़ा और रात्रि छोटी होती है। बढ़ने घटने का क्रम उत्तरायण-दक्षिणायन में चलता रहता है।
- प्रकृति के प्रभाव को शरीर और वातावरण पर देखते हुए दिनचर्या के लिए समय का उपयोग आगे पीछे किया जाता है।
- प्राचीन भारत में दिनचर्या के प्रयोग हेतु आठ याम में दिन-रात्रि का विभाजन किया गया था। एक याम तीन घण्टों का होता है।
- धर्म और योग की दृष्टि से दिन का शुभारम्भ उषःकाल से होता है। इस व्यवस्था को आयुर्वेद और ज्योतिष भी स्वीकार करता है।
- उषःकाल एक याम (तीन घण्टे) का होता है। यह सूर्योदय के तीन घण्टा पूर्व शुरु होता है; पर सूर्योदय के दो घटी (४८ मिनट) पूर्व तक चरम महत्त्वपूर्ण होता है- **'रात्रेस्तु पश्चिमो यामो मुहूर्त्तो ब्राह्मसंज्ञकः।'**

  रात्रि का पश्चिम (अंतिम) याम ब्राह्ममुहूर्त्त संज्ञक होता है। एक मुहूर्त्त दो घटी का होता है। एक घटी २४ मिनट की होती है।
- सूर्योदय से एक याम (तीन घण्टा) बाद का काल प्रातः काल कहलाता है। इसमें हवन, तर्पण, पंचमहायज्ञ आदि किया जाता है। यह प्रायशः दिन के नौ बजे तक फैला रहता है। इसमें योगाभ्यास करते हैं।
- सूर्योदय के बाद का द्वितीय याम प्रायशः नौ बजे से मध्याह्न तक का होता है। इसे संगवकाल कहते हैं। इसमें अतिथि सत्कार करते हैं तथा वस्त्र, उत्तरीय धारण कर, तिलक धारण कर, केश प्रशाधन कर, यान (वाहन) परीक्षा पूर्वक मध्याह्नकालिक जीविका व्यवहार हेतु सन्नद्ध होते हैं।
- मध्याह्न से आगे का दो याम (छः घण्टा) लोक व्यवहार में समय बीताने के लिए होता है। इसमें समस्त शक्ति के साथ जीविका, लोकव्यवहार, परिश्रम, सम्पर्क, सम्बन्ध, धनार्जन आदि को प्रबलता दी जाती है।
- गोधूलि काल सूर्यास्त के बाद दो घटी (४८ मिनट) का होता है। इसमें भोजन, पठन-पाठन, यात्रा, शयन, संभोग, वेदाभ्यास वर्जित होता है। इसमें संयत व्यवहार करने से, ध्यान करने से, सूर्य की पूजा करने से, चिंतन-मनन करने से जीवन सुखी रहता है।

- गोधूलि काल समाप्ति से लेकर रात्रि के प्रथम तीन घण्टे के अन्दर चिंतन, वार्ता, अध्ययन, विचार, कार्य संचालन, अगले दिन की योजना करने के बाद हाथ पैर धोकर भोजन किया जाता है। इस काल में एक घण्टे का समय प्रायशः आगे पीछे होता रहता है। रात्रि ९ बजे से लेकर रात्रि १० बजे तक रात्रि का प्रथम याम फैला रहता है।

- दो याम (छः घण्टे) का शयन काल होता है। यह प्रायशः ९ बजे, १० बजे से आरम्भ होता है। प्रायशः ३ से ४ बजे रात्रि तक में शयन पूरा कर लेने वाला व्यक्ति योगी होता है। वह दीर्घायु और जितेन्द्रिय होता है।

इस तरह चौबीस घण्टे का समय ऋषिगण सुव्यवस्थित ढंग से व्यतीत करने को कहते हैं। संक्षिप्त दृष्टि से इस काल को इस प्रकार व्यवस्थित करते हैं-

- ब्राह्ममुहूर्त + प्रातःकाल = प्रायशः ३, ४, बजे रात्रि से ६, ७ बजे प्रातः तक
- प्रातःकाल + संगव काल = प्रायशः ६, ७ बजे से ९, १० बजे दिन तक
- संगवकाल + पूर्वाह्न काल = प्रायशः ९, १० बजे से १२ बजे तक
- मध्याह्नकाल + अपराह्नकाल = प्रायशः १२ बजे से ३ बजे तक
- अपराह्नकाल + सायाह्नकाल = प्रायशः ३ बजे से ६, ७ बजे तक
- पूर्वरात्रि काल = प्रायशः ६, ७ रात्रि से ९, १० बजे तक
- शयन काल (दो याम, ६ घंटा) = ९, १० रात्रि से ३, ४ बजे भोर तक

भारत वर्ष में ग्रीष्मकाल तथा शीतकाल में प्रातः एवं सायंकाल का समय व्यावहारिक जगत् में प्रायशः एक घण्टा बढ़ जाता है या एक घण्टा घट जाता है। अंधेरा और प्रकाश का फैलाव प्रातःसायं काल को व्यावहारिक जगत् में थोड़ा-सा अन्तरित कर देता है। इसे दिनचर्या में व्यक्ति ठीक ढ़ंग से आगे-पीछे कर कार्य व्यवहार में परिणत कर लेता है। प्रातः आराधना एवं योग साधना का समय सूर्योदय से प्रभावित होता है। अतः ऋतुपरिवर्तन के साथ समय का व्यावहारिक सन्तुलन आवश्यक होता है। इसी तरह सायंकाल में भी आराधना एवं जीवन व्यवहार का समय व्यवहारिक रूप से सन्तुलित किया जाता है। प्रातः सन्धि एवं सायं सन्धि में यह सन्तुलन सम्पूर्ण विश्व में देश-काल-परिस्थिति के अनुसार करना होता है। ऋतु का प्रभाव न केवल मनुष्य जीवन पर पड़ता है, बल्कि पशु-पक्षियों के नियम एवं व्यवहार में भी इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। जीवन में इस प्रभाव को सभी प्राणि सन्तुलित करते हैं।

जीवन के सोलह चक्र

सनातन धर्म में राजाओं के लिए जीवन शुद्धि के षोडश (सोलह) चक्र सुस्थिर किये गये हैं। इन सोलह चक्रों का दर्शन रघुकुल या सूर्यवंश में देखने को मिलता था। ये चक्र निम्नलिखित हैं-

१. आजन्म शुद्धि
२. आफलोदयकर्म
३. राज्यत्व
४. आकाशचारित्व, सर्वत्र गति
५. अग्निहोत्र, यज्ञ
६. अतिथित्व, दान
७. दण्ड कार्य
८. यथाकाल कार्य
९. त्याग
१०. मधुर सत्य
११. यश, विजय
१२. प्रजारक्षण
१३. विद्याभ्यास
१४. श्रेष्ठ कामोपभोग
१५. मुनित्व, वानप्रस्थत्व
१६. योग द्वारा मृत्यु वरण

प्राचीन भारत के राजकुलों में ये सोलह गुण सोलह संस्कार की तरह संपृक्त होते थे। भारतवर्ष में आजन्मशुद्धि की महत्ता और श्रेष्ठता आज भी बनी हुई है। माता-पिता का ज्ञात चरित्र और उनकी आत्मशुद्धि, उनके धर्मानुमोदित काम के द्वारा श्रेष्ठ गर्भाधान करने से उत्पन्न संतान की जन्म शुद्धता बनी रहती है। रज-वीर्य की शुद्धि, गर्भाधान संस्कार, पुंसवन-सीमन्तोन्नयन संस्कार से संतान की जन्म शुद्धता प्रतिपादित होती है।

कार्य को आरम्भ करके पूर्णता देना, राज्य का विस्तार और पालन, स्वर्ग-अन्तरिक्ष में गमन, शास्त्रोक्त विधि से यज्ञ-हवन करना जीवन के आवश्यक चक्र हैं। अतिथि सत्कार करना और दान देना, दुष्टों को अपराध के अनुकूल दण्ड देना, सत्य बोलना पर प्रिय, मधुर सत्य बोलना, यश के लिए विजय प्राप्त करना, संतानोत्पत्ति हेतु विवाह करना (भोग हेतु नहीं), ब्रह्मचर्यावस्था में विद्याभ्यास, शस्त्राभ्यास करना, युवावस्था में काम (Sex) का उपभोग करना, इक्यावनवें वर्ष में वानप्रस्थ लेना तथा योग द्वारा मृत्यु को प्राप्त करना ये भारतीय तपस्वी राजाओं के सोलह गुण होते थे। ये सभी गुण सूर्यवंशी-रघुवंशी राजाओं में थे। अन्यत्र ये गुण सुदुर्लभ थे, देखे नहीं गये। यह भारतीय जीवन संस्कृति की मर्यादा है जो राजाओं के जीवन में भी देखने को मिलती थी।

लोकयात्रा

मनुष्य इस पृथ्वी पर मातृगर्भ में आते ही अपनी लोकयात्रा आरम्भ कर देता है। उसकी यात्रा की एक आवृत्ति मृत्यु के पश्चात् समाप्त होती है। यात्रा करने में जितनी सतर्कता होनी चाहिए उतनी ही सतर्कता मनुष्य को अपनी लोकयात्रा में रखनी चाहिए। इस लोकयात्रा में मनुष्य को क्या करना चाहिए? यह प्रश्न प्राचीनकाल से उठता रहा है-

किं कर्त्तव्यं मनुष्येण लोकयात्राहितार्थिना।
कथं वै लोकयात्रां तु किं शीलश्च समाचरेत्।।

महाभारतदानपर्व, १३/१।।

मनुष्य का हित और उसका शील इस यात्रा में विवेचनीय होता है। मनुष्य शरीर, मन, वाणी के द्वारा अपनी क्रियाओं को संचालित करता है। अत: इन तीनों का प्रभाव लोकयात्रा पर पड़ता है। इन तीनों को यदि निष्पाप बना कर रखा जाए तो मनुष्य की यह लोकयात्रा श्रेय (मोक्ष) को प्राप्त करती है और वह संसार में यश: शरीर से जीवित रहता है।

काय से तीन पाप, वाणी से चार पाप और मन से तीन पाप उत्पन्न होते हैं। इन दस पापों से बच कर मनुष्य श्रेष्ठतम बनता है। इन दस पापों से मनुष्य को बचना चाहिए-

कायेन त्रिविधं कर्म वाचा चापि चतुर्विधम्।
मनसा त्रिविधं चैव दशकर्मपथांस्त्यजेत्।।

महाभारतदानपर्व, १३/२।।

शरीर से तीन पाप, मन से तीन पाप और वाणी से चार पाप प्रवृत्त होते हैं। इन पापों से प्रयासपूर्वक बचना चाहिए।

तीन कायिक पाप-

शरीर से तीन पाप किये जाते हैं। ये हैं-

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम्।।

काशीखण्ड २७/१५२

१. बिना दी हुई वस्तु (जो दूसरे की है) को ले लेना,
२. अवैधानिक (यज्ञ विधि के बिना) हिंसा करना
३. पर स्त्री का सेवन करना।

ये तीन पाप कर्म कायिक कहे गये हैं। काशीखण्ड में वर्णित कायिक पाप से महाभारत में निर्दिष्ट कायिक पाप थोड़े भिन्न हैं। यहाँ पर धन अपहरण के स्थान पर स्तैन्य (चोरी) का उल्लेख है। अपहरण में धन बलपूर्वक छीना जाता है और 'चोरी में छलपूर्वक लिया जाता है।

चार वाचिक पाप- वाणी द्वारा चार पाप किये जाते हैं। ये हैं-

पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चैव सर्वशः।
असम्बद्ध प्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्।।

काशीखण्ड २७/१५३।।

१. कठोर वाणी बोलना,
२. असत्य बोलना,
३. पिशुनता (चुगली) करना,
४. प्रलाप (बकवाद) करना।

ये चार पाप कर्म वाङ्मय (वाचिक) कहे गये हैं।

तीन मानसिक पाप-

मन से तीन पाप किये जाते हैं। ये हैं-

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम्।
वितथाऽभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम्।।

काशीखण्ड २७/१५४

१. दूसरों के धन पर नजर गड़ाना,
२. मन ही मन दूसरों का अनिष्ट सोचना,
३. मिथ्या कार्यों में आग्रह रखना।

ये तीन पाप कर्म मानस कहे गये हैं। महाभारत में इन तीनों मानसिक पापों के स्थान पर तीन पुण्यों का निर्देश है-

	काशीखण्ड	महाभारत
१.	परद्रव्य अभिध्यान	परधन अनभिध्यान
२.	अनिष्टचिन्तन	जीवधारियों के प्रति मैत्रीभाव
३.	वितथ (मिथ्या) अभिनिवेश	कर्म फल में विश्वास रखने का भाव

इससे ज्ञात होता है कि जो पाप कर्म होते हैं उनके प्रतिकूल आचरण करने पर पुण्यकर्म होते हैं। मनुष्य को मन, वाणी और शरीर से कभी भी पाप कर्म या अशुभ कर्म नहीं करना चाहिए। कर्मों के फल को अवश्य भोगना पड़ता है-

तस्माद् वाक्-काय-मनसा नाचरेदशुभं नरः।
शुभाशुभान्याचरन् हि तस्य तस्याश्नुते फलम्।।

महाभारतदानपर्व, १३/६।।

विश्व के समस्त अत्याचार और दुष्कर्म इन्ही दस पापों में समाहित होते हैं। इन दस पापों से मनुष्य को बचना चाहिए। निषेध से बचना अनिवार्य होता है। वस्तुतः दुराचार पुण्यों का क्षय कर देता है। दुराचार लोक (समाज) में अपयश देता है और शरीर में रोग उत्पन्न करता है-

दुराचाररतो लोके गर्हणीयः पुमान् भवेत्।
व्याधिभिश्चाभिभूयेत सदाल्पायुः सुदुःखभाक्।।

काशीखण्ड ३५/२८।।

यम और नियम ही धर्म के प्रथम सर्वस्व हैं। धर्म ही यश और आयु है। अतः जीवन को धर्ममय और यम-नियम आधारित बनाना चाहिए-

प्रथमं धर्मसर्वस्वं प्रोक्ता यन्नियमा यमाः।
अतस्तेष्वेव वै यत्नः कर्त्तव्यो धर्ममिच्छता।।

काशीखण्ड ३५/३१।।

अक्रूरता, क्षमा, सत्य, अहिंसा, दान, नम्रता, प्रीति (प्रेम), प्रसन्नता, माधुर्य, कोमलता ये दस यम हैं। शुद्धि, पूजा, तप, दान, वेद पाठ, इन्द्रिय संयम, व्रत, मौन, उपवास, स्नान ये दस नियम हैं। इनमें पाँच यम और पाँच नियम प्रमुख हैं। (पृष्ठ ३)। भागवतमहापुराण में बारह यम, बारह नियम दिये गये हैं।

जीवन दर्शन

मनुष्य का जीवन बाहरी-भीतरी दोनों प्रकार की शुद्धियों से अमितायु, दीर्घायु और त्रैलोक्य पूजित होता है। बाहरी शुद्धि से भीतरी शुद्धि की स्वाभाविकी प्रवृत्ति बनती है। प्रयत्नपूर्वक भीतर-बाहर की शुद्धि को जीवन में धारण करना चाहिए।

इन्द्रिय विजय से व्यक्ति किसी भी प्रकार की तपस्या में सफल हो जाता है। प्रयतात्मा अथवा सदाचारी व्यक्ति अपने जीवन में शनैः शनैः सब कुछ प्राप्त कर लेता है।

प्रायशः धर्म जगत् में एक धारणा बनी है कि ध्यान करने वाले को जप-हवन नहीं करना चाहिए और जप-हवन करने वाले को ध्यान और समाधि में नहीं प्रवेश करना चाहिए। श्रीकृष्ण भगवान् ने गीता में कहा है-

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।

गीता, १८/५।।

अर्थात् यज्ञ-दान-तप कर्म निरंतर करते रहना चाहिए। यज्ञ, दान और तप मनीषियों को भी पवित्र बनाते हैं।

ऋषियों का जीवन प्रातः प्राणायाम-प्रातः सन्ध्यावन्दन के साथ साथ प्रातः अग्निहोत्र से सम्पूर्ण होता था। मनु महाराज ने लिखा है कि व्यक्ति को प्रतिदिन जप और हवन करना चाहिए-

मंगलाचारयुक्तः स्यात्प्रयतात्मा जितेन्द्रियः।
जपेच्च जुहुयाच्चैव नित्यमग्निमतन्द्रितः।।

मनुस्मृतिः ४/१४५।।

अर्थात् मंगल द्रव्य (कुंकुम, गोरोचन, कस्तूरी आदि) को तिलकरूप में लगाने वाला, संयमी, सदाचारी व्यक्ति जप-हवन करता हुआ कभी भी विनष्ट नहीं होता है। ऐसी तपस्या करने वाला व्यक्ति दैवी विपत्ति और मानवी विपत्ति से दुष्प्रभावित नहीं हो पाता है-

जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते।।

प्राचीन भारत में ऋषिगण विवाहित, पुत्र-पुत्री से युक्त, सद्‌गृहस्थ, आश्रम में रहने वाले होते थे। प्रतिदिन वेद पाठ करना, बाह्याभ्यन्तरशुचि रहना, तपस्या (व्रतोपवास-योग-धारणा) समाधि मे संलग्न रहना, प्राणिद्रोह नहीं करना मात्र इन चार गुणों से व्यक्ति पूर्व जीवन का स्मरण प्राप्त कर लेता है-

वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च।
अद्रोहेण च भूताग्नां जातिं स्मरति पौर्विकीम्।।

मनुस्मृतिः ४/१४८।।

ज्यों किसी मनुष्य को पूर्व जीवन की स्मृति हो जाती है त्यों ही वह अनेक प्रकार की तपस्या से युक्त हो जाता है। उसे पूर्व जीवन के तप और विद्यायें प्राप्त हो जाती हैं। सब कुछ स्मरण में आ जाता है।

पूर्व जीवन का स्मरण (जातिस्मरता) होते ही व्यक्ति साधना-उपासना में लग जाता है। पूर्व स्मृति वाला व्यक्ति सामान्य गतिविधियों में नहीं लगता है।

ब्रह्मज्ञान, लोकज्ञान, विज्ञान, श्रेष्ठज्ञान को पाकर भी व्यक्ति को प्रतिदिन सामान्य व्यक्ति की तरह दिनचर्या व्यतीत करनी चाहिए। सामान्यतः प्रातः जागरण, मूत्र-मल विसर्जन, मुखधावन, जप-हवन, वस्त्रालंकार धारण तथा स्वकर्म में शाँत भांव से लगे रहना चाहिए। बड़ों को प्रणाम करना, छोटों को आशीर्वाद देना, न्याय-सत्य-धर्म पूर्वक जीविका हेतु प्रयास करना श्रेयस्कर होता है। आचार और सत्य का पक्ष जीवन में कभी न छोड़ें। आचार अर्थात् श्रेष्ठ व्यवहार से दीर्घायु की प्राप्ति होती है। आचार से ही श्रेष्ठतम संतति की प्राप्ति होती है। आचार से अक्षय्य समृद्धि की प्राप्ति होती है और आचार से ही अनिष्ट लक्षण विनष्ट होते हैं-

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्।।

मनुस्मृतिः ४/१५६।।

दुराचारी व्यक्ति समाज में निंदित होता है। वह अपने दुराचार के कारण दुःख, रोग और अल्पायु को प्राप्त करता है। सभी श्रेष्ठ लक्षणों से हीन व्यक्ति भी यदि सदाचारी हो तो वह सौ वर्ष की आयु को प्राप्त करता है-

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च।।

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति।।

मनुस्मृतिः ४/१५७, १५८।।

परवश कार्य का त्याग-

व्यक्ति को प्रयास पूर्वक स्वतंत्र रहना चाहिए। दूसरों के अधीन रह कर किया हुआ कार्य मानसिक, शारीरिक, नैतिक सभी प्रकार से दुःखः देने वाला होता है। आत्मवश में रह कर जीवन व्यतीत करना सुख का लक्षण है तथा परवश में रहकर जीवन व्यतीत करना दुःख का कारक है। सुख-दुख का सामान्य लक्षण यही है कि व्यक्ति स्वप्रवृत्ति अनुकूल काम करे तो सुखी और पर प्रवृत्ति अनुकूल काम करे तो दुःखी रहता है-

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्।
यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः।।
सर्वे परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः।।

मनुस्मृतिः ४/१५९, १६०।।

जिस कार्य को एकान्त में या सबके सामने करने से लज्जा महसूस न हो वही कार्य करना चाहिए। जिस कार्य को करने से आत्मपरितोष हो तथा सभ्य जनों द्वारा जो कार्य उत्तम कहा जाये उसे ही करना चाहिए-

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः।
तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत्।।

मनुस्मृतिः ४/१६१।।

जीवन में व्यभिचार से हमेशा बचना चाहिए। इससे अपयश और आयु हानि दोनों की प्राप्ति होती है-

न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम्।।

मनुस्मृतिः ४/१३४।।

सदा सत्य बोलें, प्रिय सत्य बोलें। अप्रिय सत्य न बोलें। प्रिय (मधुर) और सत्य बोलना चाहिए। यह सनातन धर्म है-

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।।

मनुस्मृतिः ४/१३८।।

अकारण वैर किसी से नहीं करना चाहिए-

'शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् केनचित्सह'

मनुस्मृतिः ४/१३९।।

इस प्रकार से जीवन में अपने आपको निरंतर तपा कर स्वर्ण की तरह चमकते रहना चाहिए।

[पश्चिमी जीवन पद्धति में यज्ञ और तप का वह सिद्धान्त नहीं दिखलाई देता जो भारत में है। वहाँ के जीवन में षट्चक्र, कुण्डलिनी शक्ति जागरण, तिलक लगाने की प्रथा भी नहीं है। वे योग की उन विधियों को नहीं जानते जिनका भारत में सर्वत्र प्रचार था। 'हवन' कर्म तो पश्चिमी जीवन में है ही नहीं। 'जातिस्मरण' को वे नहीं मानते। पूर्वजीवन, पुनर्जन्म को मानने पर ही जातिस्मरण का सिद्धान्त मान्य हो सकता है। परस्त्री सम्पर्क, वैवाहिक संस्था का न होना, अत्यधिक काम और अनियंत्रित काम में संलिप्तता पश्चिम का सहज आचरण है। ब्रह्मचर्य, गर्भशुद्धि और एकपत्नीव्रत में पश्चिमी जीवन पद्धति वाले आस्था नहीं रखते। वे प्रदूषित काम भोग से ग्रस्त होने पर उससे बचाव के लिए 'कमोड' आदि संसाधनों पर करोड़ों धनराशि विज्ञापन पर व्यय करते हैं पर ब्रह्मचर्य धारण और स्वपत्नी मात्र में कामतृप्ति की बात उन्हें पचती नहीं है। अब धीरे-धीरे पश्चिम में कुछ लोगों ने भारतीय जीवन पद्धति के कतिपय सद्वृत्तों और स्वास्थ्यवृत्तों को अपनाना शुरु किया है। यह विश्व के लिए शुभ पक्ष है। भारत वर्ष में जीवन को तपस्या हेतु सुरक्षित रखने पर विचार किया गया है। कामोपभोग हेतु दीर्घ जीवन की आवश्यकता पर विचार नहीं किया गया है। यद्यपि राजसिक एवं तामसिक वृत्तियों के कारण मनुष्यों में यहाँ पर भी इस सिद्धान्त में क्षरण हुआ है, पर वैचारिक स्तर पर ऋषि मुनियों ने जीवन के लक्ष्य को अन्तिम सोपान तक निर्धारित किया है। इसका दिग्दर्शन आयुर्वेद, ज्योतिषशास्त्र, वास्तुशास्त्र, धर्मशास्त्र, राजशास्त्र, कामशास्त्र, न्यायशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, साहित्यशास्त्र, मीमांसा, योगदर्शन तथा बृहद् वैदिक साहित्य में पग-पग पर प्राप्त होता है।]

●

अपवित्र एवं पवित्र स्थिति

अपवित्र स्थिति	पवित्र स्थिति
१. मैथुन करने के बाद जब तक व्यक्ति स्नान नहीं करता वह अपवित्र (उच्छिष्ट) रहता है- **मैथुनेन सदोच्छिष्टाः।**	१. गोरोचन का तिलक लगाने वाला, वचा औषधि धारण करने वाला, गोघृत; अक्षत माथे पर लगाने वाला, पवित्र रहता है- **गोरोचनासमालम्भो वचाहस्तश्च यो भवेत्। घृताक्षतं च यो दद्यान् मस्तके तत् परायणः।।**
२. बड़ों का अपमान करने वाला अपवित्र होता है- **कृते चैवाधरोत्तरे।**	२. जो मांस नहीं खाता है वह पवित्र रहता है- **ये च मांसं न खादन्ति।**
३. वृक्ष की जड़ में सोने वला अपवित्र होता है- **वृक्षमूले च यः स्वपेत्।**	३. जिसके घर में प्रातःसायं हवन होता रहता है वह घर तथा उसमें रहने वाले लोग पवित्र होते हैं- **यस्य चाग्निर्गृहे नित्यं दिवारात्रौ च दीप्यते।**
४. सिरपर मांस को ढोने वाला अपवित्र होता है- **आमिषं शीर्षतो यस्य।**	४. जिसके घर में व्याघ्र, लकड़बग्घा का चर्म और दाँत हो,
५. पायताने सिर कर सोने वाला अपवित्र होता है- **पादतो यश्च संविशेत्।**	५. जिसके घर में जंगली कच्छप पाला गया हो वह घर और उसमें रहने वाले लोग पवित्र होते हैं- **तरक्षोश्चर्म दंष्ट्राश्च तथैव गिरिकच्छपाः।।**
६. पानी में मल-मूत्र-थूक फेंकने वाला अपवित्र होता है- **उदके चाप्यमेधानि श्लेष्माणं च प्रमुञ्चति।**	६. जिसके घर से किये हुये हवन से धूम निकलता हो,
७. मांस खाने के लिए निरंतर मोहित रहने वाला अपवित्र रहता है- **मोहान् मांसानि खादेत।**	७. जिसके घर में बिल्ली और काला या पीला बकरा पाला गया हो वह घर पवित्र होता है- **आज्यधूमो विडालश्च छागः कृष्णोऽथ पिङ्गलः।**

इन अपवित्र परिस्थितियों में रहने वाले व्यक्तियों और परिवारों पर राक्षसों और अदृश्य दुष्ट शक्तियों का आक्रमण होता है। जिन घरों और व्यक्तियों में शुभ परिस्थितियाँ बनी रहती हैं वे घर और उसमें रहने वाले लोग सुरक्षित रहते हैं। महाभारत; अनुशासनपर्व, दानधर्म १३१ अध्याय।

त्याज्य वृत्तियाँ

१. काम (स्त्रियों में लिप्तता)
२. क्रोध (पराभिभव इच्छा)
३. मद (गर्व, अहं)
४. लोभ (लालच)
५. मात्सर्य (असहिष्णुता)
६. अधैर्य (अधृतिः)
७. भय (भीः)
८. हिंसा (प्राणिपीडन)
९. कुटिलता (अनृजुता)
१०. निंदा (पर अपवाद)
११. असूया (गुण में दोष दृष्टि)
१२. अशुचित्व (अपवित्रता)

नेह क्रोधो न मात्सर्यं लोभो कामोऽधृतिर्भयम्।
हिंसा कुटिलता गर्वो निन्दाऽसूयाऽशुचिः क्वचित्।।

काशीखण्ड २/५१।।

दोषत्याग

शरीर, मन, बुद्धि से होने वाले पापों को प्रयत्नपूर्वक छोड़ देना चाहिए। अतः जिन शारीरिक, मानसिक तथा वाचिक दोषों से पाप उत्पन्न होते हैं उन्हें धीरे धीरे एक एक कर या एक साथ सभी को छोड़ देना चाहिए। दोषों का त्याग सबसे भारी तथा दुष्कर होता है-

प्रथमं वर्जयेद् दोषान् युगपत् पृथगेव वा।
तथा धर्ममवाप्नोति दोषत्यागो हि दुष्करः।।

महाभारत, दानधर्मपर्व

यदि सत्कर्म और तप न भी किया जाए तो भी केवल दोष त्याग देने मात्र से धर्म की प्राप्ति होती है-

दोषसाकल्य संत्यागान्मुनिर्भवति मानवः।
दुष्कृतत्यागमात्रेण पदमूर्ध्वं हि लभ्यते।।

महाभारत, दानधर्मपर्व

तेरह शील

१. **ब्रह्मण्यता-** वेद अध्ययन-अध्यापन, दान लेना-दान देना, यज्ञ करना-यज्ञ कराना ये छः गुण ब्रह्मण्यता प्रदान करते हैं।

२. **देवपितृभक्तता-** देवता और पितृ तर्पण से तथा देवपितृ कर्म से मनुष्य में देव एवं पितृ गुण का समावेश होता है।

३. **सौम्यता-** क्रोध एवं क्रूरता के परित्याग से, मन द्वारा अहंकार के त्याग से चित्त में सौम्य गुण का वास होता है।

४. **अपरोपतापिता-** अपने किसी भी कर्म के द्वारा दूसरों को संताप न पहुँचाना अपरोपतापिता है। इससे अपूर्व निर्भयता उत्पन्न होती हैं।

५. **अनसूयता-** दूसरों के गुणों के प्रति मन में ईर्ष्या भाव का न आना अनसूयता है। इससे मानसिक पवित्रता बढ़ती है।

६. **मृदुता-** सभी से मधुर व्यवहार करना मृदुता है। मृदुता से जगद्वसित्व उत्पन्न होता है।

७. **अपारुष्यम्-** दूसरों के प्रति कठोरता पूर्ण व्यवहार न करना अपारुष्य है। इससे लोक में ख्याति प्राप्त होती है।

८. **मैत्रता-** सभी प्राणियों के प्रति मित्र भाव रखना मैत्रता है। इससे ब्रह्म दृष्टि का विकास होता है।

९. **प्रियवादिता-** सभी से मधुर बोलना प्रियवादिता है। इससे विनय एवं अहंकारहीनता उत्पन्न होती है।

१०. **कृतज्ञता-** दूसरों के द्वारा किये हुए उपकार को आदरपूर्वक स्वीकार करना कृतज्ञता है। इससे कृतघ्नताजनित दोष से बचाव होता है।

११. **शरण्यता-** शरण में आये हुये प्राणिमात्र को अभयदान देना शरण्यता है। इससे यश एवं दिव्यलोकों की प्राप्ति होती है।

१२. **कारुण्य-** सभी जीवों के प्रति करुणा भाव को रखना कारुण्य है। इससे सभी प्राणियों में ब्रह्मतत्त्व का दर्शन होता है।

१३. **प्रशान्ति-** सभी स्थितियों में शान्त रह कर परमात्मा का ध्यान करना प्रशान्ति कहलाती है। इससे दिव्य ब्राह्मी तेज की प्राप्ति होती है।

धर्म के तीस लक्षण

धर्म को धारण करके सृष्टि में श्रेष्ठतम बना जा सकता है। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण बतलाये गये हैं। ये हैं- धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध। श्रीमद्भागवतमहापुराण के सप्तम स्कन्ध के एकादश अध्याय में धर्म के तीस लक्षण बतलाये गये हैं। ये हैं- १. सत्य २. दया ३. तप ४. शौच ५. तितिक्षा ६. शम ७. दम ८. अहिंसा ९. ब्रह्मचर्य १०. त्याग ११. स्वाध्याय (वेदपाठ) १२. आर्जव (सीधापन) १३. संतोष १४. समदृष्टि १५. सेवा १६. भोगनिवृत्ति १७. अनहंकार १८. मौन १९. आत्मविमर्श २०. बलिवैश्वदेव (संविभाग) २१. प्राणियों में आत्मदेवता बुद्धि २२. श्रवण २३. कीर्तन २४. स्मरण २५. सेवा २६. पूजा २७ प्रणाम (अभिवादन) २८. दास्य भाव २९. सख्य (मित्र) भाव तथा ३०. आत्मसमर्पण भाव।

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्।।
संतोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्।।
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
तेष्वात्मदेवता बुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव।।
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम्।।
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, ७/११/८-१२.

देवमार्ग

मनुष्य अपने श्रेष्ठ आचरण और तप से मनुष्यमार्ग से बढ़ता हुआ देवमार्ग को प्राप्त कर उस पर चलने लगता है। यह देवमार्ग दो प्रकार से प्राप्त होता है- १. हिमालय के हरि-हर द्वार से प्रवेश कर तपस्या करने से या २. अपने स्थान पर रह कर देवकर्म करते हुए जीवन व्यतीत करने से।

देवमार्ग पर चलने वाले को श्रेष्ठ लोकों की प्राप्ति होती है। देवमार्ग पर चलने वाला मनुष्य ही दीर्घकाल की साधना से मोक्ष तत्त्व को प्राप्त करता है। देवमार्ग से गुजरे बिना आत्मतत्त्व प्राप्ति या मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं है। देवमार्ग पर ले जाने वाले संसाधन निम्नलिखित हैं-

१. सत्य एवं धर्म के मार्ग पर निरन्तर चलते रहने से देवमार्ग की प्राप्ति होती है। वहीं से स्वर्ग का द्वार खुलता है।
२. संदेहरहित होकर सर्वज्ञ को जानना स्वर्गकारक है।
३. दसविध पापों से मुक्त होकर जीवन जीना देवपथ पर गमन करना है।
४. तेरहशील से युक्त व्यक्ति देवमार्ग से देवलोक प्राप्त करता है।
५. सभी प्राणियों पर दया, विश्वास एवं अहिंसा वृत्ति को रखने वाला स्वर्ग गमन करता है।
६. दूसरों के धन एवं परस्त्री से विरक्त मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त करता है।
७. स्व उपार्जित वित्त से संतुष्ट व्यक्ति, अपनी पत्नी में ही अनुरक्त व्यक्ति स्वर्गलोक को प्राप्त करता है।

स्वर्गलोक प्राप्ति के ये सात देवमार्ग मनुष्यों द्वारा निरन्तर अपनाया जाता है। इन्हीं मार्गों पर निरन्तर चलता हुआ व्यक्ति राग-द्वेष से रहित होकर स्वर्गलोक को प्राप्त कर लेता है। इन सात मार्गों के अतिरिक्त दान, धर्म, तप, शील, शौच, दया का मार्ग भी देवमार्ग है।

देवमार्ग के अन्य संसाधन-

१. हसी और. परिहास में भी झूठ नहीं बोलना
२. मधुर, स्निग्ध, पापशून्य, स्वागतयुक्त वाणी बोलना
३. रुक्ष, कठोर, निष्ठुर न बोलना, चुगली न करना
४. मैत्रीभाव रखना, मित्र भेद न करना

५. प्राणियों के प्रति समभाव रखना

६. शठता, विरोध का त्याग कर सौम्य रहना

७. हृदयविदीर्ण करने वाली वाणी न बोलना, दूसरों को सान्त्वना देना

८. एकान्त में पड़े हुये दूसरे के धन को न ग्रहण करना

९. कामासक्त मनुष्यों से दूर रहना

१०. वेदाध्ययन, दयालुता, पवित्रता, सत्यप्रतिज्ञा तथा स्वधन में संतुष्ट रहना

११. श्रद्धालु, शुद्धहृदय, धर्माधर्म का ज्ञाता होना

१२. न्यायशील, गुणवान्, देवद्विज भक्त, श्रेष्ठ कर्म में जागृत रहना

१३. धैर्यपूर्वक, इन्द्रियों को वश में रखकर जीवन जीना

इन सभी संसाधनों से युक्त व्यक्ति देवमार्ग को प्राप्त करता है। जो व्यक्ति दूसरों का वध नहीं करता, मांस खाने के लिये प्राणिवध नहीं करता, भयंकर रूप धारण नहीं करता, जनविक्षोभ पैदा नहीं करता, कष्ट में पड़े लोगों की रक्षा करता है वह दीर्घायु को प्राप्त करता है। तपस्या के इन्हीं संसाधनों के माध्यम से व्यक्ति दीर्घायु और देवत्व को प्राप्त करता है।

पाप कर्म करनें से आयु की हानि होती है। हिंसा प्रेमी तथा पापकर्मी व्यक्ति अल्पायु एवं अयशी होता है-

पापेन कर्मणा देवि बद्धो हिंसारतिर्नरः।
अप्रियः सर्वभूतानां हीनायुरुपजायते।।

महाभारत, दानधर्मपर्व १४४/५५

देवमार्ग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस मार्ग पर चलने वाले को देवता मार्ग दर्शन करने लगते हैं। गायत्री मंत्र को 'मधुविद्या' कहा गया है। यह मधु की तरह उत्प्रेरक विद्या है। जैसे मधु किसी भी 'भस्म-औषधि' के गुण को बढ़ा देती है वैसे ही गायत्री भी अन्य मंत्र-विद्या के गुणधर्म को बढ़ा देंती हैं। गायत्री जप के साथ-साथ विधि-हरि-हर के मंत्रों का प्रतिदिन एक माला जप अवश्य करना चाहिए। प्रतिदिवसीय हवन से धन और आयु की वृद्धि होती है। बह देवमार्ग का शुभ, कल्याणकारी स्वरूप है।

●

पापकर्म

नीचे लिखे कर्म, अपकर्म या पापकर्म में गिने जाते हैं-

१. अहंकारपूर्ण व्यवहार
२. श्रेष्ठ पुरुषों का अपमान
३. श्रेष्ठ जनों को रास्ता न देना
४. पूज्यों की पूजा न करना
५. गुरु का अपमान या निंदा करना
६. उदण्ड होना
७. अविनयी होना
८. रूक्ष, कठोर, हृदयविदारक बोलना
९. याचक को दुत्कारना
१०. लम्पट होना
११. चोरी करना
१२. झूठ बोलना
१३. चुगली करना
१४. रौद्र रूप धारण करना
१५. कमजोर को सताना
१६. छल कपट करना
१७. जीवों में उद्वेग पैदा करना
१८. अतिथि से कुशलक्षेम न पूछना
१९. परस्त्री में संलग्न रहना
२०. दूसरों की भूमि, भवन हड़पना
२१. मदिरा सेवन करना
२२. अभक्ष्य खाना
२३. सूर्य-चन्द्र-अग्नि के प्रति अनादर प्रकट करना

इन पाप कर्मों से मनुष्य अनेक जन्मों तक तिरस्कृत रहता है।

मदिरा पान का दोष

- मदिरा पीने वाला अट्टहास करता है।
- शराबी शराब पीकर अंट संट बातें बकता है।
- शराबी हमेशा अपशब्द, कड़वा, रुखा बचन बोलता रहता है।
- मद्यप अति प्रसन्न होकर अनावश्यक नाचता है।
- मद्यप नशे में अश्लील गीत गाता है।
- शराबी आपस में कलह करते रहते हैं।
- मद्यप एक दूसरे को मारते-पीटते रहते हैं।
- शराबी सहसा दौड़ता है या लड़खड़ाता है।
- शराबी नंग धड़ंग हो हाथ पैर पटकता है।
- शराबी कभी नाले में तो कभी भूमि पर गिरता पड़ता है।
- शराबी निर्लज्ज औंर बेहया होता है।
- शराबी हमेशा भ्रान्त चित्त रहता है। ऐसी मोहमयी मदिरा को पीकर कोई भी व्यक्ति अपने लौकिक पुण्यों का क्षय कर लेता है। पुण्यों के क्षय से पाप की वृद्धि होती है और जीवन संकट में पड़ता है। शराबी की बुद्धि विभ्रष्ट होती है। वह कर्त्तव्य; अकर्त्तव्य के बोध से रहित हो जाता है। अतः माता, पिता, गुरु, विद्वानों की बातों को भी वह नहीं मानता है।
- शराबी हमेशा अपवित्र रहता है।
- अतिशय शराब पीने से शरीर का यकृत (लीवर) अंग खराब होता है। वृक्क (कीडनी) भ्रष्ट होता है और जीवन धन संकट में पड़ जाता है।
- शराब पीकर अनेक लोग गहरे जल में डूब जाते हैं। अनेक लोग छत पर से गिर कर मर जाते हैं। अनेक लोग अपनी संपत्ति शत्रुओं को बेच देते हैं। अनेक लोग परिवार के भविष्य को भारी विपत्ति में फंसा देते हैं।

शराब पीना शारीरिक-मानसिक पाप को बढ़ावा देता है। यदि मदिरा पीने पर वर्जना न हो तो लोक में मर्यादा ही नहीं बचेगी। **महाभारत, दानधर्मपर्व, १४५.** अतः मदिरा पान न करने वाला दीर्घायु और यशस्वी होता है।

हिन्दू (सनातन) संस्कार

संस्कार से मनुष्य का जीवन निष्पाप, तेजस्वी, उज्ज्वल, प्रतिभाशाली, दिव्य, सर्वंसह, आनन्दमय और निष्कलंक बनता है। जैसे स्वर्ण अग्नि में तपाने से चमकदार और कांन्तियुक्त हो जाता है, वैसे ही संस्कारों से संस्कृत स्त्री-पुरुष; बालिका-बालक चमक उठते हैं। संस्कारित जीवन ही मनुष्य को आदरणीय और पूज्य बनाता है। संस्कार संशुद्धि का श्रेष्ठतम माध्यम है। संस्कार से मनुष्य का जीवन गर्भदोष, रजःदोष, वीर्यदोष और प्रकृतिज दोष से मुक्त होकर ब्रह्मतत्त्व प्राप्ति के योग्य बनता है।

षोडशसंस्कार

हिन्दू प्रजाति जन्म लेने से पहले गर्भस्थ शिशु के गर्भ में आगमन हेतु एवं स्थिरता, शुभता, आरोग्य तथा रक्षा हेतु अनेक तरह से प्रयत्न करती है। इसमें गर्भ आमंत्रण, ऋतुकाल में शुभ मुहूर्त्त में गर्भधारण संलग्न है। श्रेष्ठ संतान प्राप्ति के लिए नानाविध मंत्र-व्रत-उपवास करने की प्रक्रिया हिन्दुओं में प्रचलित है। सुप्रसिद्ध षोडशसंस्कार यहाँ दिये जा रहे हैं- १. गर्भाधान २. पुंसवन ३. सीमन्तोन्नयन ४. जातकर्म ५. नामकरण ६. निष्क्रमण ७. अन्नप्राशन ८. चूडा (मुण्डन) ९. कर्णवेध १०. विद्यारम्भ ११. उपनयन (यज्ञोपवीत) १२. वेदारम्भ १३. केशान्त १४. समावर्तन १५. विवाह १६. अन्त्येष्टि (मृत्यु)।

चालीस संस्कार

१. गर्भाधान २. पुंसवन ३. सीमन्तोन्नयन ४. जातकर्म ५. अन्नप्राशन ६. चूडा ७. उपनयन ८. ब्रह्मव्रत चार प्रकार का १२. स्नान (समावर्तन) १३. विवाह, १४. पञ्च यज्ञ (देव-पितृ-मनुष्य-भूत-ब्राह्मण यज्ञ) १९. अष्टका कर्म २०. श्रावणी २१. आग्रहायणी २२. आश्वयुजी २३. चैत्री २४. सप्त पाकयज्ञ २५. अग्न्याधान २६. अग्निहोत्र २७. दर्श-पौर्णमास २८. चातुर्मास्य २९. निरूपण ३०. पशुबलि ३१. सौत्रामणि ३२. सप्तहविर्यज्ञ ३३. अग्निष्टोम ३४. अत्यग्निष्टोम ३५. उक्थ्य ३६. षोडशी ३७. वाजपेय ३८. अतिरात्रि ३९. आप्तोर्याम ४०. सप्तसोम यज्ञ। इनमें से अधिकांश वैदिक कर्मकाण्ड से युक्त हैं।

अष्ट आत्मगुण

१. अनसूया २. दया ३. क्षान्ति ४. अनायास ५. मंगल ६. अकार्पण्य ७. शौच ८. अस्पृहा।

चालीस संस्कार और अष्ट आत्मगुण मिलकर अड़तालीस संस्कार होते हैं।

धार्मिक विधि-निषेध

(धर्मसिन्धुः ग्रन्थ के आधार पर)

१. फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ मास में सभी देवी देवताओं की मूर्तियों की प्राणप्रतिष्ठा की जा सकती है। यह उत्तरायण का समय होता है। **प्रतिष्ठासर्वदेवानां वैशाखज्येष्ठफाल्गुने।**

२. माघ मास में विष्णु भगवान् की प्राणप्रतिष्ठा नहीं की जाती है। अन्य देवी देवों की प्रतिष्ठा विहित है।

३. उग्र देवों-देवियों की प्राणप्रतिष्ठा दक्षिणायन में होती है; जैसे- मातृ, भैरव, वाराह, नृसिंह, त्रिविक्रम आदि।

४. शिवलिङ्ग की स्थापना श्रावण एवं भाद्रपद मास में होती है। महाशिवरात्रि पर लिङ्ग स्थापन शुभ होता है।

५. नूतन स्थापित लिङ्ग का स्पर्श सभी को नहीं करना चाहिए। पुराण प्रसिद्ध शिवलिङ्ग पूजन का अधिकार सभी को है।

६. चाण्डाल एवं घोर, पतित अवस्था वाले जनों को प्रतिमा एवं लिङ्ग का स्पर्श न करने दें।

७. पूर्वाभिमुख स्थित प्रतिमा का पूजन उत्तराभिमुख हो कर करें। चल प्रतिमा का पूजन स्वयं पूर्वाभिमुख हो कर करें। (सार्वजनिक मंदिरों में पश्चिमाभिमुख दर्शन किया जाता है।)

८. घर में शिखर युक्त मंदिर न बनायें। शिखर की छाया अशुभ होती है।

९. सात से बारह अंगुल तक की प्रतिमा घर में रखें। सवा बित्ता की ऊँचाई तक की प्रतिमा घर में रखी जा सकती है।

१०. पट्ट और यन्त्र का प्रतिदिवसीय स्नान नहीं होता। पर्व के दिन या जयन्ती अवसर पर इनका स्नान विहित है।

११. पत्थर (संगमरमर, कसौटी), लकड़ी (चन्दन, विल्व, मदार, महुआ), लोहा (अष्टधातु, त्रिधातु), लेप्य, लेख्य, बालुका, मिट्टी, पारद तथा मणियों की प्रतिमायें बनती हैं।

१२. **एक ही घर में दो शिवलिङ्ग, दो शालिग्राम, दो द्वारकाधीशचक्र, दो सूर्य, तीन गणेश तथा दो शंख रखकर पूजन न करें।** लाभ की जगह हानि होने लगेगी।

१३. दशावतारों का घर में पूजन न करें।

१४. अग्नि दग्ध और टूटी प्रतिमा का पूजन न करें।

१५. शालिग्राम की टूटी-फूटी शिला भी पूज्य होती है।

१६. एक ही घर में शालिग्राम की एक, चार, छः आदि शिला रख कर पूजन कर सकते हैं।

१७. खण्डित मूर्ति हो जाने की स्थिति में मलमास एवं शुक्रास्त आदि होने पर भी बदल कर नयी मूर्ति स्थापित की जा सकती है।

१८. शालिग्राम की प्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं होती। उसमें सतत विष्णु भगवान् का निवास रहता है।

१९. घोड़ा, गर्दभ (गधा), रजस्वला, मुर्दा, चोर, ब्राह्मण रक्त से सनी, खण्डित, स्थानभ्रष्ट आदि होने पर प्रतिमा की पुनः प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

२०. प्रतिमा, शिवलिङ्ग, त्रिशूल, कलश, ध्वज, चामर, घण्टा आदि के भंग होने पर तत्काल शान्ति करायें।

२१. द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों पर चढ़े प्रसाद का ग्रहण किया जाता है; अन्य लिङ्गों पर चढ़े प्रसाद का भक्षण नहीं किया जाता है।

२२. शिव-सूर्य का नैवेद्य भक्षण न करें। स्थापित प्रतिमा का विसर्जन-आवाहन नहीं करते हैं।

२३. शिव की पूजा उत्तराभिमुख श्रेयस्कर होती है। इससे आयु-ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। शिवलिङ्ग का अर्घा उत्तर मुख होना चाहिए। जिस शिव मंदिर में अभिषेक जल या दुग्ध को नाली से बहाया जाता है उस मंदिर की परिक्रमा आधी की जाती है- **न प्रनालं लंघयेत**। जहाँ अभिषेक द्रव्य नहीं बहाया जाता वहाँ मंदिर की पूरी परिक्रमा होती है।

२४. **शिव मंदिर में झल्लक (झाल, झाँझ), सूर्य मंदिर में शंख, दुर्गामंदिर में वंशी या बाँस से बना वाद्य नहीं बजाना चाहिए।**

२५. चोरी या अपहरण के पश्चात् प्रतिमा की प्राप्ति हो जाए तो पलक झपकते उसकी प्रतिष्ठा की जानी चाहिए।

२६. मक्खी, मच्छर, चीटियाँ, भौंरे के चढ़ने से प्रतिमा दूषित नहीं होती।

२७. शृङ्गाल, बिल्ली, कौआ, मुर्गा, गृध्र, जुगनू का प्रतिमा स्पर्श या गर्भगृह प्रवेश हो जाने पर अभिषेक, शान्ति, हवन तत्काल करें।

२८. अर्चक में तप की जितनी शक्ति होगी, अर्चना की जितनी अतिशयता होगी, प्रतिमा में जितनी अभिरूपता होगी देवता का निवास और तेजस्विता भी उसी रूप में वहाँ प्रतिबिम्बित होगी-

अर्चकस्य तपोयोगाद् अर्चनस्यातिशायनात्।
आभिरूप्याच्च बिम्बानां देव:सान्निध्यमृच्छति।।

२९. विष्णु भगवान् को तुलसी, चन्दन और केतकी (केवड़ा) पुष्प अतिप्रिय है-

विष्णु-प्रीतिकरं नित्यं तुलसीकाष्ठचन्दनम्।
कार्तिके केतकीपुष्पं येन दत्तं हरेः कलौ।।

३०. घोला हुआ चन्दन और गरम कर पतला किया हुआ घी देवताओं को नहीं चढ़ाया जाता है- **तरलं चन्दनं सर्पिर्न देवेषु विलेपयेत्।** हेमाद्रिः।

३१. दीपक से दीपक नहीं जलाते हैं। तिल्ली या अन्य चीजों से दीप जलाते हैं- **दीपज्योतिर्हि दीपकाद् दारिद्र्यं न पतेरुजम्।** हेमाद्रिः।

(व्रतराज ग्रन्थ के आधार पर)

३२. दैव कार्य छः प्रकार के होते हैं। ये हैं- एकभक्त, नक्त, अयाचित, उपवास, व्रत एवं दान। इनका वर्णन परिभाषा अध्याय में किया गया है। दिन रात भोजन न करना उपवास कहलाता है। आप्त प्रसिद्ध संकल्प विशेष धर्म को व्रत कहते हैं। अपने स्वत्व को विगलित कर दूसरों के स्वत्व को स्थापित करना दान कहलाता है। (जिससे दूर दूर तक उपकार या प्रत्युपकार की आशा न हो उसे दिया जाने वाला दानं सात्विक दान माना गया है।)

३३. व्रत रह कर दूसरे के घर पारण न करें- **'परान्नभोजने चापि यस्यान्नं तस्य तत्फलम्।'** धर्मसिन्धुः। व्रती जिसका अन्न खाता है उसको व्रत का फल मिल जाता है।

३४. कामना पूर्ति के लिए अथवा कामनापूर्ति के पश्चात् संकल्पित व्रत को स्वयं करें। इसमें प्रतिनिधि न बैठायें।

३५. नित्यनैमित्तिक व्रत-उपवास को असक्त (रोगी), भयभीत और आपदग्रस्त होने पर दूसरों से करवाया जा सकता है; जैसे जन्माष्टमी, तीज, एकादशी आदि।

३६. पुत्र, पत्नी, पति, भाई, पुरोहित और मित्र को प्रतिनिधि बनाकर व्रत कराया जा सकता है। धर्मसिन्धुः।

(कर्मकाण्डप्रदीपः ग्रन्थ के आधार पर)

३७. मन्त्रपुरश्चरण निम्नलिखित मासों में करना शुभकारी और सिद्धिप्रद होता है-

कार्तिकाश्विनवैशाखमाघेऽथ मार्गशीर्षके।
फाल्गुने श्रावणे मन्त्रपुरश्चर्या प्रशस्यते।।

कालोत्तरे।।

कार्तिक, आश्विन (केवल शुक्ल पक्ष), वैशाख, माघ, मार्गशीर्ष, फाल्गुन और श्रावण मास में पुरश्चरण करना शुभ होता है।

३८. मन्त्र पुरश्चरण को शुक्लपक्ष में आरंभ करने से लौकिक फल मिलता है और कृष्णपक्ष में आरम्भ करने से मुक्ति मिलती है-

'मुक्तिकामैः कृष्णपक्षे भूतिकामैः सिते सदा। स्मृतितत्त्व

३९. स्फटिक, मोती, चन्दन, कमलगट्टा, रुद्राक्ष की माला जप के लिए श्रेष्ठ होती है।

४०. वैष्णव मंत्र के लिए तुलसी माला और शिव सम्बन्धित जप के लिए रुद्राक्ष माला शुभ होती है। रक्तचन्दन से देवी मंत्र का जप किया जाता है।

४१. जप करते समय माला को हमेशा ढके रहें। दाहिने हाथ से ही जप करना चाहिए।

४२. बिना आसन पर बैठे जप करने से पृथ्वी पुण्य और तेज को ले लेती है। अतः कुशासन या वस्त्र आसन पर बैठकर ही जप करना चाहिए।

४३. पूजन करने हेतु अपना वस्त्र स्वयं धोना चाहिए। जिस वस्त्र को पहन कर भोजन किया गया हो उसे पहन कर पूजन नहीं करना चाहिए।

४४. **हवन (आहुति) की तीन विधियाँ-** १. स्वाहा के बाद आहुति अग्नि में डालें। २. स्वाहा के साथ ही आहुति अग्नि में डालें। स्वाहा के बाद 'इदं..........न मम' कह कर आहुति डालें। इसमें (रिक्त स्थान में) देवता का नाम चतुर्थ्यन्त लिया जाता है; जैसे इन्द्राय, रुद्राय, महामृत्युंजयाय, विष्णवे आदि।

४५. पूजन कर्म श्रद्धा पूर्वक करना चाहिए। एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष, चार वर्ष या पाँच वर्ष पर गोदान, भूदान, स्वर्णदान आदि करते रहना चाहिए। इन दोनों से प्रायश्चित्त-दान करके महान् धार्मिक अनुष्ठान करना चाहिए-

षडब्दं चतुरब्दं वा त्र्यब्दं द्व्यद्वार्धमेव वा।
गोभूहिरण्यादिदानं दत्वा कर्म समारभेत्।।

४६. महायज्ञ आदि बड़े धार्मिक अनुष्ठान में हवन के दिन उपवास रह कर ही हवन करना चाहिए-

यजमानो न चाश्नीयाद् यावद् होमं समापयेत्।
दीक्षितत्वान् महायज्ञैर्विधिरेषः सनातनः।।

४७. सभी मन्त्रों के पूर्व प्रणव (ॐ) लगाने की परम्परा रही है। यह सभी मन्त्रों का प्राणतत्त्व होता है-

प्रणवेन विहीनं यत्तन्मन्त्रं प्राणहीनकम्।
सर्वमन्त्रेषु मन्त्राणां प्राणः प्रणव उच्यते।।

४८. पूजन करते समय दूसरे का स्पर्श नहीं करना चाहिए।

४९. ईख, जल, दूध, कन्द-मूल-फल, ताम्बूल और औषध खा कर भी दानादि क्रिया की जा सकती है।

५०. उबटन, सूतक, विवाह, पुत्र जन्म, अन्य मांगलिक कार्य में गोपीचन्दन नहीं लगाना चाहिए- **'न धार्यं गोपीचन्दनम्'** हारीतस्मृतिः।

५१. शान्ति प्रयोग में कस्तूरी, वशीकरण प्रयोग में कुंकुम (रोली) या सिन्दूर (लाल), धन-समृद्धि हेतु प्रयोग में पीला (गोरोचन, केसर) तथा मोक्ष कामना हेतु प्रयोग में श्वेत (सफेद) तिलक लगाना चाहिए-

श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं तथा।
श्रीकरं पीतमित्याहुः श्वेतं मोक्षप्रदायकम्।।

ब्रह्माण्डपुराणम्

५२. **जृम्भा (जंभाई)-छवथु (छींक)**- लेते समय **जीवेम शरदः शतम्** बोलना चाहिए। इससे आयु बढ़ती है। ध्येय है जंभाई और छींक से प्राणवायु की हानि होती है जिससे आयु घटती है।

५३. **पञ्चामृत**- दूध, दही, घी, मधु, शर्करा को पंचामृत कहा जाता है। पञ्चामृत सभी देवी-देवों को चढ़ाया जाता है।

५४. **त्रिमधुर**- घी, दूध, मधु को त्रिमधुर कहा जाता है।

५५. **पञ्चपल्लव-** अश्वत्थ, उदुम्बर, प्लक्ष, चूत, न्यग्रोध के पल्लव को पञ्चपल्लव कहते हैं। अश्वत्थ=पीपल, उदुम्बर = गूलर, प्लक्ष = पकड़ी, चूत = आम्र, न्यग्रोध = बरगद।

५६. **पञ्चरत्न -** हीरा, माणिक्य, वैदूर्य (लहसुनिया), पुष्पराग (पुखराज), इन्द्रनील = (नीलम) को पञ्चरत्न कहते हैं।

५७. **सप्तमृद-** अश्वशाला, गजशाला, बल्मीक (बाँबी) स्थान, संगमस्थान की मिट्टी, ह्रद (सरोवर) की मिट्टी, राजद्वार, पशुशाला की मिट्टी को सप्तमृद कहा जाता है।

५८. **सप्तधान्य-** यव, गेहूं, तिल, कंगु, मुद्गल, श्यामाक (सांवा) और चना को सप्तधान्य कहा जाता है।

५९. **सप्तधातु-** स्वर्ण, रजत (चाँदी), ताम्बा, आरकूट (पित्तल), लोहा, त्रपु (कांसा) एवं शीशा।

६०. **अष्टार्घ्य-** पानी, दूध, कुशाग्र, दही, अक्षत, तिल, यव, सरसों को अष्टार्घ्य कहते हैं।

६१. **यक्षकर्दम-** कर्पूर, अगरु, कस्तूरी, चन्दन, कंकोल इन पाँच पदार्थों से यक्षकर्दम का निर्माण होता है।

६२. **सर्वगन्ध-** कर्पूर, चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम को समान रूप से मिलाने से सर्वगन्ध बनता है।

६३. **दशाङ्गधूप-** कुष्ठ (६ भाग), गुड़ (द्विगुण), लाक्षा (लाख तीन भाग), नख (नखला पाँच भाग), हरीतकी (हर्रे), सर्जरस (राल) समभाग और शिलाजीत का तीन भाग, घन (नागरमोथा एक चौथाई, पुर (गुग्गुल) एक भाग और धूप ये मिलकर दशाङ्ग कहलाते हैं।

६४. **घृत-** होम में गोघृत का प्रयोग करना चाहिए। इसके अभाव में महिषीघृत, यह भी न मिले तो भेड़ का घी, यह भी न मिले तो तेल से हवन करना चाहिए। यदि तेल भी न मिले तो जार्तिल (खुरासान) से अथवा पुष्प (फूल) या सरसों से हवन करना चाहिए-

आज्यहोमेषु सर्वेषु गव्यमेव घृतं भवेत्।
तदभावे महिष्यास्तु आजमाविकमेव च।।

तदभावे तु तैलं स्याद् तदभावे तु जार्तिलम्।
तदभावे च कौसुम्भं तदभावे च सार्षपम्।।

बौधायन।।

६५. **मृगीमुद्रा-** हवन करने में अनामिका, मध्यमा और अङ्गुष्ठ से हवनसामग्री अग्नि में डालने को मृगीमुद्रा कहते हैं। तर्जनी और कनिष्ठा से हवन नहीं करते हैं।

६६. **कर्म भेद से कर्मदेवता-**

विवाह में प्रधान देवता अग्नि कहे गये हैं। इसी तरह उपासना में अग्नि-सूर्य-प्रजापति देवता होते हैं। स्थालीपाक = अग्नि, गर्भाधान = ब्रह्मा, पुंसवन = प्रजापति, सीमन्त = ब्रह्मा, जातकर्म = मृत्यु (यम), नामकर्म, निष्क्रमण और अन्नप्राशन के मुख्यदेवता सविता देवता हैं। चूडाकर्म के देवता केशिन्, उपनयन के इन्द्र-श्रद्धा-मेधा, समावर्तन के देवता इन्द्र, उपाकर्म (श्रावणी) के सविता, वास्तुहोम के देवता प्रजापति, तडाग के देवता वरुण, ग्रहयज्ञ के देवता नवग्रह होते हैं।

६७. **कर्मभेद से अग्नि का नामकरण-** (१) लोक में 'पावक' या 'वह्नि' कहा जाता है। (२) गर्भाधान में 'मारुत' अग्नि कहा जाता है। (३) पुंसवन में 'पवमान' अग्नि कहा जाता है। (४) सीमन्त में 'मंगल' अग्नि कहा जाता है। (५) जातकर्म में 'प्रबल' अग्नि कहा जाता है। (६) नामकरण में 'पार्थिव' अग्नि कहा जाता है। (७) अन्नप्राशन में 'शुचि' अग्नि कहा जाता है। (८) चूडा (मुण्डन) में 'सभ्य' अग्नि कहा जाता है। (९) गोदान में 'सूर्य' अग्नि कहा जाता है। (१०) व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) में 'समुद्भव' अग्नि कहा जाता है। (११) विवाह में 'योजक' अग्नि कहा जाता है। (१२) आवसथ्य में 'द्विज' अग्नि कहा जाता है। (१३) वैश्वदेव में 'रुक्मक' अग्नि कहा जाता है। (१४) प्रायश्चित्त में 'विट' अग्नि कहा जाता है। (१५) देवों के कार्य में 'हव्य' अग्नि कहा जाता है। (१६) पितरों के कार्य में 'क्रव्यवाहन' अग्नि कहा जाता है। (१७) शान्तिकर्म में 'वरद' अग्नि कहा जाता है। (१८) पुष्टिकर्म में 'बलवर्धन' अग्नि कहा जाता है। (१९) पूर्णाहुति में 'मृड' अग्नि कहा जाता है। (२०) अभिचार में 'क्रोध' अग्नि कहा जाता है। (२१) वश्य में 'कामद' अग्नि कहा जाता है। (२२) वनदाह में 'दूषक (दावानल)' अग्नि कहा जाता है। (२३) कुक्षि (पेट) में 'जाठर' अग्नि कहा जाता है। (२४) शवदाह में 'क्रव्याद' अग्नि कहा जाता है। (२५) लक्ष (एकलाख) होम में 'वह्नि' अग्नि कहा जाता है। (२६) कोटि (एककरोड़) होम में 'हुताशन' अग्नि कहा जाता है। (२७) समुद्र में 'वाडव' अग्नि कहा जाता है। (२८) लोकक्षय में 'संवर्तक' अग्नि कहा जाता है। (२९) घर में 'गार्हपत्य' अग्नि कहा जाता है।

कर्मभेद से अग्नि का नाम बदल जाता है। अतः अभीष्ट कर्म में उसी अग्नि का नामोल्लेख पूर्वक स्थापना पूजा की जाती है।

भारतीय वैदिक मास

क्रम	नाम	प्रसिद्ध पर्व, त्योहार	संभावित अंग्रेजीमास	प्रसिद्ध नक्षत्र
१.	चैत्र	श्रीराम नवमी, वेदारम्भ, मधुमास	अप्रैल	चित्रा
२.	वैशाख	बुद्धपूर्णिमा, शंकराचार्यजयन्ती, अक्षयतृतीया	मई	विशाखा
३.	ज्येष्ठ	गंगादशहरा, निर्जलाएकादशी	जून	ज्येष्ठा
४.	आषाढ़	रथयात्रा, गुरूपूर्णिमा-व्यासपूजा	जुलाई	पू.षाढ़ा
५.	श्रावण	रक्षाबन्धन, वैदिकश्रावणी कर्म	अगस्त	श्रवण
६.	भाद्रपद	श्रीकृष्णजन्माष्टमी, अनन्त चतुर्दशी	सितम्बर	पू.भाद्रपद
७.	आश्विन	पितृपक्ष-नवरात्रि, शरत्पूर्णिमा	अक्टूबर	अश्विनी
८.	कार्तिक	हरिप्रबोधिनी एकादशी, देव दीपावली	नवम्बर	कृत्तिका
९.	मार्गशीर्ष	स्कन्द एवं चम्पाषष्ठी, गीता जयन्ती	दिसम्बर	मृगशीर्ष
१०.	पौष	मकरसंक्रान्ति, गुरुगोविन्दसिंह जयन्ती	जनवरी	पुष्य
११.	माघ	माघीपूर्णिमा, संतरविदासजयन्ती, वसन्तपंचमी	फरवरी	मघा
१२.	फाल्गुन	महाशिवरात्रि, होली, बसन्तोत्सव	मार्च	उ.फाल्गुनी

ये नक्षत्र पूर्णिमा में प्राय: उपलब्ध रहते हैं। इन्हीं के नाम पर बारह मासों का नाम पड़ा है। इन्हें मधु-माधव-शुक्र-शुचि-नभ-नभस्य-ईष-ऊर्ज-सह-सहस्य-तप:-तपस्य भी कहते हैं।

हिन्दी वार

क्रम	नाम	अंग्रेजी नाम
१.	रविवार, सूर्यवार	संडे
२.	सोमवार, चन्द्रवार	मंडे
३.	मंगलवार, भौमवार	ट्यूज्डे
४.	बुधवार	वेडनेसडे
५.	गुरुवार, बृहस्पतिवार	थर्सडे
६.	शुक्रवार, भृगुवार	फ्राईडे
७.	शनिवार, मन्दवार, शनिश्चर	सैटर डे

हिन्दी अङ्क

१	२	३	४	५	६	७	८	९ (६)
एक	दो	तीन	चार	पाँच	छ:	सात	आठ	नौ (नव)॥

हिन्दी मासों एवं वारों को याद रखे तथा इन्हें व्यक्तिगत जीवन में प्रयोग में लायें।

भवन

गृहस्थ हिन्दू अपने भवन (मकान, घर) को ही अपना साधना स्थल बनाकर उसमें सुखपूर्वक सपरिवार अपने धर्म का पालन करते हुए इस पृथ्वी पर दीर्घकाल तक निवास करता है। गृह में स्थित गृहस्थ कहलाता है। वह गार्हपत्य अग्नि से अपनी समस्त धार्मिक क्रियाओं का संचालन करता है। घर में रहते हुए वह अन्य आश्रमों तथा अतिथियों का भी भरण-पोषण करता है। हिन्दू समाज अपने घर को पवित्र देव मंदिर की तरह रखता है। मंदिर का अर्थ होता है- देव निवास स्थान। जिस घर की पवित्रता बनी रहती है, वह घर मंदिर ही होता है।

हिन्दू अपने घरों को भीतर और बाहर स्वच्छ एवं पवित्र रखता है। इसके लिए वर्ष में अनेक बार वह विशिष्ट उत्सवों पर घर की सफाई भी करता है। दीपावली, होली तथा नवरात्रियों में हिन्दुओं के घर मंदिरों की तरह धुले तथा साफ-सुथरे होते हैं।

हिन्दू अपने घरों में तुलसी, बेलवृक्ष, शमीवृक्ष, दमनक, हरश्रृंगार, गुलाब, गेंदा, चाँदनी आदि पौधों को लगाकर रखता है। तुलसी के बिना हिन्दू घर की पहचान नहीं बन पाती। एक या एक से अधिक तुलसी के पौधे हिन्दुओं के घरों में लगे होते हैं। तुलसी की पूजा, दीपदान जहाँ हिन्दू महिलायें करती हैं, वहीं मौसम में बदलाव के समय तुलसी की पत्तियाँ, कालीमिर्च के साथ लेने से या काढ़ा पीने से ऋतुजनित बीमारियों से बचाव होता है। प्राचीन भारत में हिन्दू अपने भवन के मुख्य द्वार को मंत्रों या दिव्य चित्रों को उकेर कर सजाता था। अब शैली में बदलाव होने से टाईल्स के देवी-देव के चित्र अथवा पत्थर या धातु की मूर्तियाँ मुख्य दरवाजे पर लगाई जा रही हैं। इस तरह से हिन्दुओं का भवन सात्विक, स्वच्छ, धर्ममय वातावरण से परिपूर्ण होता है।

हिन्दुओं ने अपने भवनों के निर्माण में हिन्दू वास्तुशैली का ही उपयोग किया। यह वास्तुशैली भी विश्वकर्मा और मय के सिद्धान्त भेद से दो प्रकार की है। इन दोनों शैलियों में धार्मिक एवं दिव्य पार्थिव विन्यास प्रायशः एक हैं। भवन का निवेश शैली भेद से बदल जाता है। इन दोनों शैलियों में वास्तुपुरुष की परिकल्पना में कोई भेद नहीं है। वस्तुतः भवन निर्माण का मूल स्वरूप वेदों से उपवेद के रूप में संग्रहित होने से पूरे भारत वर्ष में एक जैसा है। इसमें मूल स्वरूप कहीं भी खण्डित नहीं होता है।

हिन्दू अपने भवनों को दस दिशाओं के माध्यम से सुव्यवस्थित करता है। जहाँ पूर्व में ईशान कोण पर मुख्यद्वार, अतिथि आगार होता है, वहीं अग्निकोण में भोजनालय, दक्षिण दिशा में आवासीय कक्ष रहते हैं और प्रायशः भूमि खुली रखी जाती है जिससे हवा-पानी का प्रवेश घर में होता रहे। दक्षिण दिशा की ओर वृक्ष नहीं लगाये जाते हैं। दक्षिण दिशा को अन्य दिशाओं की अपेक्षा ऊँचा रखते हैं। दक्षिण की दीवार में पूर्वी कोण में एक भाग को छोड़कर बाहरी दरवाजा दिया जाता है। पश्चिम दिशा में गृहपति नैर्ऋत्य कोण के कक्ष में निवास करता है। प्रायशः पश्चिम की ओर सीढ़ी, वैकल्पिक जल व्यवस्था तथा स्नानागार आदि की व्यवस्था होती है। पर्याप्त भूमि होने पर घर के पिंड से लगा हुआ स्नान एवं शौचगृह होते हैं। पश्चिम के वायव्य कोण के पास एक कक्ष (पद) को छोड़कर मुख्यद्वार देने की व्यवस्था है। उत्तर दिशा में वायव्य एवं ईशान दोनों कोणों के पास कोण को छोड़कर मुख्यद्वार दिया जाता है। ईशान कोण में पूजनकक्ष या देवगृह को रखते हैं। गृहपिण्ड का मध्यभाग ब्रह्मस्थान कहलाता है। प्राचीन भारत में यह आँगन के बीच में पड़ता था। आज आँगन की उपलब्धता कम हो गयी है। ब्रह्मस्थान पर किसी भी प्रकार का निर्माण नहीं होता या भारी वस्तु नहीं रखी जाती है। हिन्दू अपने घरों के ऊपर वृक्षों की छाया नहीं पड़ने देता है। अतः घर के उत्तर भाग में ही गृहवाटिका लगायी जाती है। यदि विशाल पेड़ होते हैं तो उन्हें घर से दूर लगाया जाता है, जिससे उनकी छाया मकान पर न पड़ सके।

हिन्दू अपने घरों को प्रायशः सफेद, पीला, क्रीम, आसमानी, हल्का हरा आदि रंगों से शोभायमान बनाता है। काला और गाढ़ा लाल वर्ण का प्रयोग प्रायशः गृहस्थ हिन्दू अपने घरों में नहीं करते हैं। जहाँ लाल रंग मंदिरों एवं देवतायनों में सर्वाधिक स्थान पाते हैं, वहीं काला रंग प्रायशः काली मंदिर या गुफाओं में ही देखने को मिलता है। वस्तुतः हिन्दू वासन्तिक रंग तथा सफेद रंग ज्यादा पसंद करता है। इन रंगों का सम्बन्ध चेतना के स्तर से है। जहाँ पीला, क्रीम एवं सफेद रंग साधना एवं गृहस्थी में सहयोगी होता है, वहीं लाल रंग बल, शौर्य तथा देवी पूजा में सहयोगी होता है।

हिन्दू अपने घरों में प्रायशः देवी, देवों, अपने इष्ट की मूर्तियों को रखता है, वहीं घर में प्रवेश तथा निर्गम के समय श्री गणेश जी का दर्शन करने हेतु उनकी प्रतिमा को लगाये रखता है। हिन्दू घरों में प्रातः-सायं दशांग, गुगुलू, अगरबत्तियाँ जलती हैं। घी एवं तेल के दीप भी विविध अवसरों पर जलाये जाते हैं। दीपोत्सव हिन्दुओं को बहुतप्रिय है।

हिन्दुओं के घरों में प्रायशः गौरैया, मैना, सुग्गा या अन्य पंक्षी स्वतः आते जाते रहते हैं। उनके निवास को कोई उजाड़ता नहीं है। हिन्दू स्वभावतः घर में पर्याप्त जगह होने पर गाय पालता है। गाय को वह माँ का दर्जा देता है। घर के भीतर वायव्य कोण में पशुशाला की व्यवस्था रहती है।

हिन्दुओं के घरों में पानी की व्यवस्था स्वच्छता एवं पवित्रता की दृष्टि से संसिद्ध होती है। जहाँ स्नान आदि के लिये स्वच्छ जल चाहिए, वहीं हवन, पूजन, भोजन में पवित्र जल की आवश्यकता होती है। प्राचीन भारत में मिट्टी के घड़े, ताँबे के कलश, फूल एवं चाँदी के पात्र प्रयोग में लाये जाते थे। आज इन सबका स्थान स्टील ने ले लिया है। आज भी पूजन में पीतल तथा ताँबे के पात्रों का प्रयोग होता है। स्टील का पात्र पूजन में प्रायशः नहीं प्रयुक्त होता है।

हिन्दू अपने घरों में पूजन का वस्त्र अलग रखता है और बाहरी वस्त्र को अलग रखता है। सिल्क एवं ऊन के कपड़ों को पवित्र एवं शुभ मानकर वह श्रेष्ठ कार्यों के समय प्रयोग में लाता है। हिन्दुओं के घर में शय्या की लकड़ी प्रायशः आम, सागौन, साखू, महुआ, देवदार आदि के होते हैं। वह प्रायशः शयन कक्ष में बाल कृष्ण या अपने इष्ट देव का तस्वीर रखता है। हिन्दू अपने घरों में आदर्श (दर्पण, सीसा) रखता है। प्रातःकाल उठ कर स्वयं को देखना तथा गुरुजनों एवं देवप्रतिमाओं को प्रणाम करना उसकी आदत में है।

हिन्दू अपने संस्कारों-महोत्सवों में अपने घर को भीतर बाहर से रंग रोगन करके शुभ एवं सुसज्जित बनाता है। प्रायशः रविवार के दिन घरों की विशिष्ट सफाई होती है। घर के फर्श को पानी से धोना एवं पोंछना प्रतिदिवसीय कार्य में संलग्न है। इसी तरह प्रतिदिवसीय उपयोग के कपड़ों को हिन्दू प्रतिदिन पानी से अवश्य धोता है। वर्ष में प्रायशः १६०० से अधिक व्रत, पर्व, महोत्सव मनाने वाला हिन्दू समाज अपने घरों को साफ-सुथरा और पवित्र रखता है। हिन्दू घरों की पहचान तुलसी, गाय, अल्पना, देवप्रतिमा आदि से होती है। आज भी घर के बाहरी मुख्य ऊँचे भाग पर गणेश या हनुमान की प्रतिमा लगी होती है, जिसकी वर्ष में एक बार पूजा होती है। अनेक घरों में नैर्ऋत्य कोण को ऊँचा करने हेतु त्रिशूल गाड़ा जाता है। जिस भवन में चारों दिशाओं में चार दरवाजे होते हैं वहाँ मुख्य दरवाजे को विशिष्ट किवाड़ और आकृतियों से सुसज्जित रखा जाता है। हिन्दुओं की प्रथम पसंद पूर्वाभिमुख द्वार, अग्निकोण में भोजनालय तथा ईशानकोण में पूजन कक्ष होता है। अपनी प्रवृत्ति के अनुसार हिन्दू अपने घरों को धार्मिक, सारस्वत, सौन्दर्यात्मक तथा बल-ओज से परिपूर्ण आकृतियों से सुसज्जित रखता है।

स्वर्ण

हिन्दू अपने जीवन में स्वर्ण धातु को अपरिहार्य मानता है। एक ओर जहाँ स्वर्ण महार्घ रत्न है, वहीं दूसरी ओर विश्वस्तरीय मानक मूल्य होने के कारण जीवन में महत्त्वपूर्ण धन भी है। शास्त्रों के अनुसार मणि-मंत्र-औषधि का समवेत प्रभाव मानव जीवन के लिए कल्याणकारी एवं रक्षक होता है- **अचिन्त्यस्तु प्रभावो भवति मणिमन्त्रौषधिनाम्।** मणि-मन्त्र और औषध तीनों मिलकर अभूतपूर्व शुभ परिणाम देते हैं। अत: हिन्दू अपने जीवन में मणि-मन्त्र और औषध का एक साथ प्रयोग करता है।

हिन्दू पुरुष और स्त्री स्वर्ण अवश्य धारण करते हैं। स्वर्ण का प्रयोग संस्कारों तक में समाविष्ट है। कर्णवेध संस्कार में कान में स्वर्ण अवश्य पहना जाता है। प्राचीन भारत में नाभि के ऊपर स्वर्ण पहनने की प्रथा अत्यन्त प्रबल थी। उँगली, भुजा, गला, नाक, कान, कलाई तथा माथे पर स्वर्ण धारण करने की प्रथा भारत में अत्यन्त प्राचीन है। मान्यता है कि स्वर्ण अग्नि का पुत्र है और यह अत्यन्त पवित्र, तेज से परिपूर्ण तथा अग्नि के स्थान में प्रयुक्त होने वाला है। अत: देवी-देवगण माथे पर पूर्णमुकुट के रूप में तथा अर्धमुकुट के रूप में एवं भुजाओं, गले, उँगलियों में अंगूठी रत्न के रूप में स्वर्ण को धारण करते हैं। स्वर्ण के बिना हिन्दुओं का कोई भी देवी-देव नहीं रहता।

सृष्टि के आरम्भ में जातवेदस (अग्नि) के द्वारा स्वर्ण की उत्पत्ति हुई। हिरण्यगर्भ से अग्नि की उत्पत्ति तथा अग्नि के रेत (वीर्य) से स्वर्ण की उत्पत्ति हुई। इस स्वर्ण को पृथ्वी ने अपने भीतर छुपाकर रखा। अत: स्वर्ण धन अपने भीतर रखने के कारण पृथ्वी को वसुमति कहते हैं। पृथ्वी पर दक्षिण अफ्रीका के मध्य में मेरुपर्वत (माउण्ट केन्या) है जिसकी गोद में जाम्बूनद बहता है। वहाँ का स्वर्ण श्रेष्ठतम माना गया है, जिसे देवगण भी धारण करते हैं-

एवं सुवर्णमुत्पन्नमपत्यं जातवेदसः।
तत्र जाम्बूनदं श्रेष्ठं देवानामपि भूषणम्।।
ततः प्रभृति चाप्येतत् जातरूपमुदाहृतम्।
रत्नानामुत्तमं रत्नं भूषणानां तथैव च।।

महाभारत, दानधर्मपर्व, ८५/८३-८४

अग्नि की कान्ति के सदृश ही स्वर्ण की कान्ति होती है। अत: इसे जातरूप भी कहते हैं। अग्नि ने जब से पृथ्वी को स्वर्ण प्रदान किया तभी से ऋषि एवं सामान्य जनों ने स्वर्ण को श्रेष्ठतम रत्न एवं धातु स्वीकार किया।

पृथ्वी को पवित्रता प्रदान करने का कार्य स्वर्ण करता है। अतः अग्नि के स्थान पर तत्तुल्य परिणाम प्राप्त करने हेतु स्वर्ण दान किया जाता है। सभी धातुओं से अधिक पवित्र, मांगलिक वस्तुओं में सर्वाधिक शुभ एवं श्रेष्ठ स्वर्ण है। स्वर्ण के देवता साक्षात् अग्नि हैं। पृथ्वी पर मंत्रवेत्ता ऋषि, गो और स्वर्ण सर्वाधिक पवित्रतम माने गये हैं। स्वर्ण में अग्नि और सोम दोनों तत्त्वों का निवास होता है। अतः वैदिक काल से लेकर आज तक यह धारणा बनी हुई है कि स्वर्ण अग्नि का उत्पाद है। यदि स्वर्ण पृथ्वी का उत्पाद होता तो उसमें सुगन्धि अवश्य होती। **तत्र गंधवती पृथ्वी** परिभाषा के अनुसार पृथ्वी से उत्पन्न समस्त पदार्थों में सुगन्धि अवश्य होती है। अतः ब्रह्मतत्त्व से युक्त, गुप्त गमन करने वाले अग्नि देवता की उत्पत्ति सृष्टि में होती है और अग्नि से काञ्चन की उत्पत्ति इस पृथ्वी पर होती है-

हिरण्यरेता इति वै ऋषिभिर्विबुधैस्तथा।
पृथिवी च तदा देवी ख्याता वसुमतीति वै।।
पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम्।
यत् सुवर्णं स भगवानग्निरीशः प्रजापतिः।।
पवित्राणां पवित्रं हि कनकं द्विजसत्तमाः।
अग्नीसोमात्मकं चैव जातरूपमुदाहृतम्।।
अग्नेरपत्यमेतद् वै सुवर्णमिति धारणा।।
ब्रह्मणो हि प्रभूतोऽग्निरग्नेरपि च काञ्चनम्।।

महाभारत, दानधर्मपर्व, ८५/७९, ८५-८६, १४७, १५१

कुछ लोग स्वर्ण को अर्धतेजस् और अर्धपार्थिव मानते हैं, जबकि सर्वत्र स्वर्ण को तेजस् माना गया है। अग्नि से स्वर्ण, विष्णु से द्यावापृथ्वी तथा सूर्य से गौ की उत्पत्ति हुई है। निष्कर्षतः हिन्दू अपने जीवन में स्वर्ण दान को श्रेष्ठतम दान मानता है। अतः इसे धारण करने से लेकर दान देने तथा संचय करने हेतु सन्नद्ध रहता है। आज भी भारत वर्ष में विश्व का सर्वाधिक स्वर्ण संचय बना हुआ है। यह पवित्रता, समृद्धि, मांगल्य, मेध्य का प्रतीक है। पूजन में कुशा और स्वर्ण को तुल्य पवित्र माना गया है। स्वर्णदान श्रेष्ठतम दान में परिगणित है-

अग्निर्हि देवताः सर्वाः सुवर्णं चाग्निरुच्यते।
तस्मात् सुवर्णदानेन तृप्ताः स्युः सर्वदेवताः।।

महाभारत, दानधर्मपर्व, १४५ अध्याय

तुलसी

भगवान् विष्णु की प्रिया पृथ्वी पर प्रत्यक्ष देवता के रूप में वनस्पति बनकर अवतीर्ण हुयीं। श्रीहरि के गले में माला के रूप में, शालिग्राम के सम्पर्क में पत्र के रूप में और वैष्णव भक्तों के हृदय में माता के रूप में ये विद्यमान रहती हैं। कालनेमी की पुत्री वृन्दा का विवाह समुद्रपुत्र जलन्धर से हुआ था। जलन्धर भगवान् शिव को मारकर पार्वती जी को प्राप्त करना चाहता था। भगवान् विष्णु ने छल से वृन्दा का पातिव्रत्य भंग किया तब जाकर जलन्धर को शिव जी ने मारा। वृन्दा ने इस छल से आहत होकर योगाग्नि से अपने को भस्म कर लिया। वृन्दा के भस्म से तुलसी उत्पन्न हुईं। इनका विवाह दम्भासुर के पुत्र शंखचूड़ से हुआ। शंखचूड़ का वैर शिव जी से हुआ। विष्णु भगवान् ने जब तुलसी का छल से पातिव्रत्य नष्ट किया तब जाकर शंखचूड़ का वध शिव जी के हाथों से हो सका। तुलसी ने विष्णु को पत्थर होने का शाप दिया। विष्णु ने उन्हें गण्डकी नदी होने को कहा। गण्डकी नदी में ही शालिग्राम (विष्णु, पत्थर) मिलते हैं। वृन्दा के भस्म से तुलसी, आँवला (धात्री) और मालती की उत्पत्ति हुई थी।

औषधीय गुणवाली तुलसी में एक अपूर्व सुगन्धि भी होती है। श्यामा तुलसी, हरित तुलसी, अतिसुगन्धित तुलसी की कई एक प्रजातियाँ भारतवर्ष में पायी जाती हैं। ये मैदानों, जंगलों से लेकर आंगन के मध्य में वेदी पर और चहारदीवारी के अन्दर चौरे पर विराजमान पायी जाती हैं। मंदिरों के परिसर तुलसी और दमनक से महकते रहते हैं।

प्रदोषकाल में तुलसीपौधा के नीचे दीपक प्रज्वलित कर पूजन करने से बाधायें दूर होती हैं। भगवान् विष्णु को अर्पित किये जाने वाले सभी प्रकार के नैवेद्य प्रसाद में तुलसीदल अवश्य ही डाला जाता है। अनेक प्रकार की बीमारियों में औषधि के रूप में तुलसी का पत्र एवं मंजरी का प्रयोग आयुर्वेदीय दृष्टि से भी स्वीकार्य होता है। इनमें शीत बाधा, कफ, श्वास कष्ट, त्वचा रोग, मनो रोग, कण्ठ घर्घरता, पारा की कमी आदि को ठीक करने का अपूर्व गुण-धर्म विद्यमान है। तुलसी दल के भक्षण से अनेक प्रकार के विष शरीर में पहुँच कर समाप्त या शाँत हो जाते हैं। बिना वृक्ष हिलाये तुलसीदल को तोड़ना चाहिए। इससे तुलसी को झकझोरने और कष्ट देने का पाप व्यक्ति को नहीं लगता है। तुलसी के साथ देवता की तरह व्यवहार करना चाहिए। तुलसी दल तोड़ने का मंत्र इस प्रकार से है-

तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिया।
चिनोमि केशवस्यार्थे वरदा भव शोभने।।
त्वदङ्गसम्भवैः पत्रैः पूजयामि यथा हरिम्।
तथा कुरु पवित्राङ्गि! कलौ मलविनाशिनि।।

आह्निकसूत्रावलिः।।

मोक्षैकहेतोर्धरणीधरस्य विष्णोः समस्तस्यगुरोः प्रियस्य।
आराधनार्थं पुरुषोत्तमस्य छिन्दे दलं ते तुलसी क्षमस्व।।

द्वादशी, अमावास्या, पूर्णिमा तिथियों में, रवि, मंगल, शुक्र वारों में, सूर्य संक्रान्ति के दिन, वैधृति एवं व्यतिपात योगों में तथा शौचकाल में तुलसीदल न तोड़ें। मध्याह्न काल, संध्या तथा रात्रि में, शरीर में तेल लगा कर तुलसीदल नहीं तोड़ना चाहिए। शालिग्राम की पूजा तुलसी के बिना नहीं होती। अत: वर्ज्य स्थिति में गिरे हुए तुलसीपत्र का चयन कर पूजन करना चाहिए- **'निषिद्धे दिवसे प्राप्ते गृह्णयाद् गलितं दलम्।'** स्नान किये बिना तथा जूता-चप्पल पहन कर तुलसी दल का चयन करना पापकर्म है-

अस्नात्वा तुलसीं छित्वा सोपानत्कस्तथैव च।
स याति नरकं घोरं यावदाभूतसम्प्लवम्।।

पद्मपुराणम्।।

तुलसी की जड़ में तीर्थों का वास रहता है। मध्य भाग में सभी देवता निवास करते हैं। अग्रभाग में वेद का वास माना गया है। तुलसी के दर्शन से पाप कटते हैं, स्पर्श से शरीर पवित्र होता है, प्रणाम करने से रोग दूर होते हैं, खाने से शीतबाधा नष्ट होती है, पूजा करने से विष्णु की कृपा होती है। मांस खाकर, मद्यपीकर, अस्पृष्ट को छूकर जो कान पर तुलसीदल धारण करता है वह पवित्र हो जाता है। अन्न राशि में पाँच पत्र तथा भोजन में तीन पत्र तुलसी के डालने चाहिए। तुलसी का पत्ता पर्युषित (बासी) नहीं माना जाता है।

भगवान् शालिग्राम, कृष्ण या विष्णु से तुलसी का विवाह कराते समय निम्नलिखित मंत्र बोला जाता है- **'क इदं कस्मा अदात् कामः कामायादात् कामो दाता कामः प्रतिगृहीता कामं समुद्रमाविश कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैत्तत्ते वृष्टिरसि द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी प्रतिगृह्णातु।।'**

●

बिल्वपत्र

बिल्वपत्र को अमृत फल कहा गया है। इसके फल को खाने से शरीर स्वर्ण कान्ति की तरह चमकता है। इसकी पत्तियाँ मनुष्य के लिए औषध हैं और देवों के लिए अर्पणीय हैं। बिल्व को बेल या 'श्रीफल' भी कहा जाता है। इसकी जड़ों को कूट कर चूर्ण बनाकर खाया जाता है। गर्मी के दिनों में यह श्रेष्ठ पानक (पन्ना) के रूप में लिया जाता है। यह सोम तत्त्व, अग्नि तत्त्व और स्वर्ण तत्त्व को शरीर में पहुँचाता है। यह सृष्टि में सोम, अग्नि और प्राणतत्त्व को वितरित करता है। यह अनेक रोगों का शामक है।

बिल्वपत्र भगवान् शिव तथा महालक्ष्मी का प्रिय वनस्पति है। यह तप से उत्पन्न वृक्ष है, जो दरिद्रता को दूर करता है। भगवती महालक्ष्मी का यह वृक्ष धनदायी होने के साथ-साथ रोगापहारक भी है। ऋग्वेद में **'वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः'** कह कर इसी रहस्य को उद्घाटित किया गया है। इसके तीन पत्र भगवान् शंकर के त्रिनेत्र के प्रतीक हैं जो सूर्य, चन्द्र, अग्नि के सूचक तथा त्रिगुण (सत्, रजः, तमः) के रूप में मर्यादा को प्राप्त हैं। भगवान् शिव के लिङ्गात्मक शरीर पर इसे चढ़ाने से तीन जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं-

त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्र्ययायुधम्।
त्रिजन्मपापसंहारं बिल्वपत्रं शिवार्पणम्।।

इसका फल उदर सम्बन्धी रोगों का शामक है। इसकी पत्तियाँ, जड़ें तथा छाल मधुमेह की रोधक हैं। धन प्राप्ति के लिए श्रीसूक्त का पाठ करके बिल्व की लकड़ी, पत्तियों तथा फल से हवन करना अत्यन्त शुभकारी होता है। प्रदोष के दिन बिल्ववृक्ष को अंक में भर कर श्रीसूक्त का पाठ करने से दारिद्र्य का विनाश होता है। बिल्व वृक्ष की लकड़ी पर, बिल्व के फल से हवन करने पर भगवती लक्ष्मी प्रसन्न होती हैं। शिव मंदिर में बिल्व का वृक्ष, मदार का वृक्ष अवश्यमेव लगाया जाता है। बिल्व शिव का स्वरूप है और माँ लक्ष्मी का प्रिय वनस्पति है। लक्ष्मी को बिल्व पत्र चढ़ाने से स्वर्ण, रजत (चाँदी) और ताम्र की वृद्धि होती है।

बिल्वपत्र तोड़ने का मंत्र-

अमृतोद्भव! श्रीवृक्ष! महादेवप्रियः सदा।
गृह्णामि तव पत्राणि शिवपूजार्थमादरात्।।

आचारेन्दुः।।

लिङ्ग पुराण में लिखा है कि चतुर्थी, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी, सूर्य संक्रान्ति तथा अमावास्या की तिथियों में बिल्वपत्र नहीं तोड़ना चाहिए। यह भगवान् शंकर को इतना प्रिय है कि चढ़े हुए बिल्वपत्र को धोकर दुबारा चढ़ाने की भी बातें ग्रन्थों में लिखी गयी हैं, बशर्ते जब बिल्वपत्र उपलब्ध न हो। बिल्वपत्र दूसरे दिन भी बासी नहीं होता।

अर्पितान्यपि बिल्वानि प्रक्षालयापि पुनः पुनः।
शंकरायार्पणीयानि न नवानि यदि क्वचित्।।

स्कन्दपुराणम्।।

पीपल

भारत वर्ष में प्राचीन काल से पीपल को पूज्य स्थान प्राप्त है। इसकी प्रदक्षिणा, पूजा तथा गृहकर्म में न जलाने की स्थिति आरम्भ से ही हिन्दू जाति में बनी हुई है। पीपल को वासुदेव वृक्ष मानकर इसकी पूजा की जाती है। ईंधन में इसकी लकड़ियों का प्रयोग नहीं होता है। गाँवों में चारों दिशाओं में पीपल लगाने की प्रथा रही है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने वृक्षों में अपने को अश्वत्थ (पीपल) कहा है।

वनस्पतियों में पीपल चौबीस घंटें लगातार प्राणवायु (आक्सीजन) का विसर्जन करता है। पीपल के कारण पृथ्वी का पर्यावरण सन्तुलित रहता है। जैसे-जैसे पृथ्वी पर से पीपल घटता जाता है, वैसे वैसे पर्यावरण में प्राणवायु की कमी होती है। पीपल के बढ़ने से वायुमण्डल में प्राणवायु की प्रतिशत मात्रा बढ़ती है। पीपल के नीचे एकान्त में ध्यान एवं योगासन करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है। चाहे पिप्पलाद ऋषि हों या बोधिसत्त्व इनका सीधा सम्बन्ध पीपल से है। मनुष्य को जीने के लिये शुद्ध वायु अनिवार्य है। शुद्ध वायु की मात्रा बढ़ाने में पीपल अपूर्व भूमिका का निर्वाह करता है। अत: इस जीवनदायी वृक्ष को हिन्दू अपने हाथों से नहीं काटता है। ऐसी मान्यता है कि जब पीपल शतपर्ण हो जाता है, अर्थात् इसमें सौ पत्ते निकल आते हैं, तब यह नहीं काटा जाता है। आज धीरे-धीरे पृथ्वीं पर प्राणवायु की मात्रा कम हुई है। अत: पृथ्वी पर पीपल वृक्ष लगाने की आवश्यकता है।

पृथ्वी पर अश्वत्थ की उत्पत्ति मनुष्योत्पत्ति से पूर्व की है। पृथ्वी को प्राणवायु से भरने हेतु जिन दिव्य औषधियों की उत्पत्ति हुई उनमें पीपल महत्त्वपूर्ण है।

इसके पत्ते-पत्ते में जीवन को दीर्घ बनाने वाली सूर्य रश्मियों का समावेश है। शनि ग्रह से उत्पन्न पीड़ा को दूर करने हेतु पीपल के नीचे दीप जलाया जाता है। इसकी सात बार प्रदक्षिणा की जाती है। अश्वत्थ की पूजा और प्रदक्षिणा जीवनदायिनी होती है। ग्रीष्म काल में इसकी शीतलता तन-मन को शान्ति देती है। पञ्चवटों में पीपल का अन्यतम स्थान है। इसे देव वृक्ष मानकर मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा को जो जल और दीपज्योति दी जाती है वह उसे प्राप्त होती है। अत: भारतवर्ष में इस देववृक्ष को अपने हाथों नहीं काटा जाता है। शतपत्र होने से पहले इसे उखाड़ा जाता है या फिर हीनकर्म करने वाले लोग इसे काटते हैं। पीपल का फल खाया भी जाता है, पर इसमें प्रायश: कीड़े पड़े रहते हैं। जीवन में धार्मिक कार्यों के अतिरिक्त इसकी उपयोगिता कम होने के कारण लोग इसे नहीं लगाते हैं। प्रकृति द्वारा स्वयं यह वृक्ष उगता एवं फैलता रहता है। पींपल का वृक्ष अत्यन्त विशाल होता है। देवभूमि पर इसका लगना शुभ माना जाता है। अत: मन्दिरों में पञ्चवटी में इसे लगाया जाता है। पञ्चपल्लवों को श्रीहरि या अन्य देवी-देव को समर्पित करते समय पीपल हेतु निम्नलिखित मंत्र पढ़ा जाता है-

ॐ अश्वत्त्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाज ऽइत्किलासथ यत्तसनवथ पूरुषम्।।

पीपल वृक्ष के नीचे बैठकर अनेक देवी-देवों की पूजा होती है। जिस तरह से निम्ब वृक्ष देवी तत्त्व के लिए आधार है, उसी तरह से पीपल श्रीविष्णु, श्री हनुमान, शनिदेव तथा नृसिंह भगवान् के लिए आधारभूत है। पीपल वृक्ष के नीचे ध्यान लगाने से योग की स्थिति निरन्तर प्रबल होती है। अत: हिन्दू जीवन में पीपल तुलसी की तरह पूज्य और संरक्ष्य वृक्ष है।

शमी

भारत वर्ष में शमी वृक्ष को यज्ञ वृक्ष के रूप में जाना जाता है। इस वृक्ष का प्रयोग यज्ञीय कर्मकाण्ड में होता है। सृष्टि के आरम्भ में तपस्या करने हेतु अग्नि ने एकान्त ढूँढ़ना शुरु किया तब वे इसी शमी वृक्ष के भीतर छुपे थे। बहुत प्रयत्न के बाद देवों ने अग्नि को शमी वृक्ष के भीतर ढूँढ़ा था। तब से लेकर आज तक शमी यज्ञ कर्म, पूजन, हवन कर्म में उपयोग में आ रहा है। शमी वृक्ष की पत्तियों को शिव एवं विष्णु को चढ़ाया जाता है।

यज्ञ कुण्ड में अग्नि प्रज्ज्वलित करने हेतु ब्रह्मचारी मूञ्ज की रस्सी से शमी के बेलन द्वारा शमी के आधार पर मंथन करता है। आधार में रुई पड़ी रहती है। मंत्र पाठ और मन्थन के प्रभाव से यज्ञ अग्नि की उत्पत्ति होती है। यह प्रक्रिया आज भी यज्ञ में देखने को मिलती है। शमी के भीतर अग्नि होने के कारण इसे अत्यन्त पवित्र माना जाता है। शमी के फूल और पत्तियाँ शिव जी एवं विष्णु भगवान् को अतिप्रिय हैं। शमी के हृदय में अग्नि का निवास होने से इसे परम पवित्र तथा यज्ञवृक्ष स्वीकार किया गया है। जिस तरह से अरणि मन्थन करके शमी से अग्नि प्रकट की जाती है, उसी तरह से गुरु के भीतर मन्थन करके उनसे विद्या प्रकट की जाती है। फलतः अग्नि, शमी और गुरु सदृश्य पूज्य एवं पवित्र हैं। वास्तुशास्त्र के अनुसार घर के मुख्य दरवाजे पर शमी को लगाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि जिस घर में शमी लगा होगा उस घर में शनि ग्रह का प्रकोप नहीं होगा। आज नगरों में घर-घर में शमी का पौधा लगा मिलता है। इसकी लकड़ियों एवं पत्तियों से हवन करने पर शनि देवता संतुष्ट होते हैं। अर्जुन ने अज्ञातवास के समय गाण्डीव धनुष, दिव्य तरकस तथा दिव्य ब्रह्मास्त्र आदि शस्त्रास्त्रों को शमी के ही कोटर में छुपा कर रखा था। शमी का वृक्ष परमाणु अस्त्र या परमायुधों को सुरक्षित रखता है। शमी का वृक्ष अत्यन्त विशाल तथा कठोर होता है। इसकी ऊँचाई सौ फीट से लेकर संवा सौ फीट तक होती है। यह देववृक्ष होने के कारण मंदिरों में या वाटिका में स्थान प्राप्त करता है। पीपल एवं आँवला वृक्ष की तरह शमी वृक्ष की पूजा भारतवर्ष में की जाती है। शमी को अमंगलनाशक, पापनिवारक तथा दुःस्वप्ननाशक माना गया है। भगवान् श्रीराम को भी यह वृक्ष अत्यन्त प्रिय था। भगवान् श्रीराम ने इस वृक्ष की पूजा की थी। प्राचीन भारतवर्ष में इसे यज्ञ कार्य में चयनित करते समय मंगल वाद्य एवं मंत्र घोष का प्रयोग किया जाता था-

शमीयुक्तं जगन्नाथं भक्तानामभयंकरम्।
अर्चयित्वा शमीवृक्षमर्चयेच्च ततः हरिम्।।

अमंगलानां शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च।
दुःस्वप्ननाशिनीं धन्यां प्रपद्येऽहं शमीं शुभाम्।।

शमी शमयते पापं शमी लोहितकण्टकी।
धारिण्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियवादिनी।।

•

दूर्वा

हिन्दू जीवन पद्धति में मांगलिक औषधियों में दूर्वा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। दूर्वा की अद्भुत शक्ति को ऋषियों ने आरम्भ काल से ही परीक्षित कर रखा था। महर्षि दूर्वासा दूर्वा का रस पीकर ही समग्र जीवन जीवित रहे और योग बल से उन्होंने पृथ्वी पर अपूर्व कार्य किया। दूर्वा रस में जीवनी शक्ति की प्रचुरता है। हिन्दू समाज दूर्वा को पवित्र, मांगलिक और औषध गुणों से परिपूर्ण मानता है। विवाह के समय ग्रीष्मकाल में दूर्वा में महुआ के फूल गूंथ कर महिलाएँ केश में धारण करती थीं। विवाह का मांगलिक कंगन भी दूर्वा की लता से बनता है। दूर्वा वंशवृद्धि का प्रतीक घास है। अतः इसे पूजा में स्थान प्राप्त हुआ। गर्भाधान संस्कार में पति दूर्वा रस (एक-दो बूँद) पत्नी की दाहिनी नासिका के छिद्र में समंत्रक डालता है। दूर्वा में थोड़ी-थोड़ी जगह पर काण्ड (पर्व, पोर) होता है। हरेक काण्ड से नयी लत्तर निकल आती है। कहा जाता है कि दूर्वा एक लत्तर से सर्वत्र फैल जाती है। अतः एक से अनेक होने का प्रतीक है दूर्वा। इसके लिये जो मंत्र प्रयुक्त हुआ है, उसमें भी यही भाव है अर्थात् जिस तरह से दूर्वा एक से सौ, सौ से हजार हो जाती है उसी तरह हमारी वंश परम्परा कठोर परिस्थितियों में भी बढ़ती रहे-

ॐ काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।
एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च।।

श्री गणेश की आराधना दूर्वा के बिना पूरी नहीं होती। उन्हें इक्कीस दूर्वा दल चढ़ाया जाता है। षोडशोपचार में दूर्वा मंगलद्रव्य होने के कारण सिंदूर से पहले देवता को चढ़ायी जाती है।

शंख

सृष्टि के आरम्भ से ही शंख भारतीय पूजा पद्धति में संग्रहीत है। इसे अत्यन्त पवित्र, ओजवर्धक, शत्रुध्वंसक और पापनाशक माना गया है। जीवन के लिए जो श्रेय और प्रेय दोनों का वर्धक होता है उसे सनातन जीवन पद्धति में; धर्म में स्थान मिलता है। शंख जीवन के लिए भौतिक और आध्यात्मिक उत्थान का कारक है।

शत्रु पराजय के लिए, उन पर विजयश्री प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ शंख प्राप्ति

हेतु ईश्वर से प्रार्थना की गयी है-

"अवरस्पराय शंखध्वम्"

यजुर्वेद, ३०/१९

शंख ध्वनि करनी चाहिए। इससे सभी प्रकार का कल्याण होता है। इसकी ध्वनि शुभ होती है और ब्रह्माण्ड में अनुकूल ओंकार अनुगूंज को प्रसारित करती है। शंख ध्वनि से अंतरिक्षीय प्रदूषण का समापन होता है। शंख निर्माण में आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी पंच तत्त्वों का प्रत्यक्ष समावेश होता है। जिस तरह से मेघ में विद्युत् कौंधती है उसी तरह से शंखध्वनि से ज्योतिस्वरूप तेज कौंधता है। एक साथ पाँचों महाभूत शंख में होते हैं। पंच महाभूत और पंच तन्मात्रायें एक साथ होने के कारण सृष्टि के दस तत्त्व शंख में एक साथ निवास करते हैं। भगवान् विष्णु द्वारा हाथ में आयुध रूप में धारण करने के कारण शंख को सृष्टि में पूज्यत्व प्राप्त हुआ। शंखचूड़ वध के पश्चात् उसकी पत्नी तुलसी की प्रसन्नता के लिए भगवान् ने उसे शंख रूप में धारण किया।

शंख को ध्वनित करने से हृदय, फेफड़ा, कंठ, कान एवं शरीर के खाली स्थान (अवकाश) प्रबलता को प्राप्त करते हैं। फेफड़े, श्वासनली में होने वाले रोग, दमा, अस्थमा, कमजोरी तथा क्षय आदि रोग शंख बजाने वाले को नहीं होते हैं। भक्त बालक ध्रुव की तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु भगवान् ने उनके दाहिने कान में पाञ्चजन्य का स्पर्श करा दिया था। इससे भक्त ध्रुव की एकादश इन्द्रियाँ झनझना कर जाग उठीं और उनके मुख से दिव्य, मंत्रमयी वाणी फूट निकली-

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
संजीवत्यखिल - शक्तिधरः स्वधाम्ना।

भागवतमहापुराणम्, ४/९/६।।

शंख को ओष्ठ के दोनों कोनों या मध्य भाग से स्पर्श कराकर बजाया जाता है। शंखध्वनि, मेघध्वनि, सिंहध्वनि, हाथीध्वनि, मृदङ्ग-नगाड़ा-पटहध्वनि से आकाश प्रफुल्ल होता है। स्कन्दपुराण में लिखा है कि पूजा काल में, आरती के समय, पूजा आरम्भ या पूजा अवसान में जो शंख बजाता है वह सभी प्रकार के पापों से विमुक्त होकर विष्णु भगवान् की सन्निधि को प्राप्त करता है-

यस्तु शंखध्वनिं कुर्यात् पूजाकाले विशेषतः।

विमुक्तः सर्वपापेन विष्णुना सह मोदते।।

शंख में जल भर कर उसे त्रिपादी पर रखा जाता है और उस जल से पूजा के पात्रों को प्रक्षालित किया जाता है। इस तथ्य का विवेचन ब्रह्मवैवर्तपुराण के ब्रह्मखण्ड २६/९७ में प्राप्त होता है-

जलेनापूर्य शंखे च तत्र संस्थापयेद् बुधः।
पूजोपकरणं तेन जलेन क्षालयेत् पुनः।।

अथर्ववेद के चतुर्थकाण्ड के दशम सूक्त में सात मंत्रों के द्वारा 'शंखमणि सूक्त' का प्रतिपादन प्राप्त होता है।

शंख की उत्पत्ति जल में होती है और जल के भीतर विद्यमान वात (वायु) इसमें परिपुष्ट होता है। शंख में स्वर्ण का अंश विद्यमान होता है। इसमें तेज का भी अंश होता है। वस्तुतः स्वर्ण वहीं होता है जहाँ अग्नि (तेज) का अंश होता है। अतः शंख भस्म आयुर्वेद में भेषज रूप में वर्णित है। इसे बजाने से पाप का नाश होता है-

वातान् जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि।
स नो हिरण्यजः शंखः कृशनः पात्वंहसः।।१।।

शंख वादन के अनेक प्रकार होते हैं। इसको अतिविशिष्ट पद्धति से बजाकर शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण किया जाता था-

शंखेन हत्वा रक्षांस्यत्त्रिणो विसहामहे।।२।।

अथर्ववेद में शंख को रक्षक, बुद्धिशोधक तथा विश्वभेषज कहा गया है। यह सभी प्रकार के कुविचारों से रक्षा करता है-

शंखेनामीवाममतिं शंखेनोत सदान्वाः।
शंखो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः।।३।।

शंख दीर्घायु वर्धक मणि का काम करता है। इसे बजाने से शरीर, मन, बुद्धि, अहं तत्त्व तथा चित्त विशुद्ध एवं स्वस्थ रहता है। इसमें स्वर्ण तत्त्व रहने के कारण बजाने वाले को तेज एवं दीर्घायु की प्राप्ति होती है-

स नो हिरण्यजः शंखः आयुष्प्रतरणो मणिः।।४।।

अथर्ववेद पदार्थ के भीतर विद्यमान सूक्ष्म एवं स्थूल शक्ति तत्त्व को उद्घाटित करता है। फलतः शंख को लेकर सात मंत्र अथर्ववेद में प्रतिपादित हैं।

शंखासुर-जिसकी आकृति शंख की तरह थी तथा जो जल में ही उत्पन्न हुआ था- ने वेदों को चुरा लिया। भगवान् विष्णु ने मत्स्यावतार धारण कर उससे वेदों का उद्धार किया। अंततः शंखासुर को आश्रय देते हुए भगवान् ने अपने आयुध के रूप में स्वीकार किया। शिवपुराण के पाँचवें खण्ड के १३/२९ में शंखचूड़ नामक राक्षस का वृत्तान्त आया है। इस राक्षस का वध भगवान् शिव ने किया था। **अतः शंख के जल से भगवान् शिव का अभिषेक एवं पूजन नहीं होता है। शिव जी और सूर्य देवता को शंख प्रिय नहीं है।** यद्यपि आदित्यहृदय स्तोत्रम् में सूर्य भगवान् को 'शंखः शिशिरनाशनः' भी कहा गया है। गणेश जी की पूजा में शंख वर्जित है।

शंख अनेक प्रकार के होते हैं; परन्तु मुख्यतः दिव्य और मर्त्य भेद से दो प्रकार के शंख होते हैं। देवता द्वारा प्रदत्त शंख अलौकिक या दिव्य कहलाता है जबकि समुद्र से प्राप्त शंख लौकिक, अदिव्य या मर्त्य होता है। महाभारतकाल में श्रीकृष्ण और श्री अर्जुन के पास दिव्य शंख विद्यमान थे-

माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः।।

गीता, १/१४

भगवान् श्री कृष्ण के शंख का नाम 'पाञ्चजन्य' है तथा श्री अर्जुन के शंख का नाम 'देवदत्त' है। विष्णु भगवान् जब कभी अवतार लेते हैं उनके साथ अदृश्य रूप में पाञ्चजन्य शंख, सुदर्शनचक्र, कौमुदिकी गदा, शार्ङ्गधनुष, गरुड़वाहन, दिव्यकमल विद्यमान रहते हैं। किरीट-कुण्डल, कौस्तुभमणि, शेषनाग का अवतार और पीताम्बर वस्त्र भगवान् विष्णु के अवतार के साथ हमेशा विद्यमान रहता है। विष्णुभगवान् की इच्छा से ये दिव्य अस्त्र तत्काल प्रकट हो जाते हैं। शंख दक्षिणावर्त्त और वामावर्त दोनों प्रकार का होता है। दक्षिणावर्त्त शंख भौतिक समृद्धि देता है, वामावर्त शंख मोक्ष प्रदान करता है।

युधिष्ठिर के शंख का नाम 'अनन्तविजय' था। भीम के शंख का नाम 'पौण्ड्र', नकुल के शंख का नाम 'सुघोष' तथा सहदेव के शंख का नाम 'मणिपुष्पक' प्रसिद्ध था। इन सभी शंखों की ध्वनि अलग अलग सुनाई देती थी। ध्वनि सुनकर लोग समझ लेते थे कि इस शंख को किसने बजाया है।

शंख ध्वनि से नभ और पृथ्वी गुंजित हो उठती है। प्रातः कालीन पूजा-आरती तथा सायं कालीन पूजा-आरती में शंख बजाने से नभो मण्डल शुद्ध, शाँत,

और अक्षोभ्य बना रहता है। शंख को बजाकर पुनः जल से धोकर उसे रखना चाहिए। जब शंख में पानी भर कर रखते हैं तो इसे आकाश की ओर खुला रखना चाहिए तथा जलहीन शंख को पलट कर रखना चाहिए। पूर्व या उत्तर की ओर उसका मुख रखना चाहिए। शंख को जूठा नहीं रखना चाहिए। शंख बजाने से पूर्व उसके ऊपर पुष्पाक्षतगंध छोड़ते हुए बोलना चाहिए- **शंखाय नमः, पाञ्चजन्याय नमः।** इसके बाद श्रद्धा पूर्वक प्रणाम करते हुए शंख को बजाना चाहिए।

शंख को बजाकर हाथ जोड़ कर प्रार्थना करनी चाहिए-

त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे।
निर्मितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य! नमोऽस्तु ते।।३।।

पाञ्चजन्याय विद्महे पावमानाय धीमहि।
तन्नः शङ्खः प्रचोदयात्।।४।।

सिंहादयो ये पशवो दंदशूकाश्च पन्नगाः।
सर्वे भवन्तु ते सौम्या विष्णुशंखरवाहताः।।

वामनपुराणम्, अध्याय ८६

अर्थात् सिंहादि पशुगण, दंदशूक (डसने वाले) और विषैले सर्पगण सभी के सभी मेरे लिए श्रीविष्णु हरि के शंख के तुमुल शब्द से सौम्य स्वभाव वाले बन जायें।

एक घर में दो शंख नहीं रखना चाहिए। एक, तीन या पाँच शंख रख सकते हैं। दो शंख रखने का निषेध है। बिना बजाने वाले शंख या बंद छिद्र शंख को पूजा जा सकता है।

देव संस्कृति का शुभ और श्रेयस्कर प्रसाद है शंख। इसे घर में रखना और बजाना चाहिए। कथा और आरती के अन्त में देवपूजा का समापन शंखध्वनि से ही मङ्गलकारी होता है।

शंख बजाने से दृश्य तथा अदृश्य छोटे, कणीय जीव नष्ट हो जाते हैं। ज्वर, बुखार, प्लेग फैलाने वाले कीटाणु शंखध्वनि को सुनकर विनष्ट हो जाते हैं। विविध प्रकार के शंखों से विविध एवं पृथक् ध्वनि निकलती है। इसकी ध्वनि पूजा, राज्यारोहण, अभिषेक, सेना के प्रयाणकाल से पूर्व शुभ मानी जाती है। विष्णु भगवान् ने सृष्टि के सभी शुभ; श्रेयस्कर मणियों, पुष्पों, वस्त्रों को अपने आवरण के रूप में डाल रखा है। विष्णु भगवान् द्वारा ग्राह्य होने से यह मनुष्य मात्र के लिए परम कल्याणकारी है।

विवाह काल में पाणिग्रहण संस्कार के समय जो जल गिराया जाता है वह शंख से ही गिराया जाता है। नीलवृषभ उत्सर्ग के समय शंख के वर्ण जैसी छवि वाला वृष महत्त्वपूर्ण माना गया है। जिस बछड़े का पूरा शरीर लाल हो और चारों खुर शंख की तरह उज्ज्वल हों, जिसका सिर और जिसकी पूँछ शंख की तरह धवल हो वह वृषभ 'नीलवृष' कहलाता है। इस तरह से नीलवृष की आकृति में 'शंख' समाया हुआ है-

लोहितो यस्तु वर्णेन शंखवर्णखुरः स्मृतः।
लांगूलशिरसोश्चैव स वै नीलवृषः स्मृतः।।

लिखितस्मृतिः, १४.

शंख को सामान्य वस्तु न मानकर इसे मणि माना गया है। शंख में तीन गुण, तीन तेज और पाँच तत्त्व सन्निहित हैं। अतः इसे प्रत्येक घर में रखना चाहिए तथा पूजा एवं आरती के समय इसे बजाना चाहिए। अकारण और मध्य रात्रि में शंखनाद नहीं करना चाहिए।

गौ

भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से हिन्दू प्रजाति ने तीन माताओं को विशेष महत्त्व दे रखा है। जनन करने वाली जननी, धारण करने वाली धरणी (पृथ्वी) और गो (इन्द्रियों) को पुष्ट करने वाली गौ (गाय) ये तीनों मातृस्थानीय हैं। फलतः इन तीनों के प्रति पूज्यपूजाभाव प्रत्येक हिन्दू के मन में जन्मना बना रहता है। जननी और जन्मभूमि को स्वर्ग से बड़ा मानने की रीति यहाँ सृष्टि के आरम्भ से है।

गाय सूर्य की किरणों से उत्पन्न हुई है। अतः इसे सूर्यसूता भी कहा जाता है। गाय के दूध में जीवनी शक्ति, गोमूत्र में संशोधन शक्ति और गोघृत में प्राणशक्ति का निवास माना गया है। गोमूत्र से नेत्र धोने से आँख सम्बन्धी कोई बीमारी नहीं होती है। पञ्चगव्य का पान करने वाला व्यक्ति कभी अपवित्र और भारी रोग से पीड़ित नहीं होता। प्रत्येक हिन्दू के घर में प्राचीन काल में गोधन अवश्य होता था। जहाँ गाय पृथ्वी का प्रतीक है, वहीं बैल (वृषभ) धर्म का प्रतीक है। गाय को कल्पवृक्ष माना गया है। जो सभी प्रकार की इच्छाओं को पूरी करने में सक्षम हो, वह गाय है। स्कन्दपुराण के काशी खण्ड में गायों का महत्त्व विस्तार के साथ दिया गया है।

गोघृत से यज्ञ का सम्पादन होता है। मंत्र और घृत (आज्य) के सम्बन्ध से अपूर्व फलदायी यज्ञ सम्पन्न होते हैं। फलतः घृत देने के कारण गाय का तथा मंत्रबोध होने के कारण मंत्रज्ञ ब्राह्मण का महत्त्व इस देश में सर्वाधिक रहा है। इन दोनों का निर्माण ही यज्ञ प्रक्रिया के संचालन हेतु पृथ्वी पर हुआ है-

ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधाकृतम्।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति।।

काशीखण्ड, २/७५

इस धरती पर गाय सर्वाधिक पवित्र और मङ्गलमयी मानी गयी है। यह सर्वदेवमयी है। इसके गोबर में लक्ष्मी का निवास होता है- **गोमये वसते लक्ष्मीः।** प्रातःकाल गोदर्शन तथा गाय को प्रणाम करके प्रवास किया जाता था। गायों के पैर (खुर) से उड़ी धूलि गंगा जल के समान पवित्र होती है-

गावः पवित्रमतुलं गावो मङ्गलमुत्तमम्।
यासां खुरोत्थितो रेणुर्गङ्गावारिसमो भवेत्।।

काशीखण्ड, २/७७

गायों के सींग के अग्रभाग में सभी तीर्थ तथा खुर में सभी पर्वत निवास करते हैं। दोनों सींगों के बीच में अर्थात् मस्तक पर साक्षात् गौरी महेश्वरी का निवास होता है-

शृङ्गाग्रे सर्वतीर्थानि खुराग्रे सर्वपर्वताः।
शृङ्गयोरन्तरे यस्याः साक्षाद्गौरी महेश्वरी।।

काशीखण्ड, २/७८

जिस घर में गोदान होता है उस घर के पितृगण अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं। देवताओं के साथ ऋषिगण भी उस घर के ऊपर सन्तुष्ट रहते हैं-

दीयमानां च गां दृष्ट्वा नृत्यन्ति प्रपितामहाः।
प्रीयन्ते ऋषयः सर्वे तुष्यामो दैवतैः सह।।

काशीखण्ड, २/७९

गोदान करने से पाप, दरिद्रता और रोग रुदन करते हैं। गाय समस्त लोक की माता है-

रोरूयन्ते च पापानि दारिद्र्यं व्याधिभिः सह।
धात्र्यः सर्वस्य लोकस्य गावो मातेव सर्वथा।।

काशीखण्ड, २/८०

गायों की स्तुति करके उन्हें प्रणाम करते हुए प्रदक्षिणा करने से सप्तद्वीपा वसुन्धरा की प्रदक्षिणा हो जाती है।

गवां स्तुत्वा नमस्कृत्य कृत्त्वा चैव प्रदक्षिणाम्।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा।।

काशीखण्ड, २/८१

गो माता को प्रणाम करने हेतु निम्नलिखित मंत्र प्रयोग में आते हैं-

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या देवेषु व्यवस्थिता।
येन रूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु।।

विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा चैव विभावसोः।
स्वधा या पितृमुख्यानां सा धेनुर्वरदा सदा।।

गोमयं यमुना साक्षाद् गोमूत्रं नर्मदा शुभा।
गङ्गा क्षीरं तु यासां वै किं पवित्रमतः परम्।।

गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश।
यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिह लोके परत्र च।।

काशीखण्ड, २/८२-८५

अर्थात् गायों को लक्ष्मी स्वरूप माना गया है तथा उन्हें देवतागण में माना गया है। ऐसी गायें हमारे पापों को विनष्ट कर दें। विष्णु भगवान् के वक्ष पर रहने वाली लक्ष्मी, अग्नि देव की स्वाहा एवं पितरों की स्वधा रूप में विराजमान् गोमाता हमें वरदान दें। गोबर साक्षात् यमुना है, गोमूत्र नर्मदा है तथा गोदुग्ध साक्षात् गङ्गा है। अत: इन गायों से पवित्र और क्या हो सकता है? गायों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में चौदह भुवन निवास करते हैं। अत: ये गाय हमारे लिए शिव(कल्याण)कारी हों।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये त्रिदेव गाय के शरीर में निवास करते हैं। इन देवताओं का वहीं निवास होता है, जहाँ गायें रहती हैं। अत: सभी देवगण कामना

करते हैं कि उनके चतुर्दिक् गायें रहें। गोपुच्छ से जो व्यक्ति अपने अंगों को पोंछता या झाड़ता है उसके यहाँ से अलक्ष्मी (दरिद्रता), कलह तथा रोग दूर हो जाते हैं। गो, ब्राह्मण, वेद, सतीस्त्री, सत्यवादी व्यक्ति, निर्लोभी और दानशील इन सात तत्त्वों से यह पृथ्वी हमेशा धारित (सुरक्षित) रही है।

गावो मे पुरतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्।।

नीराजयति योऽङ्गानि गवां पुच्छेन भाग्यवान्।
अलक्ष्मीः कलहो रोगास्तस्याङ्गाद्यान्ति दूरतः।।

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही।।

काशीखण्ड, २/८८-९०

पञ्चगव्य पान करने से तथा गोमूत्र पीने से शरीर के भीतर कैंसर, लीवर जनित रोग तथा किडनी से सम्बन्धित बीमारी नहीं होती है। गोघृत के सेवन से दीर्घायु की प्राप्ति होती है। प्राचीन भारत में प्रायशः सभी परिवारों में गायें अवश्य होती थीं। गोदुग्ध से जीवनी शक्ति मिलती है। गाय का पञ्चामृत देवता और मनुष्य दोनों को प्रिय है। गाय में असंख्य गुण हैं। यह घर के भीतर आज भी गाँवों में रहती है। प्रायशः परिवार के सदस्यों की तरह यह आचरण करती है। जिस घर में गाय होती है उस घर में स्वास्थ्य बना रहता है। गोघृत से हवन करने पर पर्यावरण एवं वायुमण्डल शुभ बना रहता है। प्राचीन भारत में गायों की संख्या से ही व्यक्ति की धनाढ्यता पहचानी जाती थी। गाय का धारोष्ण दूध पीकर रहने वाला व्यक्ति उपवास का पुण्य प्राप्त करता है। पञ्चगव्य, पञ्चामृत, गोघृत, गोदुग्ध, गोदही, गोतक्र का सेवन करने वाला व्यक्ति पञ्चकर्मेन्द्रियों से मजबूत बना रहता है। पृथ्वी पर गाय अनिवार्य तत्त्व है। जिस दिन इस पृथ्वी पर सूर्यसूता गाय नहीं रहेगी उस दिन यह पृथ्वी अपने अस्तित्व पर संकट प्राप्त कर लेगी। फलतः पृथ्वी और गाय एक-दूसरे के पर्याय हैं। स्वर्ण, गाय, भूमि, अन्न, जल, प्राणवायु मानवमात्र के लिये अतिआवश्यक तत्त्व हैं। इनके बिना जीवन में पवित्रता और दिव्य तेज का समावेश नहीं हो पाता है। भारत की धरती पर माता के रूप में विद्यमान गाय संस्कृति और प्राण की रक्षिका है। इसीलिए गाय की रक्षा में प्राचीन काल में लोग अपने प्राणों को समर्पित कर देते थे। राजा दिलीप की कथा गोभक्ति का आदर्श उदाहरण है।

●

ब्रह्मचर्य एवं पातिव्रत्य

हिन्दू जाति के जीवन में अथवा सनातन धर्म पद्धति में कामशुद्धि का नियम अत्यन्त कठोर है। जहाँ पुरुषों के लिए ब्रह्मचर्य का विधान वर्णित है, वहीं पर स्त्रियों के लिए पातिव्रत्य का दृढ़विधान अनुशंसित है। ऋषिमान्यता के अनुसार ब्रह्मचर्य और पातिव्रत्य से ही दीर्घायु और इच्छित आयु की प्राप्ति होती है। अतः जीवन में कठोरता और दृढ़ अनुशासन के साथ इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करते हुए पुरुष को ब्रह्मचर्य तथा स्त्री को पतिव्रताधर्म का पालन करने का संविधान है।

ब्रह्मचर्य-

सभी प्रकार से मन, बुद्धि, इन्द्रियों को संयमित कर ब्रह्म (ईश्वर) चिंतन करना ब्रह्मचर्य कहलाता है। विशेष रूप से अष्टाङ्ग मैथुन का मन, वचन तथा कर्म से परित्याग करना ही ब्रह्मचर्य है। यह ब्रह्मचर्य केवल अपनी पत्नी में अनुरक्ति से भी प्राप्त होता है। अतः **'एकनारी ब्रह्मचारी'** का आख्यान सुनाई देता है। विशिष्ट व्रतों एवं अनुष्ठानों में गृहस्थ ऋषि विशेष दिनों के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करते थे। ऐसे में ब्रह्मचर्य की अवस्था उस व्रत एवं अनुष्ठान काल तक होती थी। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मचर्यावस्था को सद्गृहस्थ खण्डशः भी अपनाता था। धर्मशास्त्रों में ऐसा पग-पग पर उल्लेख प्राप्त होता है, जब सद्गृहस्थ को व्रतोपवास काल में ब्रह्मचर्य रहने का आदेश होता है। अष्टाङ्ग मैथुन के परित्याग के बिना ब्रह्मचर्य की परिकल्पना असम्भव है। अतः अष्टाङ्ग मैथुन परित्याग को ही ब्रह्मचर्य कहा गया है- **ब्रह्मचर्यमष्टाङ्गमैथुनपरित्यागः।**

अष्टाङ्ग मैथुन का वर्णन इस प्रकार से है-

दर्शनं स्पर्शनं केलिः स्मरणं गुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च।।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेव प्रकीर्तितम्।।

(१) परस्त्री को छुपकर या प्रकट देखना (२) परस्त्री का किसी बहाने स्पर्श करना (३) परस्त्री के साथ क्रीडा करना (४) परस्त्री का मानसिक स्मरण

करना (५) परस्त्री से गुप्त बातें करना (६) परस्त्री के सन्दर्भ में प्राप्ति हेतु मानसिक संकल्प लेना अर्थात् विविध प्रकार से उसकी प्राप्ति हेतु मन में योजना बनाना (७) परस्त्री को एकान्त में प्राप्त करने हेतु उद्योग करना तथा (८) परस्त्री के साथ संभोग करना यह आठ प्रकार का मैथुन कहलाता हैं। इन आठ प्रकार में से किसी भी प्रकार का चिन्तन, मनन और उद्योग ब्रह्मचर्य को विनष्ट करता हैं। इन आठ प्रकार के लक्षणों से दूर रहना ही ब्रह्मचर्य हैं। केवल क्रिया निवृत्ति (रति) ही मैथुन नहीं कहलाता है, बल्कि तत्सन्दर्भ में चिन्तन करना भी मैथुन का ही अङ्ग हैं। अत: ऋषियों ने प्रत्येक स्थिति में स्त्री और पुरुष को एकान्त में साथ रहने की वर्जना की है। बलवान् इन्द्रिय प्रवाह और चंचल मन दोनों मिलकर पुरुष और स्त्री को परस्पर मिलाने में अपना अप्रतिम प्रभाव दिखलाते हैं। अत: बचाव का एक ही उपाय है कि परिस्थितियों से अपने को बचाया जाय। विश्वामित्र जैसा तपस्वी भी मेनका को एकान्त में पाकर विचलित हो जाता है। देवता, ऋषि और मनुष्य भी कामप्रवाह से अपने को नहीं बचा पाते हैं। अत: प्रयासपूर्वक स्त्री तथा पुरुष दोनों को पातिव्रत्य तथा ब्रह्मचर्य को बचाने के लिए संयमित एवं सावधान रहना पड़ता हैं। काम जनित व्यसन निम्नलिखित होते हैं-

मृगयाऽक्षो दिवा स्वप्न: परिवाद: स्त्रियो मद:।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गण:।।

मनुस्मृति: ७/४७।।

(१) शिकार खेलना (२) जुआ खेलना (३) दिन में सोना (४) परनिन्दा करना (५) परस्त्री में अतिआसक्त होना (६) मद्यपान करना (७) नृत्य (८) गीत में अतिआसक्त होना (९) परस्त्री प्राप्ति प्रयोजन के साथ घूमना (१०) निष्प्रयोजन घूमना और स्त्री को देखना ये दस प्रकार के कामजनित व्यसन हैं।

पातिव्रत्य-

स्त्री द्वारा मन, क्रम, वाणी से अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी का चिन्तन न करना पातिव्रत्य कहलाता है। जो स्त्री अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष के सन्दर्भ में- चाहे वह देवता या राजा ही क्यों न हो- नहीं सोचती वह पतिव्रता कहलाती है। ब्रह्मचर्य और पातिव्रत्य से कामशुद्धि तथा संतानशुद्धि होती है। यह संकल्पना केवल भारतवर्ष में ऋषि विधान में प्राप्त होती हैं।

पुरुष और स्त्री का सन्दर्भ हिन्दू संस्कृति में अविभाज्य, अर्द्धांश और अर्धनारीश्वर का है। पुरुष और स्त्री आधी-आधी ईकाई हैं। ये दोनों मिलकर एक ईकाई होते हैं। भारतवर्ष में स्त्री और पुरुष दो ईकाई (यूनिट) नहीं माने गये हैं।

जिस तरह से शरीर की परछाई शरीर से अलग नहीं होती, जिस तरह से चन्द्रकिरण चन्द्रमा से अलग नहीं होती, जिस तरह से बिजली बादलों के बीच में अस्तित्व रखती है, उसी तरह से स्त्री और पुरुष का अन्योन्य अस्तित्व है। दोनों एक दूसरे में समाहित रहते हैं-

भर्ता सदानुयातव्यो देहवच्छायया स्त्रिया।
चन्द्रमाज्योत्स्नया यद्वद्विद्युत्वान् विद्युता यथा।।

काशीखण्डः ४/५३

गोस्वामी तुलसीदास ने इसी सन्दर्भ में कहा है कि जिस तरह से समुद्र और समुद्र की लहरें अलग नहीं हैं, वाक्य और अर्थ अलग नहीं हैं उसी तरह से भगवती सीता और भगवान् श्रीराम अलग नहीं हैं। दोनों मिलकर एक हैं-

गिरा अरथ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।

पुरुष अपना अमित अस्तित्व स्त्री को देता है और स्त्री अपना स्वत्व देकर उस पुरुष के धर्म, अर्थ, काम को संरक्षित करती है। पतिव्रता स्त्री यमराज के दूतों से अपने पति की रक्षा करती है। पतिव्रता स्त्री से यमदूत वैसे ही डरते हैं, जैसे भयानक अग्नि और प्रचण्ड जल प्रवाह से समस्त जीव डरते हैं। जहाँ पतिव्रता रहती है वह कुल, उसकी जननी, उसके पिता, उसका पति सभी के सभी धन्य होते हैं-

धन्या सा जननी लोके धन्योऽसौ जनकः पुनः।
धन्यः स च पतिः श्रीमान् येषां गेहे पतिव्रता।।

काशीखण्डः ४/६०

पतिव्रता स्त्री अपने पिता के वंश, अपनी माता के वंश तथा अपने पति के वंश को अर्थात् तीन-तीन पीढ़ी को अपने पुण्य बल से स्वर्ग का सुखोपभोग कराती है। इसी तरह से शीलभंग स्त्री इन तीन कुलों का सर्वनाश भी करती है (काशीखण्ड ४/६१-६२)। जिस पुरुष के ऊपर शिव की कृपा होती है उसी को पतिव्रता पत्नी की प्राप्ति होती है- **परं विश्वेशभक्त्यैव लभ्यते स्त्री पतिव्रता।** (काशीखण्ड, ४/६६)।

वस्तुतः सद्गृहस्थ वही है जिसकी पत्नी पतिव्रता हो और वही नारी सौभाग्यवती है जिसका पति केवल उसी में अनुरक्त हो। जिस तरह से दिन में दो बार भोजन करना उपवास का पुण्य देता है उसी तरह से एक पत्नी एवं एक पति में संतुष्ट रहने से ब्रह्मचर्य का पुण्य दोनों (स्त्री-पुरुष) को प्राप्त होता है। भारतवर्ष में ब्रह्मचर्य और पातिव्रत्य अतिप्रशंसित तथा पूज्य है। ●

अध्याय-१८

परिभाषा

प्रत्येक भाषा, विषय, व्यवहार, समाज तथा परंपराओं की अपनी परिभाषायें होती हैं। इन परिभाषाओं और प्रक्रियाओं को जाने बिना व्यक्ति उस विषय की गहराई में न तो उतर सकता है न ही उसके मर्म को समझ सकता है। हिन्दू जीवन पद्धति में परिभाषाओं और प्रक्रियाओं की अपनी लम्बी शृङ्खला है। ये परिभाषायें और प्रक्रियायें परस्पर जुड़ी हुई हैं। इन दोनों से उत्पन्न परिणाम को जीवन में प्रायशः पुनरावर्तित होते देखा जाता है। हिन्दू जीवन में पापों की स्वीकृति का स्वल्प महत्त्व है। पश्चिमी जीवन में 'पाप स्वीकृति' का व्यापक महत्त्व है। हिन्दू जीवन में पाप स्वीकृति और धर्मज्ञ ऋषि या आचार्य के पास जाकर उसका कथन मात्र इसलिए है कि व्यक्ति 'प्रायश्चित्त' का ज्ञान या आदेश प्राप्त कर सके। पाप के अनुकूल 'प्रायश्चित्त' का आदेश पाकर उसका आचरण करना महत्त्वपूर्ण है।

प्रायश्चित्त का अर्थ- प्रायः का अर्थ है तप और चित्त का अर्थ है निश्चय। इस प्रकार से तप का निश्चयीकरण प्रायश्चित्त कहलाता है। पाप से मुक्ति पाने के लिए किया जाने वाला निश्चित तप प्रायश्चित्त कहलाता है-

प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते।
तपो निश्चयसंयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम्।।

मनुस्मृतिः ११/४७

प्रायश्चित्त की कठोरता से मानवीय शरीर, मन तथा वृत्तियों का संशोधन होता है। फलतः जीवन से जुड़ी हुई अनेक परिभाषायें और प्रक्रियायें यहाँ दी जा रही हैं। इन्हें जाने बिना अधूरापन रहेगा और अन्यत्र से जानने में कमी रह सकती है। इसलिए इन परिभाषाओं एवं प्रक्रियाओं को यहाँ उपलब्ध कराया जा रहा है।

'ॐ'- इसे प्रणव, ब्रह्म अथवा एकाक्षर ब्रह्म कहते हैं। **एकाक्षरं परं ब्रह्म-** मनु. २/८३। इसमें अ+उ+म तीन अक्षर हैं। ये तीन अक्षर तीनों वेदों से लिए गए हैं-

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान् निरदुहद् भूर्भुवः स्वरतीति च।।

मनुस्मृतिः २/७६।।

उपनिषदों में ॐ को ब्रह्म कहा गया है- **ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म।** अतः ॐ का उच्चारण और जप ब्रह्म की उपासना है।

महाव्याहृति- 'भूः भुवः स्वः' इन्हें महाव्याहृति कहते हैं। प्रजापति (ब्रह्मा) ने मंथन कर तीनों वेदों से तीन महाव्याहृतियों को निकाला है। **'ॐ भूर्भुवः स्वः'** के साथ गायत्री मंत्र का जप करने वाला सृष्टि में पूजित, पवित्र, तपस्वी, ब्रह्मज्ञानी होता है।

अथ- 'अथ' मांगलिक शब्द है। ब्रह्मा के कण्ठ से पहली बार ॐ और अथ शब्द ही फूट पड़े थे। अतः ये दोनों महामांगलिक शब्द हैं। 'ॐ' जहाँ ब्रह्म का वाचक है वहीं 'अथ' मंगलदायक, सिद्धिदायक है-

ओंकारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तेन माङ्गलिकावुभौ।।

इष्ट कर्म- धर्मशास्त्र में लिखा है कि इष्टकर्म से स्वर्ग मिलता है। छः कर्म इष्टकर्म कहलाते हैं। ये हैं- अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदाभ्यास, अतिथि सत्कार और वैश्वदेव।

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते।।
अत्रिसंहिता ४३।।

पूर्तकर्म- वापी-कुंआ-तालाब-मंदिर निर्माण, अन्नदान, उपवन का निर्माण आदि छः कर्म को पूर्तकर्म कहते हैं।

वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमारामाः पूर्तमित्यभिधीयते।।
अत्रिसंहिता ४४।।

इष्ट कर्म से स्वर्ग की प्राप्ति और पूर्तकर्म से मोक्ष की प्राप्ति होती है-

इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्तेन मोक्षमवाप्नुयात्।।
अत्रिसंहिता ४५।।

यम- सद्गृहस्थों, योगीजनों, साधकों के लिए दस यम, दस नियम अनिवार्य तत्त्व हैं। यम का महत्त्व नियम से अधिक है। ये यम निम्नवत् हैं-

आनृशंस्यं क्षमा सत्यमहिंसा दानमार्जवम्।
प्रीतिः प्रसादो माधुर्यं मार्दवं च यमा दश।।
अत्रिसंहिता ४८।।

आनृशंस्य (अक्रूरता), क्षमा, सत्य, अहिंसा, दान, आर्जव (नम्रता), प्रीति, प्रसाद (प्रसन्नता), माधुर्य, मार्दव (कोमलता) ये दस प्रकार के यम कहलाते हैं। योगशास्त्र में दस प्रकार के 'यम' निम्नवत् बतलाये गये हैं-

अहिंसा-सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा-धृतिः।
दयार्जवं मिताहारः शौचं चैव यमा दश।।

नियम- **शौचमिज्या तपोदानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः।**
व्रतमौनोपवासश्च स्नानं च नियमा दश।।

अत्रिसंहिता ४९।।

शौच (शुद्धि), इज्या (पूजा), तप, दान, वेदाध्ययन, इन्द्रियनिग्रह, व्रत, मौन, उपवास स्नान, ये दस नियम हैं।

योगशास्त्र में दस प्रकार के 'नियम' निम्नवत् बतलाये गये हैं-

तपः संतोष आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्।
सिद्धान्तवाक्यश्रवणं ह्री मती च तपोहुतम्।।
नियमा दशसंप्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः।

भगवान्श्रीकृष्ण प्रोक्त-यमनियम- भगवान् श्रीकृष्ण ने बारह यम और बारह नियम बतलायें हैं। इनका सेवन करने वाला तपस्वी ईश्वर कृपा प्राप्त करता है। १. अहिंसा २. सत्य ३. अस्तेय ४. असङ्ग ५. ह्री (लज्जा) ६. असंचय ७. आस्तिक्य ८. ब्रह्मचर्य ९. मौन १०. स्थैर्य (स्थिरता) ११. क्षमा और १२ अभय ये बारह यम हैं। १. शौच (शुद्धि) २. जप ३. तप ४. होम ५. श्रद्धा ६. आतिथ्य ७. अर्चन ८. तीर्थाटन ९. परोपकार १०. ईश्वर-भावना ११. तुष्टि और १२. आचार्य सेवा ये बारह नियम हैं।

अहिंसा सत्यमस्तेयमसङ्गो ह्रीरसंचयः।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम्।।
शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं मदर्चनम्।
तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम्।।
एते यमाः सनियमाः उभयोर्द्वादश स्मृताः।
पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम् ११/१९/३३-३५

पञ्चगव्य- देशी गाय से उत्पन्न पाँच पदार्थों का आनुपातिक मिलन पञ्चगव्य नामक पदार्थ का निर्माण करता है। पञ्चगव्य में गोमूत्र, गोबर, गोदुग्ध, गो दही, गोघृत डाला जाता है। इसमें कुशा का जल भी थोड़ा सा डाला जाता है-

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
निर्दिष्टं पञ्चगव्यं तु पवित्रं पापनाशनम्।।

पराशरस्मृतिः ११/२९।।

(कुशोदक परमपवित्रता हेतु डालते हैं। आयुर्वेद एवं व्यहवार में कुशोदक का प्रचलन नहीं है। यदि कुशोदक डाला जाय तो पञ्चगव्य का प्रभाव अतुलनीय हो जाता है।) कपिला गाय का पाँच पदार्थ हो तो श्रेष्ठ पञ्चगव्य कहलाता है। (वैकल्पिक रूप से कृष्णा गाय का मूत्र, गौरी का गोबर, ताम्रवर्णी गाय का दूध, लाल गाय का दधि, कपिला का घृत लिया जाता है।)

गोमूत्र = एक पल (प्रायशः ५७ ग्राम)
गोदही = तीन पल (प्रायशः १७१ ग्राम)
गोघृत = एक पल (प्रायशः ५७ ग्राम)
गोदुग्ध= सात पल (प्रायशः ४०० ग्राम)
गोबर = अंगुष्ठार्ध (प्रायशः ५ से ६ ग्राम)

१ मात्रा + ३ मात्रा + १ मात्रा + ७ मात्रा + गोबर आधी गोली + कुशोदक यही परिणाम पंचगव्य में रहता है।

पात्र में **गायत्रीमंत्र** से गोमूत्र डालें, **गन्धद्वारां दुराधर्षां** मंत्र से गोबर डालें, **आप्यायस्व** मंत्र से दूध डालें, **दधिक्राव्ण** मंत्र से दही डालें, **तेजोऽसि शुक्रं** मंत्र से घृत डालें, **देवस्य त्वा** से कुशोदक डालें। **आपोहिष्ठा** मंत्र से इसे मिलायें। **मानस्तोके तनये** मंत्र से पंचगव्य को अभिमंत्रित करें। पंचगव्य से हवन किया जाता है और इसे पिया जाता है। यदि ऊपर के ये सभी मंत्र याद न हों तो **ॐ** से ही आलोडन, मंथन, ग्रहण (पात्र में लेना) तथा पान करना (पीना) चाहिए-

आलोड्य प्रणवेनैव निर्मथ्य प्रणवेन तु।
उद्धृत्य प्रणवेनैव पिबेच्च प्रणवेन तु।।

पराशरस्मृतिः ११/३७

पञ्चगव्य में देवताओं का निवास होता है। गोमूत्र में वरुण देवता, गोबर में अग्नि देवता, दही में वायु देवता, दूध में

चन्द्रमा देवता और घृत में सूर्य देवता का निवास होता है। अतः पञ्चगव्य पीने से त्वचा, हड्डी, उदर में स्थित पाप जल कर भस्म हो जाता है। अभक्ष्य शुद्धि, अपेय शुद्धि तथा धर्मान्तरण शुद्धि का दिव्य माध्यम पञ्चगव्य है।

कपिला गौ- जिसका सम्पूर्ण शरीर श्वेत (धवल) हो, चारों पैर सफेद चमकदार हों वह समस्त पापों को विनष्ट करने वाली कपिला गाय कहलाती है-

सर्वतः शुक्लवर्णा या पादेषु विशेषतः।
कपिला सा तु विज्ञेया सर्वपापप्रणाशिनी।।

कहीं कहीं मधु पिंगल वर्ण की गाय को ही कपिला गाय कहते हैं, पर यह भूरी या ताम्रवर्णी कही जायेगी। प्राचीनकाल में समस्त श्वेत शरीर और अधिक चमकदार श्वेत पैरों वाली गाय ही कपिला कही जाती थी।

चान्द्रायणव्रत- चान्द्रायणव्रत दो प्रकार का होता है- १. यवमध्यचान्द्रायण और २. पिपीलिकामध्यचान्द्रायण।

यवमध्यचान्द्रायण- शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि को एक ग्रास भोजन करके उपवास करें। द्वितीया को दो ग्रास, तृतीया को तीन ग्रास भोजन करें। इस प्रकार से पूर्णिमा तिथि को पन्द्रह ग्रास भोजन करें। कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को चौदह ग्रास, द्वितीया को तेरह, तृतीया को बारह ग्रास भोजन लें। इस तरह से कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को एक ग्रासमात्र भोजन करना चाहिए। अमावास्या को उपवास करना चाहिए। यव मध्य चान्द्रायण में शुक्लपक्ष में १ से १५ ग्रास तथा कृष्णपक्ष में १४ से शून्य ग्रास भोजन लिया जाता है। एक माह तक इसी क्रम में नियंत्रित रहकर भोजन करके अमावास्या को उपवास करना चाहिए। चान्द्रायण व्रत का कठोर तप इसी प्रकार से पूर्ण किया जाता है।

एकैकं वर्द्धयेन् नित्यं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत्।
अमावास्यां न भुंजीत एष चान्द्रायणो विधिः।।
एतच्चान्द्रायणं नाम यवमध्यं प्रकीर्तितम्।

अत्रिसंहिता ११२।।

पिपीलिकामध्यचान्द्रायण- यह चान्द्रायणव्रत कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ होता है और पूर्णिमा को समाप्त होता है। दोनों प्रकार के चान्द्रायणव्रत में उपवास की तिथि अमावास्या ही होती है।

एकैकं ह्रासयेत् कृष्णे पिण्डं शुक्ले च वर्द्धयेत्।
एतत् पिपीलिकामध्यं चान्द्रायणमुदाहृतम्।।

कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को १४ ग्रास भोजन करें और प्रतिदिन एक ग्रास कम करता हुआ अमावास्या को उपवास करें। पुनः शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को एक ग्रास भोजन करें और प्रतितिथि एक-एक ग्रास भोजन बढ़ायें। पूर्णिमा के दिन पन्द्रह ग्रास भोजन करें। यह पिपीलिकामध्यचान्द्रायण कहलाता है।

अथ यवमध्यचान्द्रायणचक्र

तिथि(शुक्लपक्ष)	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
ग्रास	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
तिथि(कृष्णपक्ष)	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	३०
ग्रास	१४	१३	१२	११	१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१	०

अथ पिपीलिकामध्यचान्द्रायणचक्र

तिथि(कृष्णपक्ष)	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	३०
ग्रास	१४	१३	१२	११	१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१	०
तिथि(शुक्लपक्ष)	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
ग्रास	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५

अतिकृच्छ्रव्रत- महापातक के निवारण के लिए आरम्भ के तीन दिनों तक मात्र एक ग्रास (कौर) भोजन किया जाता है। बाद के तीन दिनों में कुछ भी भोजन नहीं लिया जाता है। इसे अतिकृच्छ्र व्रत कहा जाता है। इससे महापातक और तत्सदृश पापों का नाश होता है। अतिकृच्छ्र व्रत में जल, शहद, नींबू, लिया जाता है पर दूध लेने का विधान नहीं है।

एकैकं ग्रासमश्नीयात् त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत्।
त्र्यहं परं च नाश्नीयाद् अतिकृच्छ्रं तदुच्यते।।
इत्येतत् कथितं पूर्वैर्महापातकनाशनम्।।

अत्रिसंहिता ११३, ११४।।

महर्षि पराशर के अनुसार नौ दिनों तक एक मुट्ठी अन्न खा कर अंतिम तीन रात उपवास रहा जाए तो अतिकृच्छ्रव्रत कहलाता है-

नवाहमति कृच्छ्रं स्यात् पाणिपूरान्नभोजनम्।
त्रिरात्रमुपवासः स्याददतिकृच्छ्रः स उच्यते।।

पराशरस्मृतिः।। ११/५४।।

पंचभूतव्रत- दिन में वायु भक्षण करे और रात में जल में बैठा रहे। प्रातः काल सूर्य को देखता हुआ (सूर्यसम्मुख) एक हजार गायत्री का जप करे। इससे ब्रह्महत्या के अतिरिक्त सभी पाप दूर हो जाते हैं-

वायुर्भक्षो दिवातिष्ठेद् रात्रिं चैवाप्सु सूर्यदृक्।
जपत्वा सहस्त्रं गायत्र्याः शुद्धिर्ब्रह्मबधादृते।।

अत्रिसंहिता ११५।।

पर्णकृच्छ्रव्रत- **पद्मोदुम्बरविल्वैश्च कुशाश्वत्थपलाशयोः।**
एतेषामुदकं पीत्वा पर्णकृच्छ्रं तदुच्यते।।

अत्रिसंहिता ११६।।

कमल, गूलर, बेल, कुश, पीपल, पलाश (ढाक) के पत्ते को जल में भिगो देना चाहिए। इस पानी को पीकर दिन व्यतीत करना पर्णकृच्छ्रव्रत कहलाता है। एक दिन जल पीकर रहना एक पर्ण कृच्छ्र, दो दिन जल पीकर रहना दो पर्णकृच्छ्र व्रत कहलाता है।

संतापनकृच्छ्रव्रत- **पंचगव्यं च गोक्षीरं दधि-मूत्र-शकृद्-घृतम्।**
जग्ध्वा परेह्युपवसेत्कृच्छ्रं सांतापनं स्मृतम्।।

अत्रिसंहिता ११७।।

पंचगव्य पीकर दिन बीताना अथवा पंचगव्य के किसी एक पदार्थ को पीकर दिन बीताना, संतापन कृच्छ्र कहलाता है। पंचगव्य में गाय का दूध-गोदधि-गोघृत-गोमूत्र-गोबर रहता है।

महासंतापनव्रत- छः दिन पंचगव्य पीकर रहें और सातवें दिन उपवास करें। इसे महासंतापन व्रत कहते हैं। इसमें एक-एक दिन पंचगव्य का एक-एक पदार्थ लेते हैं। छठे दिन पंचगव्य लेते हैं और सातवें दिन उपवास करते हैं-

पृथक् सांतपनैर्द्रव्यैः षडहः सोपवासकः।
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासंतापनं स्मृतम्।।
अत्रिसंहिता ११८।।

प्राजापत्यव्रत- तीन दिन सायंकाल (रात्रि प्रथमप्रहर) भोजन करें, तीन दिन प्रातः काल भोजन करें, तीन दिन बिना मांगे मिले उसका भोजन करें और तीन दिन सर्वथा भोजन न करें- यह प्राजापत्य व्रत कहलाता है। यह बारह दिन का होता है।

त्र्यहं सायं त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं भुंक्ते त्वयाचितम्।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात् प्राजापत्यो विधिः स्मृतः।।
अत्रिसंहिता ११९।।

अनशनव्रत- सायंकाल बारह ग्रास (कौर), प्रातः काल पंद्रह ग्रास भोजन लेना अथवा बिना मांगे मिले भोजन को चौबीस ग्रास खाना अनशनव्रत कहलाता है-

सायं तु द्वादशग्रासाः प्रातः पंचदशस्मृताः।
अयाचितैश्चतुर्विंश परेऽह्न्यशनं स्मृतम्।।
अत्रिसंहिता १२०।।

ग्रासपरिभाषा- मुर्गे के अंडे के बराबर या सामान्यरूप से मुख खुलने भर प्रमाण वाला भोजन ग्रास (कौर) कहलाता है-

कुक्कुटाण्डप्रमाणेन स्याद् यावद् यस्य मुखं विशेत्।
एतद् ग्रासं विजानीयाद् शुद्ध्यर्थं कायशोधनम्।।
अत्रिसंहिता १२१।।

तप्तकृच्छ्रव्रत- तीन दिन तप्तं (गर्म) जल पीकर रहे, तीन दिन गर्म दूध पीकर रहे, तीन दिन गर्म गो घृत पीकर रहे, तीन दिन वायु पीकर रहे। यह तप्तकृच्छ्र व्रत कहलाता है। एक दिन में छः पल जल, तीन पल दूध और एक पल घी मात्र पीने का विधान है। (प्राचीन मान्यता के अनुसार एक पल प्रायशः आज के सत्तावनग्राम से स्वल्प अधिक होता है।)

त्र्यहमुष्णं पिवेदापस्त्र्यहमुष्णं पिवेत् पयः।
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रयम्।।

पलमेकं तु वै सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते।
षट्पलानि पिवेदापस्त्रिपलं तु पयः पिवेत्।।

अत्रिसंहिता १२२, १२३।।

वैदिककृच्छ्रव्रत- तीन दिन गो दही, तीन दिन गो घृत, तीन दिन गो दुग्ध, तीन दिन वायु भक्षण करना वैदिक कृच्छ्र कहलाता है। तीन पल दही, तीन पल दूध, एक पल गो घृत क्रमशः लेना चाहिए। यह महापुण्यदायक वैदिक कृच्छ्र कहलाता है।

दध्ना च त्रिदिनं भुंक्ते त्र्यहं भुंक्ते च सर्पिषा।
क्षीरेण तु त्र्यहं भुंक्ते वायुभक्षो दिनत्रयम्।।
त्रिपलं दधिक्षीरेण पलमेकं तु सर्पिषा।
एतदेव-व्रतं पुण्यं वैदिकं कृच्छ्रमुच्यते।।

अत्रिसंहिता १२४, १२५।।

एकभक्त- रात्रि में उपवास करके दूसरे दिन मध्याह्न बीतने के पश्चात् (सूर्यास्त से तीन घण्टा पूर्व) पारण किया जाता है- **मध्याह्नान्त्यदले त्रिभागदिवसे स्यादेकभक्तम्।** इस व्रत में दोपहर में पूजन किया जाता है। एकभक्त व्रत में चौबीस घण्टे में एक बार दोपहर बाद भोजन लिया जाता है। एकभक्त व्रत में हमेशा मध्याह्न व्यापिनी तिथि में पूजन किया जाता है- **मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभक्ते सदा तिथिः। पद्मपुराणम्, निर्णयसिन्धुः।**

नक्तव्रत- रात्रि में पारण करना नक्तव्रत कहलाता है। नक्तव्रत में तिथि प्रदोषव्यापिनी ग्राह्य होती है-

'प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा।'

सूर्यास्त के बाद तीन घटी (७२ मिनट) प्रदोष काल कहलाता है- **प्रदोषो घटिकात्रयम्।** इसमें पूजन करके सूर्यास्त के तीन घटी बाद पारण किया जाता है। दिन भर उपवास रहकर रात्रि में प्रदोष के बाद पारण करना नक्त व्रत है-

निशायां भोजनं चैवं तज्ज्ञेयं नक्तमेव तु।।

अत्रिसंहिता. १३१।।

सूर्यास्त से एक मुहूर्त्त (४८ मिनट) पूर्व से लेकर नक्षत्र दर्शन काल तक नक्त कहलाता है-

मुहूर्त्तोनं दिनं नक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः।
नक्षत्रदर्शनान् नक्तमहं मन्ये गणाधिप।।

भविष्यपुराणम्।।

अयाचितव्रत- बिना मांगे जो कुछ मिल जाए उसे खा कर रहना, यदि नहीं मिले तो बिना खाये रहना अयाचितव्रत कहलाता है। दूसरों से प्राप्त व्रत भी अयाचित कहलाता है। इसमें 'उपवास' की प्रधानता होती है, पूजन की नहीं।

वारव्रत- सातों वारों के नाम पर अलग-अलग सात वारव्रत प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। इन व्रतों में व्रती दिनभर उपवास रहकर प्रदोषकाल में अभीष्ट देवता की पूजा करके पारणा करता है।

एकभक्त, नक्त और वारव्रत- वारव्रत और एकभक्त में यही स्पष्ट अन्तर है कि एकभक्त तिथिप्रधान होने से इसमें प्रायशः तीन बजे से लेकर सूर्यास्त से पूर्व पारणा की जाती है, जबकि वारव्रत में रात्रि के पूर्वार्द्ध में प्रदोष के पश्चात् पारणा की जाती है। नक्तव्रत उपवास प्रधान होता है; जबकि वारव्रत कथा पूजन प्रधान होता है।

पादकृच्छ्रव्रत- दिन भर उपवास रहना अथवा रातभर उपवास रहना पादकृच्छ्र व्रत कहलाता है। महर्षि आपस्तम्ब ने पादकृच्छ्रव्रत के अनेक प्रकार को बतलाया है-

१. तीन दिन भोजन न करना = एक पादकृच्छ्रव्रत (ब्राह्मण के लिए)
२. तीन दिन अयाचित भोजन करना = एक पादकृच्छ्रव्रत (क्षत्रिय के लिए)
३. तीन दिन एकभक्त (रात्रि में) भोजन करना = एक पादकृच्छ्रव्रत (वैश्य के लिए)
४. तीन नक्त व्रत (दिन का भोजन) करना = एक पादकृच्छ्रव्रत (शूद्र के लिए)

त्र्यहं निरशनात् पादश्चायाचितं त्र्यहम्।
सायं त्र्यहं तथा पादः पादः प्रातस्तथात्र्यहम्।।
प्रातः पादं चरेच्छूद्रः सायं वैश्यस्य दापयेत्।
अयाचितं तु राजन्ये त्रिरात्रं ब्राह्मणस्य च।।

आपस्तम्बस्मृतिः १३, १५।।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रव्रत- इक्कीस दिनों तक दूध या पानी पीकर रहना कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत कहलाता है- **कृच्छ्रातिकृच्छ्र पयसा दिवसानेकविंशतिम्। अत्रिसंहिता १२८।।**

पराकव्रत- बारह दिन तक लगातार उपवास रखना पराकव्रत कहलाता है- **द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः।**

पयोव्रत- फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष से आरम्भ कर द्वादशी तिथि को पयोव्रत पूर्ण किया जाता है। यह बारह दिनों का व्रत होता है-

फाल्गुनस्यामले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतः।
अर्चयेदरविन्दाक्षं भक्त्या परमयान्वितः।।

एक दिन पूर्व अमावास्या में मिट्टी से शरीर में लेपन कर स्नान करना चाहिए। (यदि सूअर द्वारा खोदी मिट्टी मिल जाये तो उससे लेपन कर नदी में स्नान किया जाता है। यह मल शोधन स्नान कहलाता है।)

सिनीवाल्यां मृदाऽलिप्य स्नायात् क्रोडविदीर्णया।
यदि लभ्येत वै स्रोतस्येतं मन्त्रमुदीरयेत्।।

शरीर में मिट्टी का लेप करते समय निम्नलिखित मंत्र बोला जाता हैं-

त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता।
उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय।।

(हे मृत्तिका (पृथ्वी) देवि! आप आदि वराह (विष्णु) द्वारा स्थान खोजते समय प्रकट की गई थीं। आपको प्रणाम है। मेरे समस्त पापों का नाश कीजिए।) अपनी नित्यपूजा करके वेदी, सूर्य, अप (जल), अग्नि और गुरु के रूप में विष्णु भगवान् की पूजा की जाती है। षोडशोपचार से श्री हरि की पूजा की जाती है। पायस (खीर), घृतस्निग्ध (हलवा) का भोग लगायें। दो ब्राह्मणों को प्रतिदिन खीर, हलवा खिलायें। ताम्बूल और दक्षिणा दें। इसमें **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** मंत्र से १०८ आहुति अवश्य दी जाती है। पूजा के समय हाथ जोड़कर निम्नलिखित प्रार्थना की जाती है-

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे।
सर्वभूतनिवाशाय वासुदेवाय साक्षिणे।।१।।

नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च।
चतुर्विंशद् गुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे।।२।।

नतो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःश्रृङ्गाय तन्तवे।
सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयी विद्यात्मने नमः।।३।।

नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च।
सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः।।४।।

नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने।
योगैश्वर्य-शरीराय नमस्ते योगहेतवे।।५।।

नमस्ते आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः।
नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः।।६।।

नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रिये।
केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे।।७।।

त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ।
अतस्ते श्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते।।८।।

अन्ववर्तन्त यं देवाः श्रीश्च तत्पादपद्मयोः।
स्पृहयन्त इवामोदं भगवान् मे प्रसीदताम्।।९।।

इसी तरह प्रतिदिन प्रातःकाल भगवान् की पूजा करें। पूजा में गोदुग्ध से श्रीहरि को स्नान करायें। प्रतिपदा की रात्रि से समापन तक ब्रह्मचर्य रहें। प्रतिदिन दो ब्राह्मण को बारह दिनों तक भोजन करायें और स्वयं गाय का दूध पीकर रहें। भूमि पर शयन करें। तीन समय स्नान करें। त्रयोदशी को खीर से हवन करें। अंतिम दिन विप्र भोजन, अभ्यागत भोजन और दरिद्रभोजन करायें। हो सके तो गोदान करें। यह पुरुषोत्तम को प्रसन्न करने वाला पयोव्रत कहलाता है। यह संतान, समृद्धि, स्वराज्य देता है।

सौम्यकृच्छ्रव्रत- तीन दिनों तक क्रमशः पिण्याक (खली), दधि, सत्तू इन तीनों को एक-एक दिन खाकर रहना सौम्यकृच्छ्र कहलाता है।

व्यासकृच्छ्र- कपिला गाय का धारोष्ण (थन से तत्काल निकला) दूध पीकर जो दिन भर व्यतीत (उपवास) करता है वह महर्षि व्यास प्रोक्त कृच्छ्रव्रत करता है-

कपिलागोस्तु दुग्धाया धारोष्णं यत्पयः पिवेत्।
एष व्यासकृतः कृच्छ्रः श्वपाकमपि शोधयेत्।।

अत्रिसंहिता १३०

वज्रपाक- रात्रि में ताजे गोमूत्र में यव को भिगाकर दूसरे दिन शुद्ध जल से धोकर, गोघृत में पकाने पर बना हुआ भोजन वज्रपाक कहलाता है। यह पेट के भीतर पड़े हुये अभक्ष्य तथा अमेध्य को बाहर कर देता है।

महापातक- सनातन धर्म में पाँच महापातक माने गये हैं। इनसे मुक्ति हेतु शास्त्रों में कठिनतम प्रायश्चित बतलाया गया है। ये पाँच महापातक निम्नवत् हैं-

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह।।

मनुस्मृतिः ११/५४

१. ब्रह्महत्या, २. मद्यपान, ३. स्वर्णचोरी, ४. गुरुपत्नीगमन करने वाला तथा ५. इन चारों के साथ सम्बन्ध (संसर्ग) रखने वाला, ये पाँच महापातकी कहे जाते हैं।

उपपातक- मनुस्मृति में एकादश अध्याय के ५९ श्लोक से लेकर ६६ श्लोक तक उपपातकों का वर्णन दिया गया है। वहाँ निम्नलिखित उपपातक बतलाये गये हैं।

१. गोवध, २. अयाज्ययाजन, ३. परस्त्रीगमन, ४. आत्मविक्रय, ५. गुरु-माता-पिता का त्याग, ६. ब्रह्मयज्ञत्याग, ७. अग्नि (हवन) त्याग, ८. पुत्रत्याग, ९. परिवित्ति-परिवेत्ता को कन्यादान करना, यज्ञ कराना १०. कन्या दूषण, ११. सूदखोरी, १२. व्रतलोप, १३. तड़ाग-उद्यान, स्त्री-संतान को बेचना, १४. व्रात्यभाव, १५. बान्धव त्याग, १६. विद्या बेचना, १७. अविक्रेय को बेचना, १८. ठेकेदारी करना, १९. जलप्रवाह रोकना, २०. ओषधियों को उखाड़ना, २१. स्त्री कमाई खाना, २२. अभिचार करना, २३. वशीकरण करना, २४. हरे वृक्षों को काटना, २५. प्याज लहसून खाना,

२६. चोरी करना, २७. ऋण नहीं चुकाना, २८. नास्तिकता स्वीकारना और फैलाना, २९. मनुष्य वध करना, ३०. मद्यपा स्त्री से सम्बन्ध करना, ३१. पशु चोरी करना, ३२. धातु चोरी करना, ३३. रूपजीवी बनना, ३४. निन्दित शास्त्र पढ़ना।

अपात्रीकरण- निंदित व्यक्ति से दान लेना, संस्कारहीन की सेवा (नौकरी) करना, असत्य बोलना और स्वकर्म छोड़कर व्यापार करना अपात्रीकरण कहलाता है-

निंदितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रेसवनम्।
अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम्।।

मनुस्मृतिः ११/६९।।

मलिनीकरण- कृमि-कीट को मारना, पक्षियों को मारना, मद्य के साथ भोजन रखना, फल-लकड़ी-फूल को चुराना तथा अधैर्य रखना ये सभी कारण मनुष्य को मलिन करते हैं-

कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम्।
फलैधः कुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम्।।

मनुस्मृतिः ११/७०

अर्द्धप्रायश्चित्त- अस्सी वर्ष से ज्यादा उम्र वाला व्यक्ति तथा सोलह वर्ष से कम उम्र वाला किशोर यदि कोई पाप कर्म कर ले तो उसे शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त का आधा करना चाहिए अर्थात् सहने लायक प्रायश्चित्त करना चाहिए-

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः।
प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च।।

आङ्गिरसस्मृतिः ३३।।

भगवान्- भग का अर्थ होता है छः प्रकार का ऐश्वर्य। जिसमें षड् ऐश्वर्य हो वह भगवान् कहलाता है। ये छः भग निम्नलिखित हैं- ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य-

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

विष्णुपुराणम्।।

जीव- बाल के अग्रभाग के हजारवें हिस्सा के तुल्य जीव (चेतन तत्त्व, आत्मा) होता है। यह अनन्त रूप में फैलता है-

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवेति विज्ञेयः स चानत्त्याय कल्पते।।

श्रुतिः।।

चातुर्वर्ण्य- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण या चातुर्वर्ण्य कहलाते हैं।

चार आश्रम- ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम हैं।

सूर्यार्घ्य-

सूर्यार्घ्य देने से सूर्य देवता अतिशय प्रसन्न रहते हैं। सूर्यार्घ्य देने से जहाँ मनुष्य को आयु, आरोग्य और तेज की प्राप्ति होती हैं वहीं सूर्य देवता भी विपत्ति से मुक्त होते हैं। मन्देह नामक राक्षसों का समूह उदय लेते सूर्य के ऊपर टूट पड़ता है। इन राक्षसों का नाश सूर्यार्घ्य के जल से होता है। गायत्री मंत्र बोलते हुए सूर्य को ऋषियों द्वारा अर्घ्य दिया जाता है। इस अर्घ्य के प्रभाव से 'मन्देह' राक्षस नष्ट हो जाते हैं और सूर्य आकाश में निर्विघ्न गमन करते हैं। ब्रह्मा से प्राप्त शाप के कारण रात्रि में 'मन्देह' मर जाते हैं और ब्रह्म वरदान के कारण प्रात: काल सूर्य से युद्ध करते हैं। सूर्य को संकट से उबारने का काम प्रात:कालीन गायत्री मंत्र पूरित अर्घ्य करता है-

आदित्येन सह प्रातर्मन्देहा नाम राक्षसाः।
युध्यन्ति वरदानेन ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।।
उदकाञ्जलि-निःक्षेपा गायत्र्या चाभिमन्त्रिताः।।
निघ्नन्ति राक्षसान् सर्वान् मन्देहाख्यान् द्विजेरिताः।।

हरीतस्मृतिः ४/१४-१५।।

स्कन्दपुराण के काशीखण्ड में भी इस तथ्य का उल्लेख प्राप्त होता है-

मन्देह - देह - सन्देहादुदयैकदयाश्रितः।।

अर्थात् उदयाचल मन्देह राक्षसों के भय से हमेशा भयभीत रहता है और उन्हीं की दया पर आश्रित रहता है।

●

उपसंहार

मनुष्य अपने जीवन में प्रतिदिन शुभ-अशुभ-मिश्रित कर्म करता रहता है। वह निरंतर सम्पन्न हो रहे कर्मों को ज्ञात-अज्ञात-प्रेरित हो करता है। जिन कर्मों को सोच समझ कर किया जाता है वे ज्ञात श्रेणी में आते हैं। इनका सुपरिणाम-दुष्परिणाम व्यक्ति को ज्ञात रहता है। कुछ कर्मों के परिणाम को व्यक्ति नहीं जानता है; पर उसे करता है। ऐसे में उस अज्ञात परिणाम को उसे भोगना पड़ता है-जैसे वर्जित क्षेत्र में प्रवेश कर जाना या क्षेत्र विशेष में जाकर वहाँ की संवैधानिक स्थिति के प्रतिकूल कार्य कर बैठना आदि। अपने से श्रेष्ठ या प्रभावशाली व्यक्तित्व के आदेश या प्रभाव से प्रेरित होकर कार्य करना शुभ-अशुभ परिणाम उत्पन्न करता है। ऐसे में यह अति आवश्यक होता है कि व्यक्ति अधिक से अधिक कर्मों के मूल स्वभाव एवं परिणाम से परिचित रहे। कर्मों के स्वरूप को समझकर ही उन्हें ग्राह्य या त्याज्य की श्रेणी में डाला जा सकता है। फलत: कर्मों के तीन स्वरूप को चिंतन-मनन-जिज्ञासा से जानना चाहिए। विश्व के सभी कर्म तीन श्रेणी में विभाजित हैं- (१) सात्विक, (२) राजसी और (३) तामसिक। कर्मों के मूल को समझ लेने पर उससे प्रवृत्त या निवृत्त हुआ जा सकता है। दूसरों से प्रेरित होने के बाद भी स्व विवेक से निर्णय लिया जा सकता है। इस प्रकार भारी पाप से बचा जा सकता है और लघु पुण्यों को सहेजा जा सकता है। यह कम लोगों को मालूम है कि दायें हाथ से भोजन करना, आरती, चन्दन, पवित्रपदार्थग्रहण करना पुण्य है। वाम हाथ से शौचक्रिया, सफाई, नाभि से नीचे का कार्य करना पुण्यदायक है। यदि यही उल्टा कर दिया जाए तो पाप कर्म हो जाता है। भारत का हिन्दू समाज इन नियमों को करोड़ों वर्षों से जानता है। अत: वह जाने-अनजाने में अभ्यास वश, पारिवारिक संस्कार वश इन कर्मों को करता है। अधिकांश हिन्दू परिवार में मूत्र-मल विसर्जन करते समय मौन रहा जाता है। यह पुण्यकर्म है। इसे करने से दीर्घायु और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। वहीं आग-पानी में मूत्र-मल विसर्जन से प्राकृतिक पाप की उत्पत्ति होती है और सार्वजनिक स्थान पर खुले में मूत्र-मल का विसर्जन करना सामाजिक जुगुप्सा और पाप को सृजित करता है। कर्मों के स्वभाव और प्रवृत्ति को जानकर उनसे बचा जा सकता है या उनमें

प्रवृत्त हुआ जा सकता है। प्रह्लाद ने पिता हिरण्यकश्यप के आदेशों को मानने से इंकार कर दिया। विभीषण ने राष्ट्र को संकट से बचाने के लिए बड़े भाई रावण का परित्याग किया। भरत ने राज्य को अनैतिक रीति से कब्जे में लेने हेतु माता कैकयी के आदेशों को ठुकरा दिया। बलि ने दान देने से मना करने वाली आज्ञां का उल्लंघन कर गुरु की बात मानने से मना कर दिया। ऐसा इसलिए हो सका क्योंकि कर्मों के मूल स्वभाव और प्रवृत्ति को ये सभी महानुभाव जानते थे। न धर्म अफलवान् होता है न अधर्म। धर्म और अधर्म दोनों अपना-अपना फल (परिणाम) देते हैं। अतः व्यक्ति को धर्म-अधर्म, कर्म-अकर्म की गहनता को अवश्य जानना चाहिए-

स नायमफलो धर्मो नाधर्मोऽफलवानपि।
दृश्यन्तेऽपि हि विद्यानां फलानि तपसां तथा।।

महाभारत, अर्जुनाभिगमर्पव, ३१/३१

कभी-कभी धर्म का शुभ फल तत्काल नहीं प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में यह आशंका नहीं करनी चाहिए कि धर्म और देवता फलित नहीं होते। ऐसी परिस्थिति आने पर और अधिक यजन और दान करना चाहिए। इससे धर्म की तीव्रता पूर्व जीवन के अवरोध को हटाकर अपना शुभ परिणाम प्रदान करती है-

न फलादर्शनाद् धर्मः शङ्कितव्यो न देवता।
यष्टव्यं च प्रयत्नेन दातव्यं चानसूयता।।

महाभारत, अर्जुनाभिगमपर्व, ३१/३८

प्रस्तुत ग्रन्थ में दैनिक जीवन में घटित होने वाली घटनाओं की मूल प्रवृत्ति को उद्घाटित किया गया है। निःसंदेह इसे पढ़कर व्यक्ति अपने मार्ग का चयन कर सकता है। वह ऋषित्व प्राप्त कर देवमार्ग पर आगे बढ़ सकता है और देवतुल्य हो सकता है। चौबीस घण्टे के भीतर किया जाने वाला कर्म देखने में साधारण-सा दिखता है पर अपूर्व फल का सृजन करता है। इन्हीं कर्मों का संचय करके तथा अकर्मों एवं विकर्मों का परित्याग करके भारतवर्ष के हिन्दुओं ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की और अपमृत्यु, रोग, शोक, कष्ट, दुर्घटना को दूर रखा। अवश्यंभावी पूर्वजीवन के भोगों को छोड़ कर शेष जो भी कर्मफल जीवन में प्रकट होते हैं वे सभी मानव की क्षमता के भीतर के होते हैं। इन कर्मों पर विवेक और योगाभ्यास के द्वारा अंकुश लगाया जा सकता

है। हिन्दू जीवन पद्धति बतलाती है कि जो दूसरों पर विजय प्राप्त करता है वह वीर कहलाता है और जो स्वयं पर विजय प्राप्त करता है वह महावीर कहलाता है। इन प्रतिदिवसीय लघु-अगणनीय कर्मों के माध्यम से ही व्यक्ति अपने जीवन में ऋषित्व को प्राप्त करता है। विश्व का सबसे बड़ा पद है ऋषिपद। जिसके पूज्य चरणों में देवता भी सिर झुकाते हैं उसे ऋषि कहते हैं। जिसके पवित्र हृदय में ब्रह्माण्ड की समस्त विद्यायें आविर्भूत होती हैं, जो त्रिकालज्ञ होता है वह 'ऋषि' कहलाता है। ऋषित्व की प्राप्ति हिन्दू जीवन पद्धति के माध्यम से होती है।

एक परम रहस्य का उद्‌घाटन ऋषियों ने अपने अनुभव और योग दृष्टि के आधार पर किया है- जिसका भी सृष्टि में या ब्रह्माण्ड में जन्म हुआ है वह मनुष्य बन कर आत्मज्ञान के माध्यम से मोक्ष प्राप्त कर सकता है। तप और पुण्य के माध्यम से सूर्यलोक, बृहस्पतिलोक, स्वर्गलोक, नक्षत्रलोक आदि तो प्राप्त किया जा सकता है पर इन लोकों से लौट कर धरती पर मनुष्य योनि में आना पड़ता है। मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर आत्मस्वरूप का ध्यान करता हुआ व्यक्ति ब्रह्मतत्त्व में विलीन हो जाता है। सारी सृष्टि, सारा ब्रह्माण्ड यन्त्रमय है। इसका रहस्य ज्ञात हो सकता है; पर रहस्य जान लेने के बाद भी रिक्त हस्त ही रहता है व्यक्ति। वैज्ञानिक जिस प्रकृति के रहस्य को यन्त्रादि माध्यमों से जानना चाहता है ऋषि उसे घोर तप से प्राप्त कर लेता है। प्रकृति का रहस्य जान लेने पर मृत्यु या मोक्ष की प्राप्ति सद्य: हो जाती है। वैज्ञानिक प्रक्रिया से प्रकृति विजय की अभिलाषा मृत्यु देती है और ऋषिप्रक्रिया से प्रकृति रहस्यभेदन की प्रक्रिया मोक्ष देती है। यह सृष्टि तो चलती रहेगी। प्रकृति अपना काम करती रहेगी। उसे जानना हो तो परमर्षि कपिल, महर्षि मार्कण्डेय, महर्षि वसिष्ठ-विश्वामित्र-वाल्मीकि-याज्ञवल्क्य की तरह जानना चाहिए महिषासुर-रावण-हिरण्यकश्यप-शुम्भ-निशुम्भ की तरह नहीं। सृष्टि और संहार का उपसंहार तप करता है। अत: हिन्दू जीवन पद्धति प्रकृति-पुरुष के दिव्य रहस्य को तप से प्राप्त करने के मार्ग को उद्‌घाटित करती है।

"हिन्दू भौतिक सुख-संसाधनों से भागता है" यह कहना हिन्दू राजाओं की समृद्धि और दान परंपरा को झुठलाना है। हिन्दुओं ने पृथ्वी और अन्तरिक्ष दोनों का दोहन किया है- **मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा।** जब जैसी आवश्यकता पड़ी वैसा सब कुछ प्राप्त कर लिया। इस प्राप्ति के क्रम में धर्म मार्ग का अतिक्रमण न हो जाय इस बात की चिन्ता अवश्य रहती है। राजा दिलीप नंदिनी की रक्षा के लिए सिंह के सामने अपने शरीर को समर्पित कर देते हैं। वे चाहते तो महर्षि वसिष्ठ को सहस्राधिक गायें देकर संतुष्ट कर लेते, पर

ऐसा करने से 'गोरक्षा' का धर्म नष्ट हो जाता। राजा शिवि ने कपोत की रक्षा के लिए अपने शरीर को दे डाला। विदेह जनक राज्य संचालन करते हुए भी योगमार्गगामी योगी हैं। सर्व संसाधन सम्पन्न महामुनि चाणक्य साम्राज्य बनाते हैं; पर अपने लिए एक भवन भी नहीं बनाते हैं। कुटिया में रहते हैं और ढ़ीबरी (मद्धिम दीप) जला कर निर्वाह करते हैं। हिन्दू भौतिक संसाधनों के उपभोग से श्रेष्ठ आत्मसंयम को मानता है। उसकी चित्तवृत्ति में सनातन संस्कार की ऋचा गूँजती हैं-

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

ईशावास्योपनिषद्, १

त्यागपूर्वक भोग करने से ही पृथ्वी धन-धान्य से पूर्ण रहती है। सब कुछ ईश्वरीय है। कुछ भी पराया नहीं है। सबमें ब्रह्मतत्त्व का दर्शन हिन्दू जीवन पद्धति की मूल प्रवृत्ति है। पृथ्वी पर जितनी समृद्धि उपलब्ध है उसे धर्म मार्ग से प्राप्त करने का अधिकार सभी को है। अधर्म, लूट-खसोट, हत्या, चोरी, पाप, षड्यंत्र से प्राप्त होने वाली सम्पत्ति-समृद्धि को हिन्दू प्रवृत्ति अशुभ मानती है। यह जन्मजन्मान्तर तक अशुभ परिणाम देने वाली होती है। संपत्ति वही शुभ होती है जो दान और भोग में काम आती है। वेद मंत्र अग्निहोत्र करने से सफल होते हैं। विवाह संतानप्राप्ति से सफल होता है और धर्मशास्त्र शील-चरित्र से सफल होता है-

अग्निहोत्रफला वेदा दत्तभुक्तफलं धनम्।
रतिपुत्रफला दाराः शीलवृत्तफलं श्रुतम्।।

महाभारतम्, सभापर्व, ५/११३

अधर्मयुक्त साम्राज्य का परित्याग करना श्रेयस्कर होता है और धर्मयुक्त किसी गाँव में निवास करते हुए जीवन को व्यतीत कर देना श्रेयस्कर है। यह हिन्दू प्रजाति की मान्यता है-

अधर्मयुक्तं न च कामयेत राज्यं सुराणामपि धर्मराजः।
धर्मार्थयुक्तं तु महीपतित्वं ग्रामेऽपि कश्मिंश्चिदयं बुभूषेत्।।

महाभारतम्, उद्योगपर्व, १/१५।।

हमारा जीवन धर्म मय हो। हमारा राज्य, हमारा धन धर्ममय हो। हम शूर हों। हम कृतविद्य हों। हम सेवापरायण हों। हम प्रियवादी हों; सत्यवादी हों।

हम अभिवादनशील हों; वृद्धसेवी हों। हम दृढ़व्रत हों। हमारे भीतर विश्व का समस्त अस्तित्व भरा हो। हम शाँत संकल्प सुमना हों। हम श्रद्धाशील हों। अग्नि का तेज, आप (जल) का शैत्य, आकाश का विस्तार, भूमि की सहिष्णुता, वायु का सर्वप्रवाह हमारे अन्दर बसे। हम एक साथ सुरक्षित रहें। एक साथ भोजन करें। एक साथ ऐश्वर्य प्राप्त करें। हमारे भीतर एक जैसा तेज निवास करे। हम किसी से विद्वेष न करें। हमारा भीतर-बाहर एक जैसा हो। चारो वेद (ऋग्, यजु, साम, अथर्व), छः शास्त्र (व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, कल्प, शिक्षा, छंद), मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, चार उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अर्थशास्त्र) का ज्ञान और आचार हमारे जीवन में निरन्तर प्रतिफलित हो। हम मृत्यु को तैर कर अमृत को प्राप्त करें। हम कल्याणतम पथ पर चलें। हम देवों के प्रिय चाहने वाले हों। हमसे पृथ्वी माता प्रसन्न रहें। हमारा जीवन निष्पाप हो-

ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्ताक्ष्योँ अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।

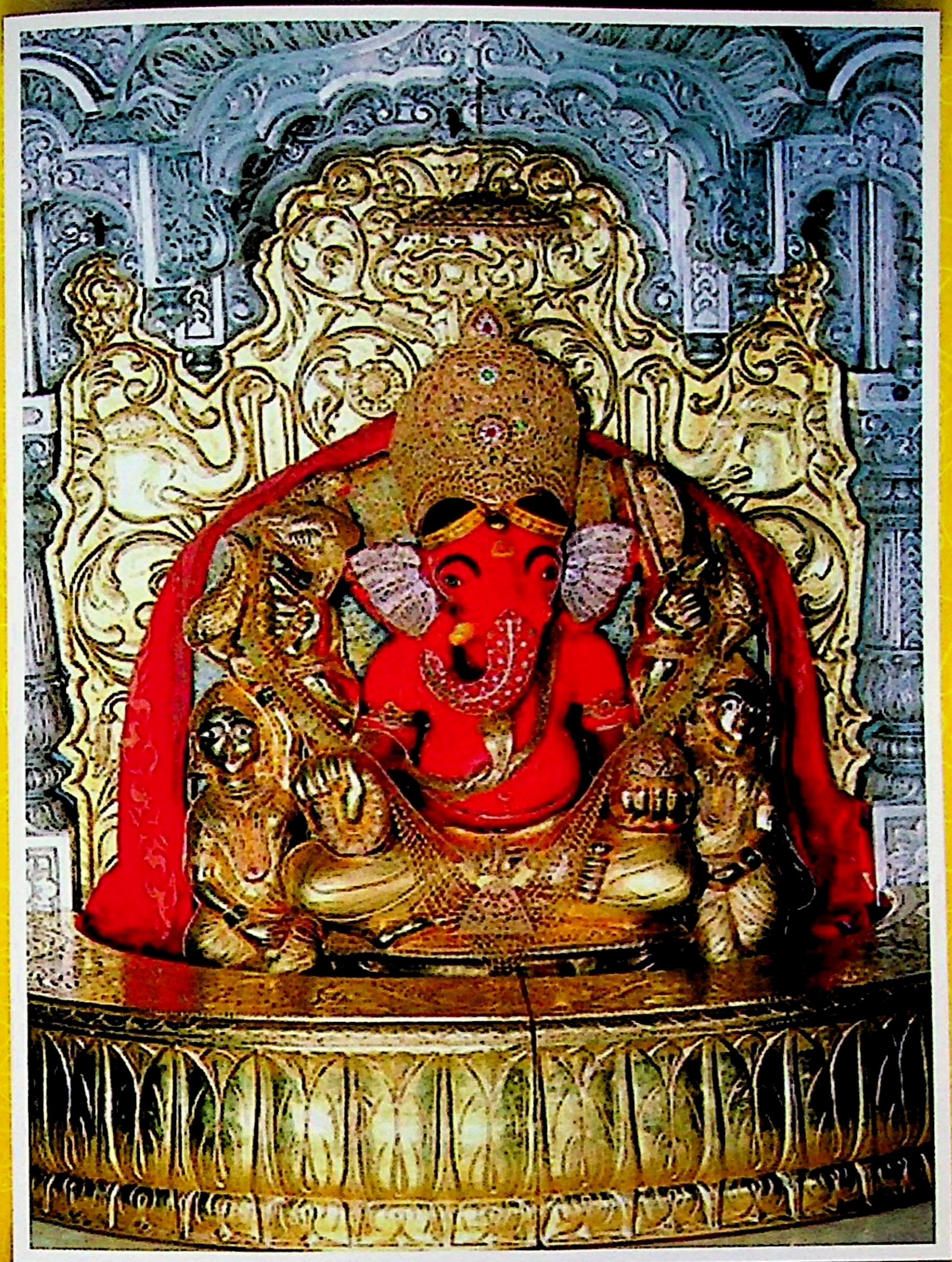
ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

•

●



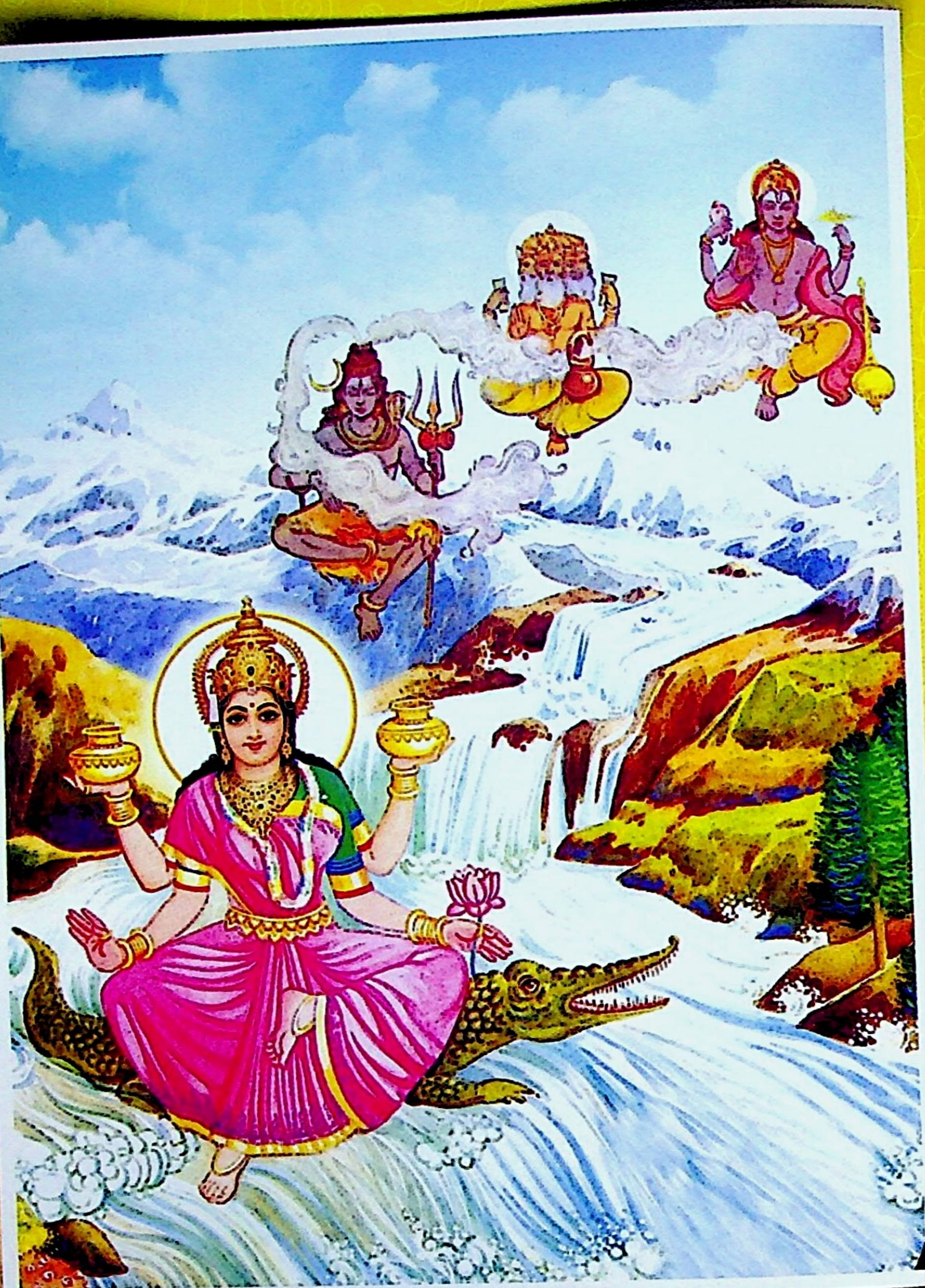
श्री चिन्तामणि गणेश



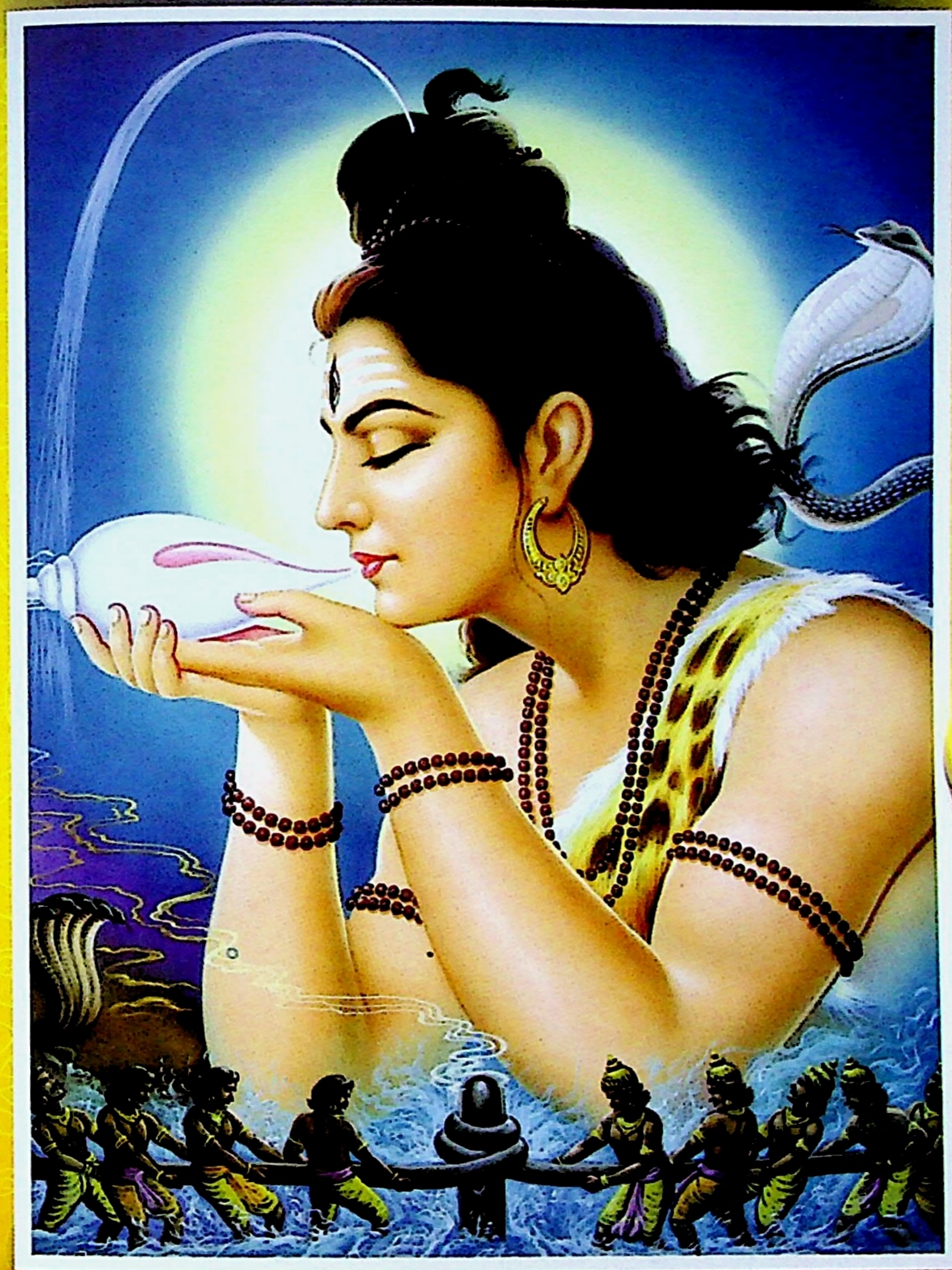
भगवती श्री गायत्री देवी



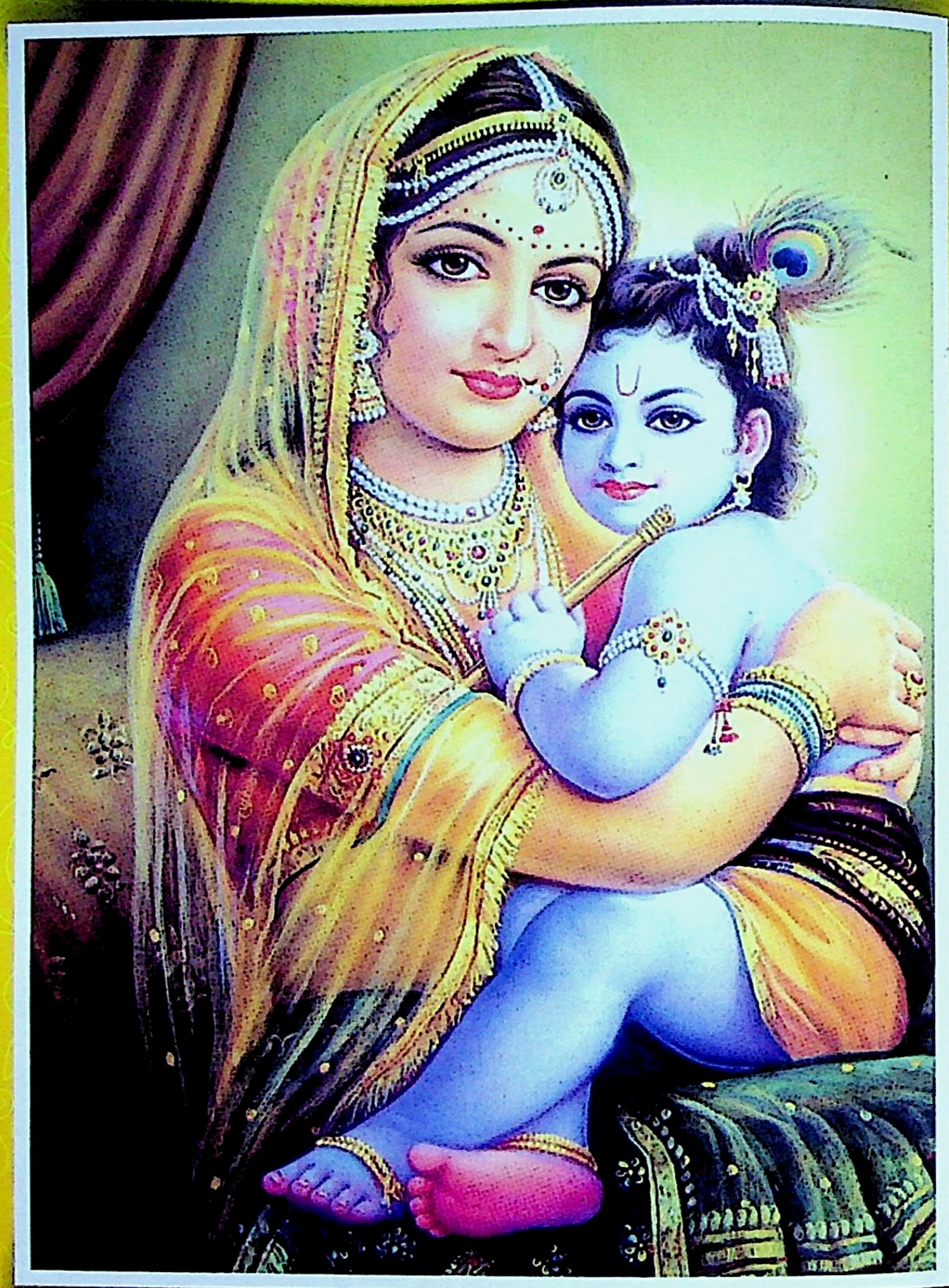
श्री विष्णु हरि का क्षीरसागर शयन



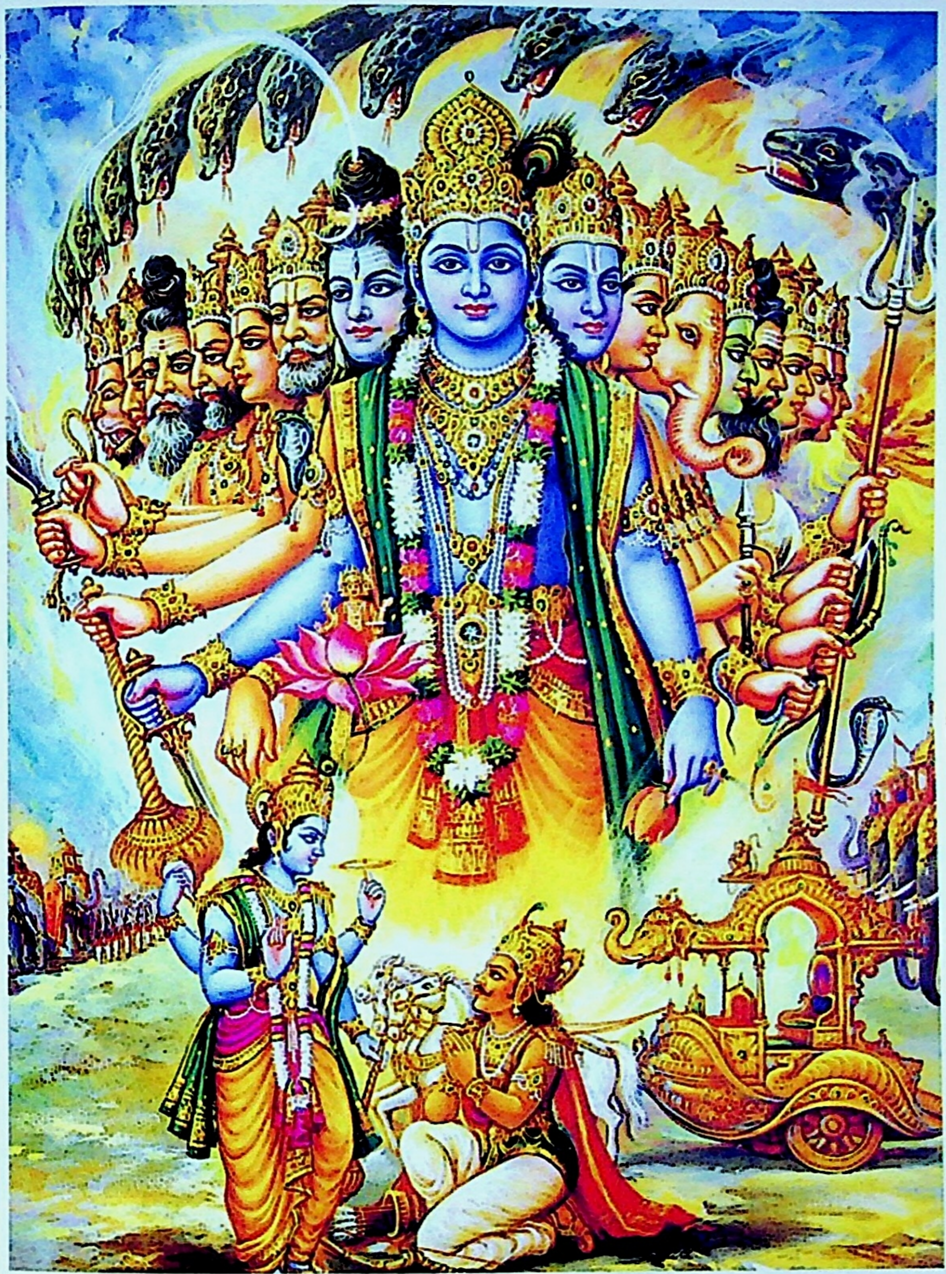
भगवती श्री गंगा देवी का अवतरण



भगवान् शंकर द्वारा विषपान एवं नीलकण्ठत्व की प्राप्ति



माता यशोदा की गोद में श्री कृष्णचन्द्र



भगवान् श्री कृष्ण द्वारा विराट् स्वरुप दर्शन



भगवती श्री दुर्गा का नौस्वरुप



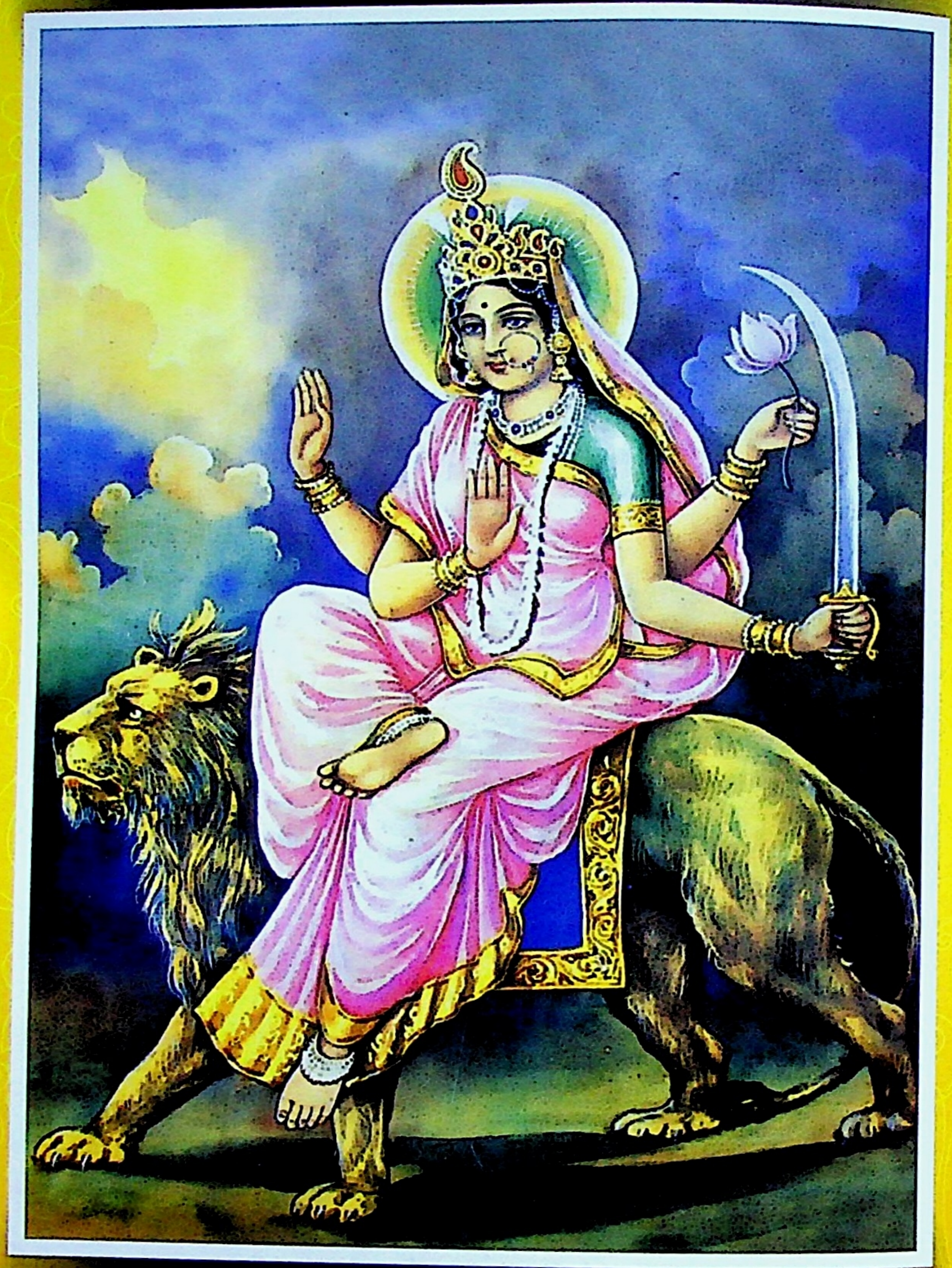
भगवती श्री महालक्ष्मी



भगवती श्री अन्नपूर्णा की स्वर्ण प्रतिमा



भगवती श्री महासरस्वती

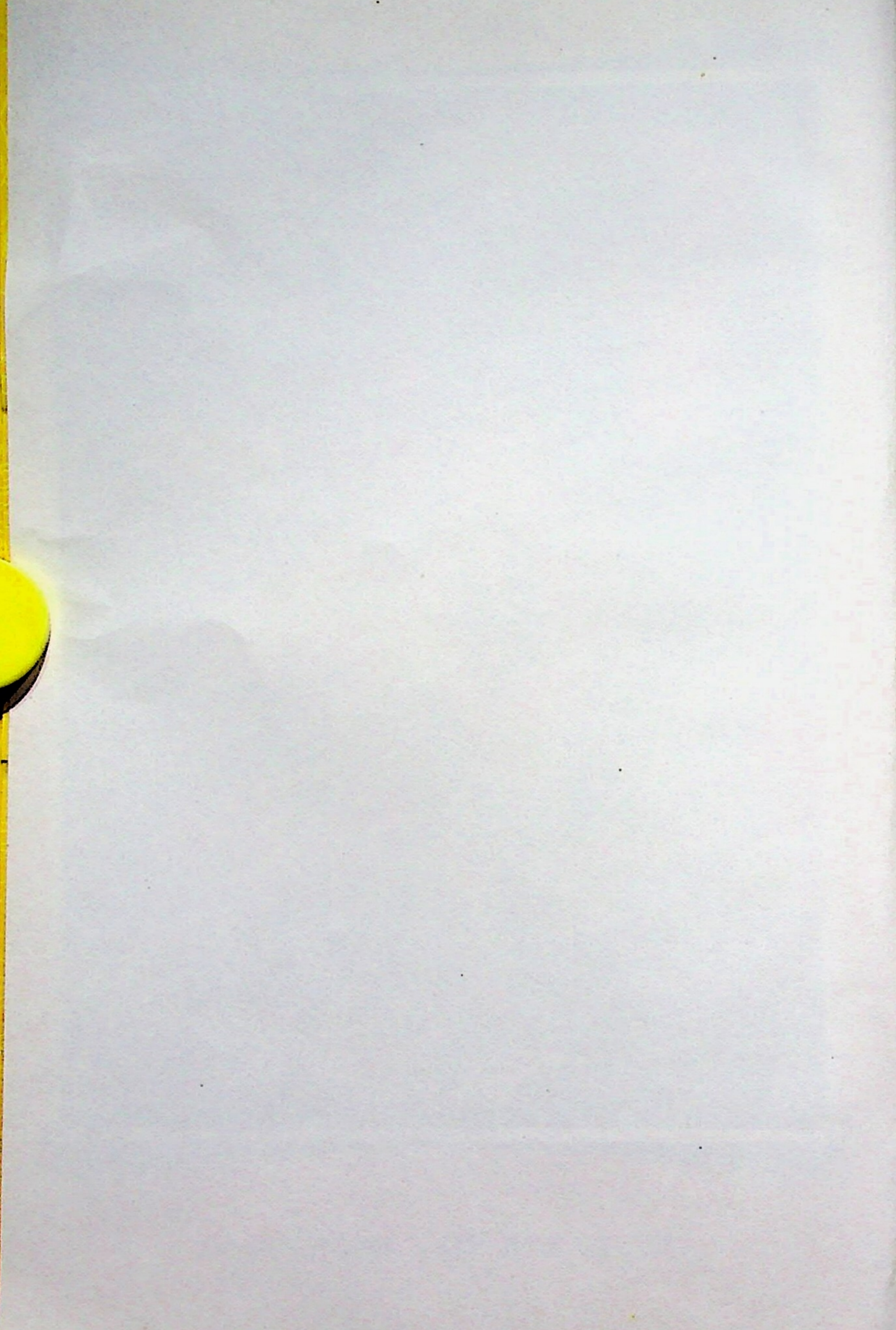


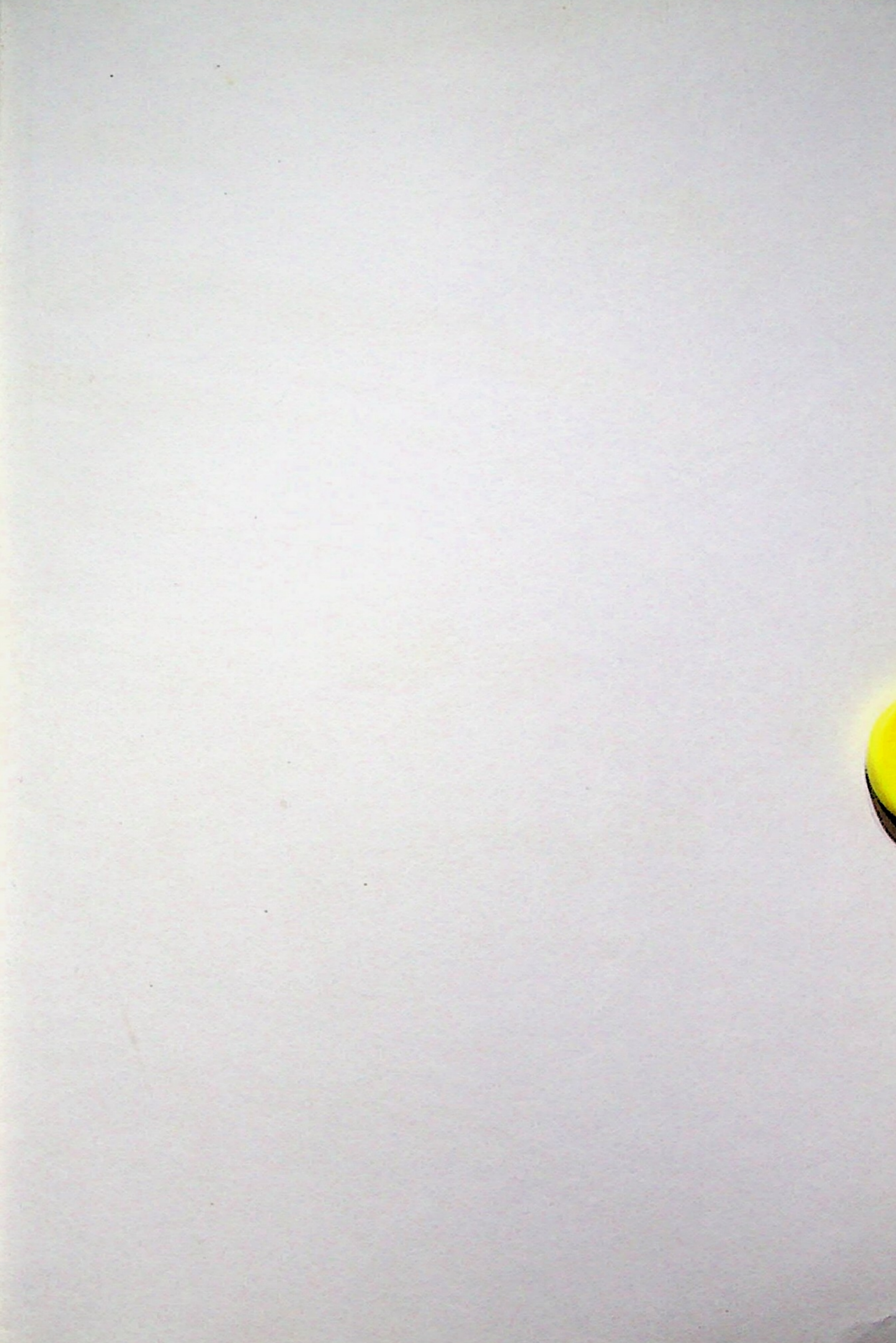
भगवती श्री कात्यायनी देवी



उपनयन संस्कार : हवन करते बटुकगण







ऋषि जीवन सूर्य की तरह प्रदीप्त,
आकाश की तरह उन्नत,
वायु की तरह गतिशील,
चन्द्र की तरह शीतल,
जल की तरह तृषातृप्तिकर
और पृथ्वी की तरह सर्वंसह है।
यही जीवन शैली है -

हिन्दू जीवन पद्धति